卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

भृङ्गदूतम्

(संस्कृतखण्डकाव्यम्)



प्रणेता गुञ्जनहिन्दीटीकाकारश्च

धर्मचक्रवर्ति श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य [illegible]

स्वामिरामभद्राचार्यः

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

भृङ्गदूतम्

(संस्कृतखण्डकाव्यम्)

प्रणेता गुञ्जन हिन्दी टीकाकारश्च
धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय कविकुलरत्न
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य
स्वामि रामभद्राचार्यः
जीवनपर्यन्त कुलाधिपतिः
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूटस्य

प्रकाशकः
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय
चित्रकूट : (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशकः
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय,
चित्रकूट (उ०प्र०)
दूरभाष : ०५१९८-२२४४१३, २२४४८१
०७६७०-२६५४७८

 – १००० प्रतय :
श्रावणीपूर्णिमा संस्कृतदिवस विक्रम संवत् २०६१

पुस्तकप्राप्तिस्थानम्
जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय :
चित्रकूट (उ०प्र०)

श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव, चित्रकूट
जनपद सतना (म०प्र०) ४८५३३१

मूल्यम् – ५०=०० (पञ्चाशत् रुप्यकाणि)

मुद्रक :
श्रीराघव साहित्य सेवा प्रेस
१५६, छीपी टैंक (रामा होटल कम्पाउण्ड)
मेरठ (उ०प्र०)

पुरोवाकम्

श्रीसीतायामुखसरसिजप्रोन्मिलन्मानसालिः
शोभाव्रीड्यन्मनसिजमहानीलरत्नाम्बुवाहः ।
रामोरामारमितचरितो रामरामाभिराम-
श्चित्तारण्ये विहरतु चिरं मामके रावणारिः।।

विज्ञातचरमेव तत्रभवतां भवतां विपश्चिद् वृन्दारकाणां गीर्वाणवाणी समाराधकानां वैदिकवाङ्मयाद्यावदद्यतनं समुल्लसितपरमपूतप्रातिभप्रागल्भ्य विजृम्भितं धूर्जटिजटाकलापखेलत्तुङ्गतरङ्गगाङ्गप्रवाहइवाविच्छिन्नपारम्पर्यम् यत्र राजन्ति रामायणमहाभारतभागवतादिषु प्रकीर्णानि शमनेकदौत्यकप्रकरणानि तेषु रामायणे सुन्दरकाण्डान्तर्गतं श्रीसीतारामसंदेशात्मकं, श्रीमद्भागवते भ्रमरगीतं एकादशमालिन्यात्मकं रुक्मिणीसंदेशं सप्तवसन्ततिलकात्मकं, महाभारते उद्योगपर्वणि श्रीकृष्णदूतवाक्यम् एवमेव ततः परं विलालस्यमानानि दृश्यन्ते बहूनि दूतखण्डकाव्यानि। तेषु प्रामुख्यं भजते कालिदासकृतमेघदूतम्, वेदान्तदेशिककृतहंससंदेशं, श्रीलरूपगोस्वामिकृतहंसदूतमित्येवमादीनि। सम्भवतः दूतकाव्यपारम्पर्ये मन्दाक्रान्तावृत्तस्य माधुर्यप्रधाना वैदर्भीरीति समुपवृंहिता विप्रलम्भश्रृंगारमहसा महोज्ज्वला पारम्परीप्रकटिता श्रृंगाररससिद्ध सरस्वतीवरदपुत्रलघुत्रयीकारप्रसादगुणप्रथितप्रसादनिसर्गसिद्ध कविंकर्मचुञ्चु परमपुण्यपरिष्कृतप्रातिभविलास कविकुलगुरु महाकवि कालिदासेन मेघदूते। ततः पूर्वं प्रकरणभूतं यद् दौत्यकवाङ्मयं तत्र छन्दसां कामचारः। प्रायशः श्रीरामकृष्णादिभगवद्भगवदीयनायकनायिका विरहप्रचारः समुपजृम्भते रसपतिर्विप्रलम्भश्रृंगारः। किन्तु कालिदासेनैव विरचय्य मेघदूतं पूर्वपरम्परातः किमपि वैलक्षण्यं प्रादर्शि। ईषत्पौराणिकच्छायां गृहीत्वा कल्पयित्वा च भगवद्व्यतरिक्तौ प्राकृतौ नायिकानायकौ काल्पनिकीं च कथां परिकलितसंसाराश्रय दम्पतिविरहव्यथां विनिर्माय भवभयकरो

निरतिशयपुण्यहरोहरवाक्यं निखिलप्रपञ्चविरामः कामगीतः। तच्च मेघदूताख्यं सदपि ललितललितं कमनकल्पनाकलापकलितं साधकगवी समुन्माथि मन्मथवर्णनपरतया न ग्राह्यं मुमुक्षुभि 'काव्यालापांश्च वर्जयेत्' इति शास्त्रनिषिद्धत्वात्। तन्मार्जनचिकीर्षुणा मन्दाक्रान्ता वृत्त एव सीतारामगुणग्रामं भगवद्विरहवर्णनप्रधानं विधित्सितमुमुक्षुसमस्यासमाधानं स्वीकृत-श्रीरामनुजपारम्पर्येण वेदान्तदेशिकवर्येण हंससंदेशात्मकं दूतकाव्यम्। दाक्षिणात्यतया दाक्षिणात्यक्षेत्रवर्णनपरं मुमुक्षुभिः प्रशस्तं बहुशः। पुनश्च रूपगोस्वामिकृते हंसदूते नैवाग्रहो मदाक्रान्तायाः। तत्रेषद् वैपरीत्यं गृहीताशिखरिणी संदेशप्रेषिका च नायिका। विप्रलम्भितं श्रीकृष्णं नायकं प्रति स च धीरर्ललितः नायिका च ललिता सापि समारोपितपरकीयाकारा हंसश्च संदेशवाहकः। श्रीकृष्णो नाम न तथाभूतो रसिको यथा निर्मितचरयोः मेघदूत हंससंदेशयोः नायकौ। यक्षो मेघदूतस्य कालिदासकृतस्य राघवो हंससंदेशस्य वेदान्तदेशिक रचितस्य द्वावपीमौ स्वस्ववल्लभानिष्ठौ तस्मात् तयोरेव नायिके। स्वकीये तत्र नैवरसाभासशंकापंककलंकावकाशः। यद्यपि श्रीब्रजांगनानां कृते रसाभासं परिहर्तुकामेन श्रीलजीवगोस्वामिना समाधानमेकं प्रत्तम्। "नेष्टायदङ्गिनिरसेकविभिः परोढा तद्गोकुलाम्बुजदृशां कुलमन्तरेण।" भगवदीयतया तासु परकीयारोपो रसविवृद्धिमात्र प्रयोजनकः। अथ प्रकृतमनुसरामः।

परिपूर्णतमपरात्परपरब्रह्म परमेश्वरनिरस्तसमस्तहेयगुणप्रत्यनीक समस्त कल्याणगुणगणैकनिलयभगवच्छीसीतारामकृपाकादम्बिनी विनिर्गलन्मधुरतम सद्भाव भावितान्तःकरणेन वर्षद्वयात् पूर्वमितः श्रीचित्रकूटे समनुतिष्ठता षाण्मासिकपयोव्रतानुष्ठानं तत्र सतत समनुस्मर्यमाण श्रीसीतारामगुणगणेन मयाऽपि मन्दाक्रान्ता वृत्त एव सैकपञ्चशत श्लोकमयं निरामयं विशुद्ध भगवदीय समुज्ज्वलरसभेद विशेष विप्रलम्भमयं '...ान्तःकरणेन परमपूतं भृङ्गदूतं नाम दूतकाव्यम् समप्रणीतम्।

इह भगवान् श्रीरामः लीलायां दशवदनहृतश्रीसीतावियोगव्यथितात्मापरमात्माऽपि जीवात्मेवानुसरन् मानुषं भावम् लंकां गतां मरणशरणां प्रियां परिसान्त्वयमानः स्वमनोभृंगीकृत्य दूतायमानं प्रेषयति। स च मेघदूतीय यक्ष इव दूतं प्रतिं मार्गवर्णन व्यपदेशेन प्रायशः प्रमुखानि निर्दिशति भारतीयानि स्थानानि पूर्वेभृङ्गे उत्तरस्यापि यावत्सप्ततिश्लोकम्। अनन्तरं सीताकृते संदेशः। इदं विशुद्धभगवद्गुणवर्णनपरतया सर्वथैव ग्राह्यम् मुमुक्षुभिः श्रीसीताराम भक्तैश्च संस्कृतज्ञैः संस्कृतिप्रेमभिश्च। अत्र श्रीसीतारामकृपया ये भावाः समनुभूता मया त एव निबद्धा नैव केचनापि काल्पनिका इति सत्येन शपन् प्रत्याययामि। ये खलु साधनाकाले समाञ्चन मामकीनं जन्मन्यस्मिन् दूरादप्यस्पृष्टभववासना भुजंगिनी विषन् समुपवृंहितश्रीसीतारामचरणातामरस दिदृक्षातृषं सन्मनोदेशम्। त एव भावाः एकाधिकपञ्चशत मन्दाक्रान्तासु सहजतया समुपनिबद्धाः। सावयी मन्दाक्रान्ता यथा "मन्दाक्रान्ता श्रुतिरसमुनिस्पृग्यतिर्भम्नतौगौ"। यथा–रामो रामा रमितचरितोऽप्यार्यमर्यादयाप्तम्। मन्दाक्रान्तायां मगण भगण नगण तगणद्वयगुरुद्वयात्मा वर्णाः। चतुर्थे पुनः षष्ठे तथा सप्तमे यतिः प्रतिचरणं सप्तदश वर्णात्मकम्। अत्र आदर्शदम्पत्यनुकरणीयो विशुद्धो विप्रलम्भः शृंगारो रसेशः। पूर्वभृंङ्गे प्रायशो भारतस्य संस्कृतिमयानि लोकोत्तराणि स्थानानि संगीतानि। उत्तरभृंगे श्रीसीतारामयोः निरतिशयो लोकोत्तरदाम्पत्यप्रेमा अन्योन्यकटाक्षरहितः सहितश्च पारस्परिकसंवेदनामण्डितमाधुर्यमर्यादामयाम्। सम्भावितश्च पतितपाविन्या–समस्तश्रुतिसारभूतया गङ्ग एव भग्नकलिकलुषसंज्ञया विगलितविभक्त्या श्रीसीतारामभक्त्या। नैवात्रोच्छृंखलः शृंगारः। नैत्र मर्यादाभङ्गः। सर्वत्र समुल्लसति सभ्यजनानुकरणीया भारतीय विश्वपरिष्कृतिः संस्कृतिः। प्रादेशेन वीरकरुणबीभत्सरौद्र–भयानकाद्भुतहासशान्तवत्सलप्रेयोभक्तिरस–वर्णनविलसदपि विशेषतः श्रीसीतारामविप्रलम्भशृंगारधानम्। तदपि श्रुतिसम्मत वैदिकब्रह्मदम्पतिविषयतया निरस्तनारकावदानं परमप्रामाणिक मुमुक्षूपादानम् सानुसन्धानश्रद्धेयतया समुपादेयं मुमुक्षुभिरिति। पेयं पीयूषवद् भगवच्छ्रीसीताराम भक्तिमद्भिर्निखिल

नारीनरैरिति निघ्नो निवेदयति श्रीसीतारामपदपङ्क रुहयोः श्रीरामनन्दाचार्य परम्परधुर्यो धैर्यधरो वशंवदश्च श्रीवैष्णवानां सतां विदुषां सोपज्ञं श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यो महामहोपाध्यायो महाकविर्वाचस्पतिः स्वामिरामभद्राचार्यः।

पठ्यतां भृङ्गदूतञ्च भृङ्गदूतं प्रगीयताम्।
चिन्त्यतां भृङ्गदूतञ्च रामभक्तैर्दिवानिशम्।।
जनतायाः सुबोधार्थं कृतया राष्ट्रभाषया।
मयार्या च व्याख्ययोपेतं भृङ्गदूतं विचिन्त्यताम्।।

इति मंगलमाशास्ते
राघवीयो जगद्गुरुरामानन्दाचार्यः
स्वामि रामभद्राचार्यः

प्राङ्निवेदनीय

सीतां चिन्तयमानं तं तमालाम्बुदसौभगम्।
सीतामयं परब्रह्म रामं सीतावरं स्तुवे।।

दूतकाव्य भारतीय संस्कृत वाङ्मय के लिए कोई अपरिचित अथवा नवीन घटना नहीं है। किन्तु हाँ मेरे द्वारा प्रणीत 'भृंगदूतम्' कई अर्थों में नवीन अवश्य है।

१- यह प्राकृत नायक नायिका को लक्ष्य करके नहीं लिखा गया, इसके विप्रलम्भश्रृंगाररस के आलम्बन विभाव हैं-साक्षात् वेदवेद्य परब्रह्म सम्पूर्ण जगत के अभिन्ननिमित्तोपादानकारण लोकोत्तर आदर्श दम्पती भारतीय संस्कृतिसर्वस्व मानवीय मर्यादा के एक मात्र उदाहरण, लीला में अन्योन्य से विप्रलब्ध भगवान् श्री सीताराम। यद्यपि कालिदासकृत मेघदूतम् दूतकाव्य की परम्परा का मुकुटमणि बन चुका है। कालिदास माँ सरस्वती के वरदपुत्र और श्रृंगाररस के सिद्धहस्त कवि कहे जाते हैं। न तो मेरी उनसे कोई स्पर्धा है और न ही उनके मेघदूतम् के वैकल्पिक कृति की कोई चिकीर्षा। परन्तु अपनी बात कहने का सबको अधिकार है और कालिदास की ही शब्दावली में "न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्" अर्थात् नवीन काव्य निन्दित ही हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता। मेघदूतम् किन्हीं ऐसी मनोदशाओं से गुम्फित है जो मुमुक्षु तथा परमार्थपथिक बहिनों भाइयों के लिए व्यावहारिक दृष्टि से भी ग्राह्य नहीं कही जा सकती। निश्चित ही मेघदूतम् पाठकों के मन में उच्छृंखल वासना को उद्‌बुद्ध करने में सहायक बन सकता है क्योंकि वह पूर्णरूपेण कामकथा का ही वर्णन प्रस्तुत करता है अतः "काव्यालापांश्च वर्जयेत्" अर्थात् उच्छृंखल कामोद्दीपक काव्यों को नहीं पढ़ना चाहिए। इस श्रुतिनिषेध की परिधि में मेघदूतम् सर्वांशतः आ जाता है। किं बहुना मेघदूतम् की परिस्थिति भागवत के प्रथम स्कन्ध के पञ्चम अध्याय के दशमश्लोक के उस वाक्यार्थ से पूर्णतः मिल जाती है जिसमें वेदव्यास जी ने सन्तजनों के लिए अनुपादेय भगवदीयरसरहित काव्य को वायसतीर्थ की उपमा दी।

मेघदूतम् जिस उन्मुक्त कामभोगवाद की अनुमति देता है उसमें तो आज का भौतिकवादी संसार रचपचकर शिर से डूबा हुआ है। आज की नई पीढ़ी के लिए उसमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो नवीन अथवा अज्ञात या उपादेय हो। जिन मनोदशाओं कां कालिदास बड़े परिश्रम से मेघदूत में गुम्फन करते हैं आज का युवावर्ग उनसे सैंकड़ों गुने अधिक उन मनोदशाओं को जानता और अनुभव कर रहा है। पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित आज के चलचित्र और दूरदर्शन के धारावाहिक कालिदास से करोड़ों गुने अधिक उत्तेजक और उच्छृंखल कामकलाओं को दृश्य प्रसारण के माध्यम से आज के युवावर्ग के सामने सजीव प्रस्तुत करने में सफल हो रहे हैं, अतः आज के युवावर्ग को एक आदर्श चाहिए। इस कुत्सित भोगवाद से कम से कम कुछ समय के लिए विश्राम या विराम चाहिए। नहीं तो किसी न किसी दिन निचोड़े हुए मुसम्मी के फल की भाँति आज का युवावर्ग रसहीन, पुरुषार्थशून्य और तेजोहत होकर ग्रहणकालीन चन्द्रमा के समान आभाहीन हो जाएगा, और इसका पाप लगेगा उन पर जो भारतीय संस्कृति के प्रचार के ठेकेदार माने जाते हैं। इस विडम्बना को आज का कम्प्यूटराइज्ड युवा या युग क्षमा नहीं करेगा, इतिहास हम पर थूकेगा। इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही मैंने आज के युवावर्ग के समक्ष एक ऐसे आदर्श दम्पती को प्रस्तुत करने तथा समझाने का एक प्रयास किया है जिनसे इस विडम्बना भरे युग में कुछ न कुछ प्रेरणा, कर्त्तव्य बोध की दिशा तथा कोई न कोई वैचारिक क्रान्तिकारी सन्देश मिलने की एक सम्भावना प्रतीत होती है।

भृंगदूतम् के प्रतिपाद्य नायक नायिका श्रीराम एवं श्रीसीता एक ऐसे अलौकिक दम्पती हैं जिनमें एक ही साथ जीवन–मूल्यों के प्रति जागरूकता भारतीय संस्कारों की समग्रता, प्राचीन आदर्शों के प्रति समादर, मर्यादाओं के प्रति पूजाभाव तथा राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं कदाचार, अन्याय, अत्याचार एवं अधर्म के विरुद्ध दूरगामी संघर्ष का उत्साह आदि ऐसे अनर्घ्य गुणगण एक साथ दिखते हैं जिन्हें अद्यावधि इतिहास दोहरा नहीं पा रहा है। सीताविरही श्रीराम अपने मन मधुप को ही दूत बनाकर रावण द्वारा अपहृत अपनी

प्राणवल्लभा श्रीसीता जी के पास भेजते हैं। मन का स्वभाव ही है कि वह अपने प्रेमास्पद से संकल्पों एवं स्मृतियों के आलोक में अनेक उल्टी सीधी बातें करता है। और वही कुछ है भृंगदूत में। इसमें कुछ भी अस्वाभाविक एवं अपलपित नहीं कहा गया है इसमें वही कहा गया है जो एक भारतीय, अनुशासित, सभ्य, मर्यादावादी, युवक आदर्शपति अपनी एक मात्र प्रेमपात्र धर्मपरायणा, सती, शिष्ट एवं कोमलहृदया धर्मपत्नी के प्रति कह सकता है। श्रीसीताराम जी की कृपा से भृंगदूतम् में मैंने उन्हीं मानवीय दाम्पत्यमूल्यों को उजागर करने का एक यत्न किया है जिनके चिन्तन से कम से कम कुछ क्षणों के लिए तो व्यक्ति के विचार में क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भावित है और वह अपनी स्वभावसिद्ध पाशवी प्रवृत्ति को छोड़कर महामानवता की स्नेहिल अञ्चल की छाया में सुख की कुछ सांसें तो ले ही सकता है, कुछ देर के लिए घुटन से दूर होकर उन अनर्घ्य सिद्धान्तों को जीवन में उतारने का प्रयास कर सकता है जो सभ्य समाज के दर्पण माने जाते हैं। एक वह पत्नी जो पीहर और ससुराल के सभी राजकीय सुखों को तिताञ्जलि देकर अपने निर्वासित पति के साथ प्रेमपूर्वक घोर वन के लिए चल पड़ी हो उसके संकटापन्न हो जाने पर उससे बिछुड़े हुए आदर्श पति के मन में उस भार्या के प्रति जो करुणा, व्याकुलता, विरह एवं उत्कण्ठा के भाव सहज मन में प्रतिबिम्बित होकर काव्य धरातल पर उतारे जाएंगे क्या वे आज के समाज को कृतज्ञता तथा कर्त्तव्यबोध की प्रेरणा नहीं देंगे? भृंगदूतम् के नायक दम्पती आज के उच्छृंखल क्लब और लव की संस्कृति में रसे बसे हुए कपल की कुत्सित विचारवैतरणी से दूर-दूर तक सम्बंध नहीं रखते। श्रीराम सीता जी के प्रेमास्पद एक पत्नीव्रत कृतज्ञ, सरल कर्त्तव्यनिष्ठ, वीर, कुशल राजनयिक, क्रान्तिकारी क्लीव भावना से सर्वथा दूर सुयोग्य संघटक एवं विचारों के भाण्डागार के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। पत्नी के प्रति प्रेमासक्ति कोई चोरी या पाप नहीं है वह तो सद्गृहस्थ का आभूषण है। पत्नी एक ऐसा मन्दिर है जहाँ जाकर गृहस्थ अपनी उच्छृंखल इन्द्रियों की कुत्सित प्रवृत्तियों को छोड़कर समाज की शाश्वत निष्काम सेवा एवं निर्वृतिका

का निर्दोष पाठ पढ़ लेता है। इसी सिद्धान्त को व्याख्यायित करने के लिए भृंगदूतम् के उत्तरभृंग में एक सौ चौहत्तर मन्दाक्रान्ता श्लोकों के व्याज से प्रभु श्रीराम प्रिया जी को सन्देश देते हैं। सीता जी के प्रति राम जी की तन्मयता एक ओर जहाँ वेदान्त की अद्वैत विचारधारा को झकझोर देती है वहीं दूसरी ओर व्यवहार के उन साधारण से साधारण बिम्बों को भी यहाँ सरल पद्धति से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिनके अनुशीलन से सद्गृहस्थ अपनी गृहस्थी को नरकोचित विडम्बनाओं से बचाकर उसे परमात्मा की प्राप्ति का साधन बना सकता है। भारतीय दाम्पत्य सिद्धान्त उच्छृंखल बुभुक्षा को अपना लक्ष्य नहीं मानता। वह तो मुमुक्षा में ही पर्यवसन होता है। इस रहस्य को भृंगदूतम् में पग-पग पर समझाने का एक प्रयास किया गया है इसमें कुछ भी अनपेक्षित या निर्मूल नहीं कहा गया है यह मौलिक होने पर भी मेघदूतम् की भाँति काल्पनिक या असत्य कथाओं का गुम्फन नहीं है और न ही यहाँ मेघदूतम् के मेघ जैसे अस्वाभाविक और असत्य दूत की कल्पना की गई है। यहाँ तो श्रीराम का वही मनोभृंग सीता जी का दूत है जिसका संकल्पात्मक वार्तालाप भारतीय संस्कृति द्वारा अनुमोदित है श्रीराम की सीता आज की वाइफ जैसी केवल वासना की पुतली नहीं है उन्हें भारतीय मूल्यों के प्रति आदर है और भारतीय परिवार के प्रति संचालन का अभ्यास। वे देवर लक्ष्मण को भी पुत्र से कम मानने को तैयार नहीं हैं उन्हें अपनी सासुओं का भी पूर्णवात्सल्य प्राप्त है क्योंकि भृंगदूतम् की सीता का व्यक्तित्व आज की तथाकथित संकीर्णता का पर्याय बनी हुई 'हम दो हमारे दो' के अर्थहीन उद्घोष से प्रभावित नारकीय यातना से युक्त फ्लैट कल्चर को प्रोत्साहन नहीं देता। भृंगदूतम् का सिद्धान्त दर्शन उत्तरभृंग के २२८ वें छन्द से २४४ वें छन्द तक निगुम्फित है। मैं सत्यपूर्वक कहना चाहूँगा कि मेरा भृंगदूत प्राकृत, काल्पनिक काव्य न होकर विशुद्ध भगवत्प्रेरणाप्रसूत संस्कृत में निबद्ध पाँच सौ एक मन्दाक्रान्ताओं में निगुम्फित भक्तिप्रधान दूतकाव्य है।

यद्यपि मैंने अपने विगत पयोव्रत अनुष्ठान के पाँचवें महीने अर्थात्

१५.९.२००२ को राधाष्टमी के दिन चित्रकूट में प्रारम्भ किया था, परन्तु भगवदीय प्रेरणा मिलने में इतने विलम्ब का अनुभव करना पड़ा कि २००४ के ४ अप्रैल तक मैं पूर्वभृंग के केवल १५० श्लोक ही बना पाया था। महिनों महिनों तक एक श्लोक भी नहीं बन पाता था मैं बहुत असमंजस में पड़ गया, परन्तु सिंहस्थ कुम्भ के परिप्रेक्ष्य में उज्जैन के प्रवास के समय श्रीसीताराम जी ने ऐसी प्रेरणाओं का प्रवाह प्रस्तुत किया जिससे एक ही महीने के कार्यकाल में मैंने भृंगदूतम् के दोनों खण्डों को सम्पन्न कर लिया। एक ओर जहाँ उज्जैन कुम्भ का कोलाहलमय वातावरण कानों को फाड़ देने वाले अनियन्त्रित माइकों के स्वर, जगद्गुरुपरम्परा में दिवानिश चलने वाले व्यवहार, दर्शकों की भीड़, क्षेत्र की शरीर पर पड़ने वाली प्रतिकूलताएँ इन सबके बीच में सर्वथा एकान्त में साध्य, कठिन काव्यकर्म यह तो उसी प्रकार सम्भव हो सका जैसे कुरुक्षेत्र के अशान्त वातावरण में भी अर्जुन के लिए गीताज्ञान श्रवण। वस्तुतः मुझे काव्य के रचनाकाल में यह कुछ भी आभास नहीं हो पाया कि मैं क्या कर रहा हूँ। दिनभर की व्यस्तता के पश्चात् रात्रि के ११ बजे से रचनाकार्य प्रारम्भ होता था और २ बजे रात्रि तक चलता था।

मैं शपथपूर्वक कह रहा हूँ कि भृंगदूतम् में मेरी वाणी के सिंहासन पर विराजमान होकर सब कुछ प्रभु श्रीराम ने ही कहा। मैं उसका अनुवादक मात्र था जो मन्दाक्रान्ताओं में निबद्ध श्रीराघव के भावों को जयप्रकाश नारायण गौतम नामक अपने विद्यार्थी से लिखवाता जाता था। यहाँ इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि–

मसिकागद छूयो नहीं कलम गही नहि हाथ।
भृंगदूत महँ सब कह्यो एक जानकीनाथ।।

इसमें कुछ भी न तो अशास्त्रीय है और न ही अप्रासंगिक। लोगों को सुगमता से ग्रन्थ का भाव समझाने के लिए ही भृंगदूतम् की मैंने स्वयं गुञ्जन नामक हिन्दी व्याख्या लिख दी है।

इसके प्रूफ संशोधन में श्रीतुलसी मण्डल (पंजी०) गाजियाबाद के अध्यक्ष आचार्य पं० दिवाकर शर्मा एवं महामन्त्री आयुष्मान् डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' की महनीय भूमिका रही है अत: ये हमारे आशीर्वादों के पात्र हैं। इसके प्रकाशन का सम्पूर्ण व्यय वहन किया है भावजगत में श्रीसीता जी की देवरानी, मेरी लाडिली धर्मपुत्रवधू बुलन्दशहर (उ०प्र०) के उपजिलाधिकारी आयुष्मान् शिवाकान्त द्विवेदी की धर्मपत्नी अखण्ड सौभाग्यवती श्रीमती अर्चना द्विवेदी ने।

अत: उनके प्रति जगद्गुरु रामानन्दाचार्य विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट (उ०प्र०) का प्रकाशन विभाग, सम्पूर्ण विश्वविद्यालय परिवार कृतज्ञ है तथा उन्हें मेरी ओर से अनन्त अनन्त आशीर्वाद हैं।

श्रीसीतायात्रिमलमनसो भावतो देवराण्या:
साध्वीपत्न्या द्विजवर शिवाकान्त नाम्नोऽर्चनाया:।
द्रव्येणैतन्मम विरचितं चारु मुद्रार्पयित्वा
भौमीहस्तेर्पितमतिशुभं भूतये भृङ्गदूतम्।।

इसका मुद्रण सम्पन्न किया है श्रीराघव साहित्य सेवा प्रेस, मेरठ ने, मैं उसके अध्यक्ष अपने सुयोग्य शिष्य आयुष्मान् प्रभात गौतम के प्रति मंगलाशासन करता हूँ। अनन्तर सभी सुधी, सनातनधर्मावलम्बी, संस्कृतज्ञ श्रीरामभक्त, श्रीवैष्णवों बहिन भाइयों के भी करकमलों में भृंगदूतम् काव्य को समर्पित करते हुए पूर्ण आशान्वित हूँ कि निश्चित ही यह नव्य दूतकाव्यसुमन मानवता का कण्ठहार बनेगा।

श्रीराघव: शन्तनोतु

इति मंगलमाशास्ते
राघवीयो जगद्गुरुरामानन्दाचार्य
स्वामि रामभद्राचार्य:

पूर्वभृङ्गेसूक्तयः

उत्तरभृङ्गे सूक्तयः



धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय वाचस्पति कविकुलरत्न श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

जीवनपर्यन्त कुलाधिपति–जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ०प्र०)

卐श्रीमद्राघवो विजयते卐

भृङ्गदूतं दूतकाव्यम्

अथ श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर महामहोपाध्याय वाचस्पति महाकवि जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामभद्राचार्यप्रणीतं भृङ्गदूतं नाम दूतकाव्यं प्रारभ्यते।

पूर्वभृङ्गः

रामोरामारमितचरितोऽप्यार्य मर्यादयाप्तं
पाद्मेः पद्मे पविमिव वहन् मूर्ध्नि शापं स्वतापम्।
नीत्वा बाणानलशलभतां वालिनं वानरेशं
कृत्वा मैत्रिं सहरिजिदरिः श्रावणेऽध्यास्त शैलम्।।१।।

अथ गुञ्जननाम्नी हिन्दीटीका

सीतारामावखिलपितरावीश्वरौ सम्प्रणम्य
दैवीवाण्यां निजविरचिते भृङ्गदूते सुकाव्ये।
हिन्दी व्याख्यां रचयति नृणां तुष्टये रामभद्रा-
चार्यः सीतारघुपतिकृपा भासुरे गुञ्जनाख्याम्।।

गुञ्जन- भगवती श्रीसीता जी को आनन्दित करने वाले एक पत्नीव्रत जैसे उत्तम चरित्रों से सम्पन्न, योगियों के रमण के भी आश्रय भगवान् श्रीराम श्रेष्ठ मानव मर्यादा से प्राप्त, कमलजन्मा ब्रह्मा जी के पुत्र देवर्षि नारद के, स्वयं तथा आत्मीय सीता जी को तपा रहे शाप को कमल पर वज्र की भाँति अपने शिर पर धारण करते हुये, बालि को अपने बाणाग्नि का शलभ अर्थात् पतंगा बनाकर, उसे एक ही बाण से समाप्त करके, मैत्रि अर्थात् सूर्यपुत्र श्रीसुग्रीव को वानरों का राजा बनाकर, इन्द्रविजेता मेघनाद के शत्रु श्री लक्ष्मण जी के साथ चातुर्मास के क्रम में श्रावण मास में प्रंवर्षण पर्वत पर विराजमान हुए।

किष्किन्धायास्त्रिपुरपुरभित्पूज्यपादः पुरस्ताद्
गोत्रे गौत्रीगदितसुषमामाधुरीं धीरधुर्यः।
तिष्ठन् राज्ञा कुणपजनुषां दूरितां दूरितात्मा
स्मारं स्मारं स्मरहरसखोऽप्यास्त सीतास्मरार्तः।।२।।

गुञ्जन–त्रिपुरासुर के नगरों को जलाने वाले भगवान् शंकर के भी पूज्य चरण, धीर धुरन्धर प्रभु श्रीराम, किष्किन्धा गुफा के सम्मुख प्रवर्षण पर्वत पर विराजमान होते हुए, पार्वती जी द्वारा जिनकी शोभामाधुरी का वर्णन किया गया है, ऐसी राक्षसराज रावण द्वारा प्रभु से दूर की हुई श्रीसीता जी का बार बार स्मरण करके, अपनी आत्मस्वरूपिणी प्रिया जी से बिछुड़ कर, कामारि शंकर के मित्र होकर भी सीता जी के स्मरणात्मक काम से आर्त हो उठे।

यद्यप्यस्य क्षणमपि तया नादिशक्त्या खरारे-
र्वीच्ये वापां क्वचिदपि हरेर्नो वियोगस्तथापि।
लीलारङ्गेप्यवनिसुतया वर्जितः पर्वणीव
ग्रस्तज्योत्स्नो नभसि तमसा रामचन्द्रो न रेजे।।३।।

गुञ्जन–यद्यपि तरंग से जल की भाँति एक क्षण के लिये भी अनादि शक्ति भगवती सीता जी से, खरशत्रु प्रभु श्रीराम का कभी भी वियोग संभव ही नहीं है, तथापि लीलारंङ्गमञ्च पर भी पृथ्वीनन्दिनी सीता जी से वियुक्त हुये भगवान् श्रीरामचन्द्र, पर्वकालिक आकाश में राहु द्वारा ग्रसी हुई किरणों वाले चन्द्रमा के समान सुन्दर नहीं लग रहे थे।

मीनोवारः पृथगिवकृतो जिह्मिनाजालभाजा
शोकं कोको निशिनिगमितः केन कोक्या इवेशः।
हंसो हंस्या इव मृगयुणा दूरितो दूरकेण
क्ष्माभूतोऽभूदजसुतसुतो व्याकुलोऽव्याकुलोऽपि।।४।।

गुञ्जन- कपटी जालधारी केवट के द्वारा जल से अलग की हुई, मछली की भाँति, विधाता के द्वारा रात्रि में चकवी के शोक से युक्त किये हुये चकवे के समान, सुख को दूर कर दुःख देने वाले बहेलिये के द्वारा, हंसिनी से विलग किये हुए हंस के समान सर्वसमर्थ सदैव अव्याकुल अर्थात् प्रसन्न रहने वाले अज के पुत्र महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र भगवान् राम भी पृथ्वी पुत्री सीता जी से वियुक्त होकर पूर्वोक्त तीनों वियोगी-उपमानों के समान अत्यन्त व्याकुल हो उठे अर्थात् सीता जी के वियोग में श्रीराम जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीनों अवस्थाओं में तलफलाने लगे।

दर्शं दर्शं रसपतिसखान् प्रावृषण्यान् विभावान्
श्रावं श्रावं श्रवणमधुरं वर्हिसारंगरावम्।
स्मारं स्मारं कततगृहिणीस्वर्गवीगव्यदेहाम्
शं नो लेभे धृतिनिधिरपि क्वापि सीतावियोगी।।५।।

गुञ्जन-सीतावियोगी भगवान् श्रीराम, शृङ्गाररस के वर्षाकालीन उद्दीपन और आलम्बन रूप विभावों को बारंबार निहारकर तथा श्रवणों को मधुर लगने वाले मयूर एवं चातकों के शब्दों को सुनसुनकर एवं क अर्थात् ब्रह्मा जी के तत अर्थात् पूज्य पिता विष्णु जी की पत्नी पृथ्वी रूप कामधेनु की गव्यरूप शरीर वाली अर्थात् विष्णुपत्नी पृथ्वी से प्रगट हुई भगवती सीता जी को पुनः पुनः स्मरण करके स्वयं धैर्य के निधान होकर भी कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर रहे थे।

विशेष- क ब्रह्मा ततः पिता विष्णु तस्य गृहिणी पत्नी पृथ्वी सैव स्वर्गवी=कामधेनुः तस्याः गव्यं=परिणाम भूतं देहः शरीरं यस्याः सा ताम्।

प्रत्यूषेऽसावधिगिरिसरस्यम्बुकम्रे कदाचित्
सन्ध्याव्याजात् जनकतनयाध्यानमग्नो मनस्वी।
दूरे संस्थां व्यथितदयितां जीवयन्दौत्यसोमै-
र्मालामोदाहृतमिव विभुर्भृङ्गमङ्गं ददर्श।।६।।

गुञ्जन-उन मनस्वी भगवान् श्रीराम ने किसी समय प्रातःकाल प्रवर्षण पर्वत पर विद्यमान विमल जल से सुशोभित सरोवर के समीप, प्रातःकालीन संध्या के बहाने पधारकर, जनकनन्दिनी श्री सीताजी के ध्यान में मग्न होकर, अपने से दूर हुई विरहाकुल प्रियतमा को दूतवाक्य रूप अमृत से जीवित करने का यत्न करते हुए, उन्होंने अपनी वैजयन्ती की माला की सुगन्धि से मानों अपने ही निकट ले आये हुए, अपने परम मित्र एक भ्रमर को निहारा।

दृष्ट्वा कर्णे कलमिव सुधा मञ्जुगुञ्जन्तमिष्टम्
वामे वामा वनचणमिव स्वं प्रति श्रावयन्तम्।
भृङ्गं दूतं निजतनुरुचिं प्रेषयिष्यन् प्रियायै
वव्रे वीरो ननु विरहिणीजीवनं प्रेष्ठवार्तम्।।७।।

गुञ्जन-वीर शिरोमणि भगवान् श्रीराम ने, अपने वाम कर्ण के समीप, अमृत के समान मधुर अनुकूल गुञ्जन करते हुए, स्वयं को प्रभु की पत्नी सीताजी के रक्षण में अत्यन्त कुशल रूप से प्रतिज्ञात करते हुए से, अपने ही शरीर के समान श्यामल भ्रमर रूप दूत को, प्रियतमा सीता जी के लिये भेजते हुये, उसी को दूतरूप में भृङ्गदूतं खण्डकाव्य के परिप्रेक्ष्य में वरण कर लिया। क्योंकि प्रियतम का कुशल श्रवण ही विरहिणी नायिका का जीवन साधन बन जाता है।

तस्मै कर्णे जपप्रकृतये प्रेमविद्याचणाय
स्निग्धं स्तम्बेरमगुणजुषे जीवितार्थी रमायाः।
स्त्रग्वी स्वस्त्रक्सरसिजरसं स्वर्घ्यमाविश्चकार
प्रीत्या काले किल बहुमता पूज्यपूजा गुणाय।।८।।

गुञ्जन-सीता जी के जीवन की इच्छा से सुन्दर वनमाला धारण किये हुये भगवान् श्रीराम ने, स्तम्बेरम=हाथी के समान मत्तगुण वाले प्रेम विद्या में निपुण, उस धीरे-धीरे कान में सूचना देने के स्वभाव वाले भृङ्ग अर्थात्

भ्रमर के लिये अपनी माला में विराजमान अत्यन्त मधुर कमल रस का अर्घ्य प्रीतिपूर्वक प्रस्तुत किया। क्योंकि समय पर ससम्मान की गई पूज्यों की पूजा बहुत लाभप्रद होती है।

अन्तर्यामी सकलजगतां धारणो धर्मसेतुः
केतुः कश्चित् कलितधनुषां विश्वविश्रामहेतुः।
भृङ्गं भृङ्गीश्वरपतिरहो सोऽपि देव्यै दिदेव
प्रह्वः प्रायो दयितविरहः कन्न रङ्कं करोति।।९।।

गुञ्जन–समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी होकर भी सारे संसार को धारण करने वाले, धर्म के सेतु, धनुर्धरों में सर्वश्रेष्ठ सारे संसार के विश्राम के एक मात्र कारण, भृङ्गी के स्वामी भगवान् शंकर के भी एक मात्र आराध्य प्राणेश्वर श्रीराम ने भगवती सीता जी के लिये भ्रमर की भी विनत होकर स्तुति की। क्योंकि प्रायशः प्रेमास्पद का विरह किसको रङ्क नहीं बना देता?

वंशे जातं द्रुहिणजनकोत्सङ्गरङ्गस्य चाले-
र्जाने सस्मात् त्रिगुणितपदैश्चाधिकं तुल्यरूपम्।
तस्मान्मित्रं जनकतनया दौत्यके त्वां नियुञ्जे
सन्तः प्राहुर्विगतकलुषं भाषणं मित्रपत्न्या।।१०।।

गुञ्जन–भ्रमर की स्तुति करते हुये भगवान् राम कहते हैं कि हे भृङ्गवर! मैं भलीभाँति जानता हूँ कि तुम ब्रह्म जी के पिता विष्णु के नाभिकमल के कोष पर विहार करने वाले आदिभ्रमर के वंश में प्रकट हुये हो और मुझसे भी तुम्हारे पास तिगुने अधिक चरण हैं, अर्थात् मैं दो चरणों वाला हूँ और तुम छह चरणों वाले हो, तुम्हारा रूप भी मेरे समान श्यामल है, इसीलिये तुमको अपना मित्र मानकर मैं जनकनन्दिनी सीता जी के दूत कर्म में नियुक्त कर रहा हूँ, क्योंकि सन्तजन मित्रपत्नी के साथ सम्भाषण को निर्दोष कहते हैं।

तं त्वां युञ्जे तरणितनया तोयशोभं सलोभं
सन्देशेला विरुद विशदं मन्मनोमञ्जुदेहम्।
दूतं पूतं जनककुलजा जीव जीवातु भूतम्
प्रेष्ठ प्रैषो विरहवनधौ पोतकः प्रोषितायाः।।११।

गुञ्जन-हे भ्रमर! यमुना जी के जल के समान तुम्हारी शोभा है तथा तुम सन्देश में प्रयुक्त होने वाली वाणी के दिव्य यश से सुहावने हो चुके हो, मेरा मन ही तुम्हारा दिव्य शरीर है, इसीलिये पूर्वोक्त गुणगणों से युक्त, तुझ भ्रमर को जनकनन्दिनी सीता जी के प्राणों की औषधि के रूप में लोभ पूर्वक पवित्र दूत बनाकर, नियुक्त कर रहा हूँ क्योंकि पति से दूर हुई विरहिणी के लिये प्राणवल्लभ का दूत ही विरहमहासागर में विशाल जहाज की भूमिका का निर्वहण करता है। अर्थात् यान बनकर उसे डूबने नहीं देता।

तत्वं गच्छेर्गरुडगमनः पावनीं पामनाशो
लंकां लंकामरवरपुरी मातुरीर्ष्यत्तुरीयः।
सीता भीता दिगिभ शिरसा यत्र बंदी कृतैका
काऽपि स्त्रीभिः श्वहृत हरिणी वास्ति शून्ये शुनीभिः।।१२।।

गुञ्जन- हे भ्रमर! तुम विरह के फोड़ों को नष्ट करने वाले हो, और तुम्हारे वेग पर मुझ तुरीय परब्रह्म को भी ईर्ष्या होती है इसलिये तुम गरुड़ की गति से उस लंकापुरी को जाओ जहाँ स्वयं पवन देवता झाड़ू की सेवा करते हैं और जिसने देवपुरी अमरावती को भी, रङ्क अर्थात् कंगाल बना दिया है तथा जिस नगरी में असहाय नारी की भाँति, बंदी बनाई हुई, सीता जी कुत्तों के द्वारा चुराई हुई और कुतियों के संरक्षण में एकान्त में रहती हुई हरिणी की भाँति, भयभीत रह रही हैं।

त्यक्ताहारा स्वशिरसिजटामेकवेणीं दधाना
नेत्रे मीलन्मधुलिडसिताब्जोपमाने समाने।

मुक्ता भूषा पटरुचिनमच्चक्रवातीय पूषा
सोषः कालाकुल कुमुदिनी वैति दैन्यं प्रिया मे।।१३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मेरी प्राणप्रिया सीता जी लंका में आहार छोड़कर उपवास कर रही हैं, वे अपने शिर पर एकवेणी अर्थात् एकल चोटी की हुई जटा धारण कर रही हैं! तथा उनके दोनों नेत्र कोष में सोये हुये भ्रमर से युक्त सान्ध्यकालीन नीले कमल के समान हो गये हैं उन्होंने अपने सारे आभूषण छोड़ रखे हैं, उनके धूल धूसरित पीले वस्त्रों को देखकर चक्रवात (बवंडर) कालीन धूलि धूसरित सूर्यनारायण भी लज्जा से शिर झुका रहे हैं, अर्थात् वे पीले धूलधूसरित वस्त्र धारण की हुई हैं, मेरी प्रिया जी प्रातःकालीन बिलखती हुई चन्द्रमा से बिछुड़ी कुमुदिनी की भाँति उत्तरोत्तर दीनदशा को प्राप्त करती जा रही हैं।

रक्षस्त्रीभिर्ननु परिवृता सा शुनीभिर्मृगीव
प्राप्तक्लेशा कुधरजयिना राहुणा रोहिणीव।
छायेवार्कात् कनक हरिणच्छद्मना दूरितामत्
प्रस्विन्नाङ्गी न कनकपुरेऽप्येति सौख्यं सखी ते।।१४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम्हारी मित्राणी सीता राक्षसियों से उसी प्रकार घिरी हैं जैसे कुतियों से हरिणी घिर गई हो, राहु के द्वारा चन्द्र पत्नी रोहिणी की भाँति कैलास पर्वत के विजेता रावण द्वारा उन्हें बहुत क्लेश दिया जा रहा है। स्वर्णमृग के छल से रावण द्वारा सूर्य से छाया की भाँति सीता जी मुझसे दूर कर दी गईं। मित्र! उनके अंग पसीने से लथपथ हैं, वास्तव में तुम्हारी सखी रावण के कनकभवन में भी सुखी नहीं हैं।

सा मद्ध्यानस्तिमितनयना सुप्तवानेववापी
नश्यत्सोचिः शुचिहृतरसा वीतवीचिर्नदीव।
क्षीणोत्साहाऽहनि हतहरिर्देहली दीपिकेवा-
श्वासाधारा यदिह धरते धारणेयीति चित्रम्।।१५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! सीता जी मेरे ध्यान में नेत्रों को बन्द करके सम्पुटित कमलों वाली बाबली की भाँति हो चुकी हैं, और प्रकाशहीन उष्णता के कारण सूखे हुये जलवाली तरंगो से रहित नदी की भाँति वे द्युतिहीन हो रही हैं, उनका उत्साह समाप्त हो चुका है, वे अग्नि ज्वालारहित दिन की देहली दीपमाला की भाँति अल्पप्रकाशवाली हो गई हैं, विश्वास ही उनका आधार है, ऐसी विडम्बना में पृथ्वीपुत्री सीता जी यदि जी रही हैं, तो यही आश्चर्य है।

मन्ये मत्वा निजकुलवधूम्मास्म वैवस्वतोऽगात्
किं वा सीता तपनतपसा तर्जितो वर्जितात्मा।
यद्वा साध्वी स्वसुमणिमहो मत्फणिन्यभ्यगौप्सीत्-
च्छ्रान्तोऽनित्वा वसु निववृते मार्गणात्पाशपाणिः।।१६।।

गुञ्जन–मैं मानता हूँ कि मेरी सीता को अपनी कुलवधू मानकर उनके प्राण लेने यमराज उनके पास नहीं गये होंगे अथवा सीता जी के सूर्य के समान तेजोमय तप से तर्जित अर्थात् प्रताड़ित होने के कारण यमराज ने मेरी आत्मस्वरूपिणी सीता को छोड़ दिया होगा। अथवा सती शिरोमणि मैथिली ने अपनी प्राणरूपमणि मुझ प्राणवल्लभस्वरूप सर्प में छिपा दी होगी इसीलिये अपना धन न पाकर थके हुये पाशहस्त यमराज प्राणों के अन्वेषण से विमुख होकर लौट गये होंगे।

रामेत्यर्णद्वयशुभसुधां प्रेम्णि पेपीयमाना
मद्गाथां सा परिभृतगिरा मञ्जुजेगीयमाना।
मत्पादाब्जे नयनमधुपौ धाम्नि देधीयमाना
जायाजीवेदिदमिहपरा लम्बनं प्रोषितायाः।।१७।।

गुञ्जन–राम इस मेरे दो अक्षर नाम रस की पवित्र सुधा का प्रेम पूर्वक बार–बार पान करती हुई, अपनी कोकिल बाणी में मेरी गाथा को पुनः पुनः गाती हुई, अपने नेत्र रूप भ्रमर को मेरे चरणकमल रूप धाम में स्थापित

करती हुई, यदि मेरी पत्नी सीता जी जीवित हों तो बहुत अच्छा क्योंकि अपने पति से बिछुड़ी हुई विदेश में जीवन काटने वाली सती शिरोमणि का यही तो आधार है।

सा मच्चिन्तादिविजपुरिसच्चित्तचिन्तामणिर्वै-
मत्तोशाम्भोरसितपदहं पारिजातस्तदीहः।
तस्या धत्ते सुमतिवरटा मद्यशोमञ्जुमुक्तां
मद्भावारीहृदमरगजातूर्यमभ्यस्यतीव ॥१८॥

गुञ्जन-हे मित्र! मेरी प्राणवल्लभा सीता ने अपने चित्तरूप चिन्तामणि को मेरे चिन्तन रूप अमरावती में स्थापित कर रखा है, श्री सीता का अहंकार रूप पारिजात मेरे ही परितोष रूप जल से आमूल सिंचित हो रहा है, और उसकी चेष्टायें मुझसे ही सञ्चालित हो रही है श्री सीता की बुद्धिरूप राजहंसिनी मेरे ही यशरूप मोतियों को चुगा करती हैं और मैथिली का मन मतंग मेरी ही शोभा रूप बन्धन से बँध गया है और मानो वह तुरीय तत्व का अभ्यास कर रहा है।

तत्वं प्रेयो विरहजलधौ दुस्तरे दूरतीरे
संमज्जन्त्या व्यसनपवनोद्विग्ननावः प्रियायाः।
भूयो भूयाः प्लव इव भवो मन्मनोभृङ्गदेव्याः
प्राहुः प्रैष्ठं विशदमगदं वाचिकं ह्यातुरायै॥१९॥

गुञ्जन-इसलिये हे मित्र! हे मेरे मन रूप भ्रमर जिसके तट का कोई पता नहीं और जिसे पार करना सम्भव नहीं, ऐसे मुझ प्रीतम के विरह सागर में डूबती हुई एवं विपत्ति रूप वायु के द्वारा जिसकी धैर्य नौका डगमगा गई है, ऐसी प्राणप्रिया सीता जी के लिये तुम अत्यन्त दृढ़ जहाज बन जाओ, क्योंकि प्रियतम से बिछुड़ी हुई विरह से व्याकुल सती के लिये प्रियतम का सन्देश ही महोषधि के समान होता है ऐसा सुधीजन कहते हैं।

यावत्प्राणा न जहति जडा जानकीं जातु जाल्मा-
स्तावद् भ्रातर्भव जनकजा जीवदानेवदान्यः।
किं वा वारे स्पृहयति तृषा त्यक्तदेहे सुधातः
कादम्बिन्या कथय किमहो प्रावृषा शुष्कशस्ये।।२०।।

गुञ्जन–हे भाई! जब तक ये जडप्रकृतिवाले दुष्ट प्राण श्री जानकी को छोड़कर भाग नहीं जा रहे हैं तब तक तुम जनकनन्दिनी के जीवन दान में उदार बन जाओ अर्थात् मेरे सन्देश से उन्हें जीवनदान दो क्योंकि जल के लिये तड़फ–तड़फ कर मरे हुये व्यक्ति का अमृत से क्या लेना–देना क्योंकि जल की तड़फन को अमृत तो बुझा नहीं सकेगा और फसल के सूखजाने के पश्चात् वर्षाकालीन मेघमाला से क्या लाभ?

संदेशान् मे मधुपवहतोऽनाहतोर्म्युत्करस्य
प्रेयोवार्ता वितरणविधि व्यापृति व्याप्तकीर्तेः।
गन्तव्या ते सुकृतमवतो रावणी राजधानी
लंकाऽलंका पुरुषपुरिका काऽपि पारे पयोधेः।।२१।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! प्रियजनों के समाचार के वितरण के व्यापार में तुम्हारा यश व्याप्त हो चुका है, इसलिये समुद्र के तरंगो के थपेड़ों से बचते हुये अपने पुण्य की रक्षा करते हुये, मेरे सन्देशों को अक्षरशः धारण करते हुये, तुम्हें समुद्र पार कायर पुरुषों से भरी हुई रावण की राजधानी लंकापुरी जाना होगा।

प्रस्थानात्प्राक्कुणपनगरे दुर्गमे देवदैत्यैः
सीता प्रीत्या अवधमिथिलापौष्यपाथेययुक्तः।
निष्प्रत्यूहं तदनुसुकृती तत्र गन्तुं यतेथाः
श्रेयः सिद्ध्यै भ्रमणमनघं भूतये भारतस्य।।२२।।

गुञ्जन–हे मित्र! सीता जी की प्रसन्नता के लिये देवताओं एवं दानवों

द्वारा दुर्गम राक्षस नगर में प्रस्थान के पहले अवध एवं मिथिला के पुष्प रसों का पाथेय ले लेना इसके पश्चात् निर्विघ्न रूप से पुण्य अर्जन के बल पर लंका गमन का यत्न करना क्योंकि भारत की यात्रा सभी श्रेयों की सिद्धि तथा विभूतियों की प्राप्ति के लिये होती है और वह सभी पापों को नष्ट कर देती है।

गंगाभङ्गामलकललसत्तुङ्गतारंगरङ्गम्
कालिन्दीश्रीसरससरयूनर्मदावीचिसङ्गम् ।
गोदाकृष्णाऽमरवरनदीब्रह्मपुत्रप्रसंगम्
नन्तासि त्वं नमितनयनो भारतं भारतं तत्।।२३।।

गुञ्जन–जो गंगा जी की नित्यनिर्मल कलकल निनादपूर्ण सुन्दर विशाल तरंगों की रंग भूमि है, तथा जिसकी यमुना एवं शोभा सम्पन्न मानस सरोवर से निकली हुई सरयू एवं नर्मदा की लहरों के साथ आसक्ति एवं संगति है, जहाँ कृष्णा, गोदावरी कावेरी और ब्रह्मपुत्र जैसे दिव्य नदी नद विराज रहे हैं, ऐसे दिव्य ज्ञान सम्पन्न भारत को तुम भक्ति से विनीत नयन होकर नमन कर लेना।

गौरी जन्माम्बुनिधिमथनाऽगस्त्यनम्रोच्चकूटैः
सह्याद्रीन्द्राध्युषित हरिभिश्चित्रकूटाम्रकूटैः।
नाना गोत्रैर्गदितगरिम स्वर्गसोपानभूतम्
मन्तासि त्वं मननमधुरं भारतं भारतं तत्।।२४।।

गुञ्जन–श्रीपार्वती के पिता हिमालय सागर मन्थन करने वाले मन्दराचल अगस्त्य द्वारा झुकाये गये विशाल शिखरों वाले विन्ध्याचल सह्याद्रि महेन्द्राचल एवं मुझ परमात्मा के निवास से रमणीय प्रस्रवण, चित्रकूट, आम्रकूट (अमरकंटक) आदि अनेक पर्वतों द्वारा जिसकी गरिमा का गान किया गया है ऐसे स्वर्ग के सोपान रूप मनन करने पर मधुर लगने वाले, प्रकाशयुक्त भारत का तुम मनन करना।

प्रातः सूर्यः किरणकुसुमैर्यस्य सौभाग्यमर्चन्
गाथागातुं सुवतिसुवयो वन्दिनो वन्द्यवन्द्यम्।
वर्षाधीशं वसुवसुमती भागधेयं वसूनाम्
गन्तासि त्वं गमनकमनं भारतं भारतं तत्।।२५।।

गुञ्जन-प्रातः काल सूर्यनारायण अपने किरण रूप पुष्पों से जिसके सौभाग्य की पूजा करते हुये, जिसकी ललित गाथा गाने के लिये पक्षीरूप बन्दियों को प्रेरित किया करते हैं ऐसे पूजनीय देवताओं के लिये भी पूजनीय, सभी वर्षों के राजा वसुओं के भी सर्वस्व, पृथ्वी के भी भाग्यस्वरूप, यात्रा काल में सुन्दर लगने वाले आध्यात्मिक ज्योतिसम्पन्न, मेरे भारतवर्ष में तुम अवश्य जाना।

यस्मिन् सन्तस्तपनतपसा सत्तमस्तोममारान्
मर्यादार्या विमदमनसो नाशयन्तो लसन्ति।
पुण्यारण्यं विबुधवयसां सर्वदैकं शरण्यम्
भ्रान्तासि त्वं भ्रमणशमनं भारतं भारतं तत्।।२६।।

गुञ्जन-हे भृङ्ग! जिस भारतवर्ष में अपने सूर्य जैसे तेजस्वी तप से गहन अज्ञानान्धकार समूह को निकटस्थ भाव से नष्ट करते हुये, आर्य मर्यादा सम्पन्न दिव्य सन्तगण विराजमान हैं ऐसे देवतारूप पक्षियों के लिये पवित्र वन के समान सभी कालों में सभी को शरण देने में समर्थ, चौरासी लाख योनियों में भ्रमण को समाप्त करने वाले दिव्य प्रभामय भारत का तुम अवश्य भ्रमण करना।

यस्मिन्नित्यं प्रकृतिवनिता बद्धसर्वर्तुसख्या
श्रीमत्सख्या विहरति हरिद्रत्नमत्प्रत्नसख्या।
रामारामं पिककपिशुकोद्गीतरामाभिरामम्
गातासि त्वं श्रुतिकलगिरा भारतं भारतं तत्।।२७।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस भारतवर्ष में नारायण की सहचारिणी लक्ष्मी जी द्वारा सेवित, नीलमणि के समान सुन्दर, मेरी चिरन्तन मित्ररूप सीता जी के साथ सभी ऋतुओं से मैत्री पूर्ण व्यवहार करने वाली प्रकृति सुन्दरी निरन्तर विहार करती रहती है, ऐसे भगवती सीता के उद्यान स्वरूप तथा पिक (श्रीवाल्मीकि जी) कपि (श्री हनुमान जी) शुक (श्री शुकाचार्य जी) द्वारा, जहाँ मुझ रामाभिराम राम को गाया जा रहा है, उस अध्यात्मसम्पन्न भारत को तुम भी श्रवण सुखद वाणी से अवश्य गाना।

यस्मिन्हिन्दुर्हिमहिमहिमो हीनभावं दुनोति
स्वाहा जुष्टं विकलतनुभृत्सत्यसेवैकयज्ञम्।
शस्यश्यामं विरतिकलितं त्याग संस्कार भूमिम्
ज्ञातासि त्वं भरतसुहितं भारतं भारतं तत्।।२८।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस भारतवर्ष में रहने वाला (हिं) हिमालय के समान धैर्यवान् (इन्दु) अर्थात् चन्द्रमा के समान शीतल हिन्दूवर्ग हीनभावनाओं को नष्ट करता रहता है, जो स्वाहाकार से युक्त तथा विकलांग सेवा और सत्यभाषण युक्त महायज्ञ में विश्वास करता है, जो हरी–हरी फसलों से श्यामल वैराग्यभावों से सम्पन्न त्याग तथा संस्कार की जन्मभूमि है ऐसे तीनों भरतों के हितैषी प्रकाशरत उस भारत के सम्बन्ध में तुम अवश्य जान लेना।

यस्मिन्वेदो विलसति विभुः सर्ववर्णाश्रमाढ्यो
धर्मो धत्ते यदिह भगवान्मामकीनावतारैः।
यस्मिन्बालाः कलहरिरदा विश्वबन्धुत्वघोषम्
स्पृष्टासि त्वं भरतसहितं भारतं भारतं तत्।।२९।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जिस भारत वर्ष में सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों के सर्वस्व भगवान् वेद विराजमान हैं, जिस भारतवर्ष का मेरे चौबीस अवतारों की सहायता से सनातनधर्म लालन–पालन करता रहता है, जिसमें बालक

भी सिंहों के दाँत गिनते हैं, वसुधैव कुटुम्बम् जिसका घोष है, ऐसे शकुन्तलापुत्र भरत की कर्मगाथा से युक्त पराक्रम ज्योति सम्पन्न भारत को तुम स्पर्श करना।

यस्मिन्सत्यो दयितनिरता यत्र पत्नीव्रतो ना
यस्मिन्भ्राता तृणयति सुखं शासकः सत्यनिष्ठः।
त्यागं विश्वे वितरति सदा संस्कृतिर्वै यदीया
द्रष्टासि त्वं भरतमहितं भारतं भारतं तत्।।३०।।

गुञ्जन–जिस भारत में नारी पतिव्रता और पुरुष एक पत्नीव्रत होता है, जहाँ भाई सुख को तृण के समान छोड़ देता है, जहाँ का शासक सत्यनिष्ठ है, जिसकी संस्कृति विश्व को त्याग का उपदेश देती है, ऐसे मेरे अनुज भरत के द्वारा पूजित तेजोमय भारत का तुम अवश्य दर्शन करना।

मत्सन्देशं कुवलयदृशे देष्टुकामोऽभिरामम्
गच्छेः पूर्वं पितृसखदिशं भृङ्गपूर्वामपूर्वाम्।
प्रत्यूषे यां रविरपि जपा पुष्पपूगावदातै–
रर्चत्युस्रैरवनितनया जन्मदिग्गौरवेण।।३१।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! कमलनयनी सीताजी को, मेरा सुन्दर सन्देश देने के इच्छुक आप, सर्वप्रथम मेरे पिता महाराज श्रीदशरथ के सखा इन्द्र की दिशा अपूर्व पूर्व की ओर प्रस्थान करें। जिस पूर्व दिशा का सूर्यनारायण भी प्रतिदिन प्रातःकाल सीता जी की जन्मदिशा के गौरव से अपनी जपा पुष्प के समान लाल–लाल प्रातःकालीन किरणों द्वारा पूजन किया करते हैं।

तस्यां द्रष्टास्युपभवभवा मातृकं मातृभूमिम्
सीतायास्त्वं मधुप मिथिलां निर्मितां तां मिथेन।
मध्ये वेदि प्रकटहुतभुग्भुक्तपापत्रितापाम्
मातापुत्र्योर्ननुमुररिपोरर्चितां वारिपूरैः।।३२।।

गुञ्जन–हे भृङ्गवर! उसी पूर्व दिशा में भगवान् शंकर के प्राकट्य स्थल केदारनाथ और पार्वती के प्राकट्य स्थल हिमालय के समीप अर्थात् तलहटी में महाराज मिथि द्वारा निर्मित सीता जी की जन्मभूमि उस मिथिला भूमि के तुम दर्शन करोगे जहाँ वेदी के मध्य विराजमान प्रज्वलित अग्नि के द्वारा, तीनों प्रकार के ताप और पाप नष्ट कर दिये गये हैं, और जो भगवान् विष्णु की माता गण्डकी और उनकी पुत्री गंगा जी के जल तरंगो से पूजित होती रहती है।

विशेष–शालग्राम भगवान् के रूप में विष्णु जी का गण्डकी में आविर्भाव होता है, इसलिये गण्डकी भगवान की माँ है, और गंगा जी भगवान् नारायण के चरणनख से उत्पन्न होने के कारण उनकी पुत्री हैं इन्हीं गण्डकी और गंगा के मध्यवर्ती क्षेत्र को मिथिला कहा जाता है।

तत्रारामान्किसलयलसत्सौरभान्सौरभाणा –
मासेवेथा मलयमरुतानीयमानोऽनुशाखम्।
मत्वा मान्यं स्वसखि दयित प्रेषितं त्वां वदान्यं
सम्मन्स्यन्ते मधुकरकलं कोकिलाः काकलीभिः।।३३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस मिथिला में जाकर नवीन पल्लवों से सुशोभित सुगन्ध वाले आम के बगीचों का मलयानिल के झकोरों द्वारा डाल-डाल पर ले जाये हुये तुम आदरपूर्वक अवश्य सेवन करना। निश्चित ही तुम्हें अत्यन्त उदार और अपनी सखी सीता के प्राणवल्लभ मुझ राम द्वारा भेजा हुआ श्रेष्ठ दूत मानकर कोकिलायें अपने पञ्चम स्वर से सम्पन्न वाणी द्वारा तुम्हारा सम्मान करेंगी।

आपृच्छेथाः स्थगितगमनो वस्तुतो भूमिजानिं
सीता तातं जनकनृपतिं कर्णयोर्मञ्जुगुञ्जन्।
यो मत्प्रेमद्युमणिमनिशं सम्पुटे योगभोगे
गोपं गोपं जयति जयिनो जुष्टगेहो विदेहः।।३४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! थोड़ी देर के लिये अपनी यात्रा स्थगित करके सीता जी के पिता और वस्तुतः भूमि के पति महाराज जनक जी से उनके कानों में मधुर गुञ्जार करके अनुज्ञा ले लेना, जो मेरे प्रेमरूप चिन्तामणि को दिनरात योग एवं भोग के सम्पुट में गुप्त रखकर गृहस्थी में भी विदेहावस्था को प्राप्त करके सभी संयमियों पर विजय प्राप्त करते हुये विराज रहे हैं।

विशेष–महाराज जनक इसलिये वास्तविक पृथ्वीपति हैं क्योंकि पृथ्वी से ही उन्हें सीता जैसी पुत्री प्राप्त हुई।

मित्राऽवश्यं रसिकसुखदां व्यस्तकार्यक्रमोऽपि
प्रह्वः प्रेयाः प्रणतशिरसा मैथिलीं वाटिकां ताम्।
यादात्सीता वदनवनरुड् लोभिने भृङ्गतां ते
पूर्वाऽपूर्वां निजजनिभुवं विस्मरेत् किं कृतज्ञः।।३५।।

गुञ्जन–हे मित्र! अपने कार्यक्रम में व्यस्त होकर भी विनम्रता से शिर झुकाते हुये अत्यन्त विनत होकर भगवद्रसिकजनों के लिये सुखद जनकराज की उस वाटिका में अवश्य जाना, जिसने सीता जी के मुखकमल में लुब्ध होने के कारण तुमको भ्रमर का रूप प्रदान किया था अर्थात् पुष्पवाटिका में ही सीता जी के प्रथम दर्शन के पश्चात् उनके मुखकमल में आसक्त तुमको तुम (मेरे मन को) भ्रमर का स्वरूप प्राप्त हुआ था। क्या कोई भी कृतज्ञ अपनी अपूर्व पूर्वजन्मभूमि को भूल जाता है?

मध्ये तस्या नववननमन् मानसं मानसाले
पद्मामोदामुदितमधुपं भाति सीतातडागम्।
यस्मिन्मज्जन्जनकतनयाभ्यंग सङ्गेऽग नूनम्
ब्रह्मानन्दामृतशतसरोभ्योऽभ्युपेष्यस्यरागम् ।।३६।।

गुञ्जन–हे मित्र! हे मेरे मनोभृङ्ग उस पुष्पवाटिका के मध्य अपनी नवीन जलधारा से मानससरोवर को भी नमित कर देने वाला, कमल की सुगन्धि से भ्रमरों को प्रसन्न करने वाला, सीता तडाग नाम का एक सरोवर

सुशोभित है, जिसमें निमज्जन करते हुये, श्रीजनकनन्दिनी जी के श्रीअंग के उबटन के संसर्ग से तुम इतने प्रसन्न होगे कि ब्रह्मानन्दमय अमृत के सैकड़ों सरोवरों से भी तुम्हें वैराग्य हो जायेगा।

तन्मन्मैत्री मुखसखसरोजन्ममाध्वीमरन्दम्
पीत्वा पीत्वात्वमहमहितः पान्थपाथेयमीड्यम्।
कञ्चित् कालं कलय कलया मार्गखेदापनोदम्
प्राहुः सख्युः श्वसुरसदनं शर्मणे सज्जनानाम्।।३७।।

गुञ्जन–हे मेरे अनन्य मित्र! मेरी मित्र सीता जी के मुख के सखा कमल की माध्वी से युक्त मकरन्द को बार-बार पीकर और उसी को अपने मार्ग का श्रेष्ठ पाथेय समझकर कुछ काल तक अपनी गुञ्जन कला के साथ पुष्पवाटिका में उत्सवपूर्वक मार्ग का श्रम दूर कर लेना। अर्थात् पथ की थकान मिटा लेना, क्योंकि मनीषीजन मित्र की श्वसुराल में निवास को सज्जनों के सुख का साधन कहते हैं।

विशेष–पीत्वा अत्व महमहितः इति पदच्छेदः। त्वः अन्य न त्वः अत्वः अनन्यः। तत्सम्बुद्धौ हे अत्व, हे अनन्य इत्यर्थः। महाः उत्सवाः तैः महितः महमहितः।

तत्त्वं गच्छेरलिवरसरो दक्षिणो दक्षिणेन
प्रह्वः प्रायः स किशलतता मण्डपं माधवीयम्।
विश्वामित्राऽनुचर चणकः सौम्य सौमित्रि सध्र्यङ्
चक्रेऽपूर्वं नयनविषयं मैथिलं यत्र पूर्वम्।।३८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर श्रेष्ठ! यद्यपि तुम बहुत कुशल हो फिर भी मेरे द्वारा पूर्व में ही निर्दिष्ट उस सीता तडाग से दक्षिण की ओर वर्तमान, पल्लव एवं लताओं से युक्त माधवी लता के उस मण्डप में जाना जहाँ सर्वप्रथम सौम्य कुमार लक्ष्मण जी के साथी, महर्षि विश्वामित्र की सेवा में निपुण मैंने (राम) मिथिलाधिराज के अपूर्व= पुण्यपुञ्जस्वरूप सीता जी को अपने नेत्र का विषय बनाया था। अर्थात् माधवी मण्डप में ही सर्वप्रथम मैंने सीता जी को देखा था।

यस्मिन्सीता नयनसुभगं वन्यधातु प्रसूनै-
र्माम्प्रत्यग्रैर्मगधतनया नन्दनोऽलञ्चकार।
क्रीडन्केकी मयि घनधिया बद्धरागोऽनुरागी
मद्भूषार्थं नटनमिषतो बर्हमुज्झाम्बभूव।।३९।।

गुञ्जन-हे मित्र। जिस माधवी मण्डप में तत्काल उत्पन्न वन के धातुओं एवं पुष्पों से मगध राज पुत्री सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने सीता जी के नेत्रों के सौभाग्य रूप मुझ राम को सजाया था, और जिसमें खेलते हुये मयूर ने मुझमें बादल की बुद्धि करके अर्थात् मेरे श्यामल शरीर को मेघ मानकर मुझमें रागासक्त होकर अनुराग से नाचने के बहाने मेरे मुकुट के श्रृंगार के लिये अपने पंखे गिरा दिये थे।

तस्मात्प्राच्यां पुरहरवधू लब्धलावण्यलक्ष्मि
द्रक्ष्यस्यारान्मधुप गिरिजामन्दिरं मण्डिताभम्।
यत्रप्रागादवनितनया मन्मनश्चोरयित्वा
तां वन्देथा वरदवनितां पूज्यपूजाफलाय।।४०।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! उस माधवी मण्डप के पूर्व में निकट ही तुम पार्वती जी का एक मन्दिर देखोगे जिससे शोभा भी अलंकृत हो उठी है और जिसको त्रिपुरारि शंकर की पत्नी भगवती गौरी से सौन्दर्य सम्पत्ति प्राप्त हुई है, पृथ्वी पुत्री सीता जी ने माधवी मण्डप से मेरे मन को चुराकर जहाँ पूजा के लिए प्रस्थान किया था वहाँ जाकर तुम भी वरदायक शंकर जी की पत्नी गौरी जी को वन्दन करना, क्योंकि पूज्यों की पूजा बहुत फलवती होती है।

स्नायं स्नायं विमल विमला वीचिविक्लिन्नदेहः
पायं पायं कमनकमला कामलं कन्दकान्तेः।
जापं जापं जनकतनया जीवनं याहि पूर्णः
पुण्यारण्यं सुजनशरणं जानकीजन्मभूमिम्।।४१।।

गुञ्जन–हे बादल के समान नीलशरीर वाले भ्रमर! तुम विमलानदी के विमल तरंगों से अपने शरीर को भिगोकर बार–बार स्नान करके, कमला नदी में उत्पन्न कमल का मकरन्द पी–पीकर जनकनन्दिनी के जीवन मुझ राम का बार–बार जप करके, पूर्ण काम होकर सज्जनों को शरण देने वाले श्रीजानकी जी के प्राकट्यस्थल पुण्यारण्य (पुनौरा) अवश्य जाना।

तत्रत्यां त्वं तमिततमसं रेणुकां रैणुकेया-
भीष्टां जुष्टां जलजजनुषा नम्रमूर्ध्ना दधीथाः।
यस्यां जाग्रज्जनककनकोद्दाममाधुर्यमुक्ताम्
सीता द्वाराद्यदिवजनको रङ्कतामाप्यमुक्ताम्।।४२।।

गुञ्जन–हे भृङ्गवर! तुम रेणुकानन्दन परशुराम की भी अभीष्ट, कमलजन्मा ब्रह्माजी के द्वारा प्रीतिपूर्वक सेवित, अंधकार को नष्ट करने वाली, पुण्यारण्य की धूलि को झुके हुये मस्तक से धारण करना। जिस धूलि में महाराज जनक ने सीता अर्थात् हल के अग्रभाग से बनाई गई रेखा द्वारा, सारे संसार के पिता श्रीरामरूप स्वर्ण की श्रेष्ठ लड़ियों में पिरोई हुई मोती रूपिणी, साकेतविहारिणी, श्रीसीता जी को प्राप्त करके, मुक्ता प्राप्त कर सामान्य दरिद्र की भाँति, अपनी आध्यात्मिक दरिद्रता ही दूर कर ली। अर्थात् जैसे मोती प्राप्त कर दरिद्र धनी हो जाता है, उसी प्रकार पुण्यारण्य की धूलि में साकेतविहारिणी सीतारूप मुक्ता को प्राप्त कर जनक जी धनाढ्य बन गये।

शृण्वन्गाथां स्थगितगतिकः काञ्चनागीयमानाम्
सीताजन्मोत्सवशुचिसुधां ब्राह्मणानां मुखेभ्यः।
सौभाग्याढ्यो निजमुखरुतैर्भृङ्गसारङ्गवाद्यम्
प्रस्तूयस्यास्त्वमपिमहतां श्रेयसे कापि सेवा।।४३।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! पुण्यारण्य में थोड़ी देर रुककर ब्राह्मणों के मुखों से

गायी जाती हुई, श्रीसीता के जन्मोत्सवरूप अमृत से युक्त गाथा अर्थात् बधाई सुनते हुये, तुम भी अपने मुख से शब्द अर्थात् गुञ्जार से सारङ्गीवाद्य की सेवा प्रस्तुत करके सौभाग्यशाली बन लेना, क्योंकि महाविभूतियों की कोई भी सेवा कल्याण के लिये ही होती है।

विशेष–भ्रमर की गुञ्जार प्रायः सारङ्गीवाद्य के स्वर जैसी होती है।

तत्रोद्गीतं श्रवणमधुरं व्रीडितोद्गीथगीतम्
संश्रृण्वानो ललितललितं जानकीजन्मगीतम्।
मैथिल्याढ्यं नवपदलसन् मैथिलानी वधूभी-
रामारामे रमितरमणी रामरामं रमेथाः।।४४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस पुण्यारण्य में श्रवणों को सुख देने वाले, उद्‌गीथ गान को भी लज्जित करने वाले, अत्यन्त ललित मैथिली भाषा में, प्रस्तुत नवीन पदों से सुशोभित, मिथिलानी वधूटियों द्वारा गाये गये श्रीसीता जी के जन्मगीत सुनते हुये, तुम मेरी प्राणवल्लभा सीता जी के ही उद्यान में, मुझमें अनुरक्त रमणी शिरोमणि सीता तथा मुझ राम को रमाते हुये रम जाना।

सीताकुण्डं विमलकमलाम्भोरुहामोदमोदा-
कृष्टस्वर्गोपवनमधुपं गाहतां गाढभक्तिः।
यच्चक्षेत्रं समनुकृषतो यज्ञियं सीरकेतो-
र्भूमिं भित्वा जनकसुतया साधु सौदर्यमापत्।।४५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जल को निर्मल करने वाले, कमल की सुगन्धि-की प्रसन्नता से स्वर्ग की भी वाटिकाओं के भ्रमरों को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले, सीताकुण्ड में आप भक्तिपूर्वक अवगाहन कीजियेगा। जिसने यज्ञार्थ हलद्वारा क्षेत्रकर्षण करते हुये जनक जी के ही समक्ष पृथ्वी को फाड़कर प्रकट हुई जनकनन्दिनी सीता जी के साथ ही सौदर्य अर्थात् उनके सगे भाई का पद प्राप्त कर लिया। अर्थात् सीता जी के ही साथ सीताकुण्ड भी प्रकट हुआ।

तत्वं मत्वा मधुकरचिरं रातरामाविहारम्
भैङ्गं भैक्षं कुलकमलिनीर्मार्गमाणो मरन्दम्।
सम्पूज्येथाः श्वसुरनगरे पूपुरन्ध्रीभिरुच्चैः
प्रायः सन्तः श्रितमधुकरी वृत्तयः सत्क्रियन्ते।।४६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस सीताकुण्ड को सीता जी के बालक्रीड़ा बिहार का प्रदाता मानकर तुम बहुतकाल तक वहाँ की श्रेष्ठ कमलिनियों से, भ्रमर के लिये उचित मकरन्द की भिक्षा मांगते हुये, मेरी ससुराल में नगर की कुलाङ्गनाओं द्वारा सम्मानित हो सकोगे, क्योंकि, प्रायशः मधुकरी वृत्ति स्वीकार करने वाले सन्तों का ही सत्कार होता है। जो अपने लिये धन संग्रह करते हैं, ऐसे साधुगण समाज में बहुत दिनों तक नहीं पूजे जाते।

संश्रृण्वानो ननु नच लसन्मैथिलब्राह्मणानाम्
ग्रन्थग्रन्थीर्जटिल जटिला गौतमीः कोटिकोटीः।
गेहे गेहे विवदनपरान्सारिकाभिर्निषिद्धान्
व्रीडा मुद्र्यद् वनजवदनान्गच्छ पश्यन्वटूंस्त्वम्।।४७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! वहाँ तुम मैथिल ब्राह्मणों की ननु नच अर्थात् प्रश्न अवान्तर प्रश्न से युक्त ग्रन्थों की ग्रन्थियाँ तथा न्यायसिद्धान्त की अत्यन्त जटिल, करोड़ों–करोड़ों कोटियों अर्थात् प्रश्नोत्तरों को सुनते हुये तथा मिथिला क्षेत्र के घर–घर में शास्त्रार्थों में उलझे हुये और बार–बार घरों में पाली जाने वाली मैनाओं द्वारा टोक–टोक कर चुप कराये जाते हुये लज्जा से मुद्रित कमल मुखों वाले वटुओं को देखते–देखते आगे बढ़ना।

भुंजानस्त्वं कलितकदलीपत्रके सन्धिताढ्यम्
साकं शाकैः सदधिपृथुकं तत्कणान् मित्रमूर्ध्ना।
बिभ्रत्प्रीत्या नय सुनयनानन्दिनीं नन्दयिष्यन्
दूरस्थायाः प्रभवति मुदे मातृभूः बालुकापि।।४८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! वहाँ मिथिला की परम्परा के अनुसार केले के पत्ते पर भिन्न–भिन्न सब्जियों के साथ, अचारों से युक्त दही चूड़ा खाते हुये, सुनयनानन्दिनी सीता जी को प्रसन्न करने के लिये दही चिवड़ा के कुछ कण प्रेमपूर्वक शिरपर धारण करते हुये सीता जी के पास ले जाना। क्योंकि मैके की बालू भी दूर रहने वाली भारतीय महिला के आनन्द के लिये पर्याप्त होती है।

ब्रिभ्राणस्त्वं पृथुककणिका लब्धकाणादधर्मा
भूयो भव्यो भविकभविता पण्डितानां प्रतिष्ठः।
स्वाचार्यं त्वं गतमथगुणैरेत्यवैशेषिकास्त्वां
जिज्ञासेरञ्छ्रितमपि बुधाः षट्पदीं साप्तपद्यम्।।४९।।

गुञ्जन–हे मित्र! जब तुम अपने शिर पर चिवड़े के कुछ कण धारण करते हुए चलोगे, तब तुम्हें महर्षि कणाद का गुण प्राप्त हो जाएगा, क्योंकि उनके समान तुम भी कण–युक्त रहोगे। हे कल्याणमय! तब तो तुम बहुत ही शीघ्र पण्डितों के बीच प्रतिष्ठित और सुन्दर हो जाओगे। तब तो कणसंग्रह गुणों के कारण वैशेषिक विद्वान् तुम्हें अपना आचार्य मानकर प्रत्यक्षतः षट्पदी अर्थात् तुम्हारे पास छः चरण देखकर भी वे तुमसे साप्तपद्य अर्थात् वैशेषिक दर्शन में प्रसिद्ध द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव इन सात पदार्थों की जिज्ञासा भी करेंगे।

गृद्धेभ्यस्त्वं मधुप शृणुया दिव्यधानुष्कलीलाम्
भूयो भौम्या सखि सहितया प्रस्तुतांबालकेलौ।
यस्यां सीता भटमदहरं घोटकीकृत्य चापम्
कर्षं कर्षं भुवि निजपितुर्विस्मयाब्धिं वितेने।।५०।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! इसके अनन्तर तुम मिथिला प्रान्त में वयोवृद्ध लोगों से सखियों के सहित सीता जी के द्वारा, बाललीला में प्रस्तुत की हुई, वह दिव्य धानुष्कलीला सुनना, जिसमें सीता जी ने वीरों का मद हरण करने वाले शिवधनुष को खेल का घोड़ा बनाकर उसे पृथ्वी पर घसीट–घसीट

कर पिता श्रीजनक जी के विस्मयसागर में ज्वार ला दिया था।

जानामि त्वामवनिसरसी पद्मिनीबद्धनिष्ठम्
पद्मामाध्वी व्रतरतिमतां सम्मतं मानसालिम्।
तस्मात्तन्वन् विरतिविनुतिं मैथिलीचम्पकाभ्यो
भूयो भौमी व्यसनशमने शं चरेश्चञ्चरीक।।५१।।

गुञ्जन–हे मेरे मनोभृङ्ग! मैं तुम्हें जानता हूँ कि तुम पृथ्वीरूप तलैया की कमलिनी, सीता में ही तुम्हारी निष्ठा बँधी हुई है, तुम कमलिनी रस के व्रत में प्रीति रखने वाले लोगों के द्वारा भी सम्मत और पूजित हो, तात्पर्यतः सभी एकनारीव्रत तुम्हारी पूजा करते हैं, मेरा मन ही तुम्हारा स्वरूप है, इसीलिये मैथिलसुन्दरी चम्पाओं के प्रति वैराग्य और विनम्रता भावों को धारण करते हुये फिर से भूमिनन्दिनी सीता जी के संकट को दूर करने में ही कल्याण का आचरण करना क्योंकि तुम वह चम्चरीक हो, जो चम्पा के प्रति कभी आकृष्ट नहीं होता, इसलिये मिथिलानियों के प्रति, अनासक्त और विनत रहकर मेरा सन्देश लेकर निर्बाध रूप से सीता जी के पास जाओ।

तस्माद्देशाद्धरणितिलकाद्धारणेयीं दिदृक्षुः
प्रत्यङ्प्रत्यक् पुलककलितो याहि यायावरेश।
वैशाल्याम्भोः पिकरवरसैरर्चितोऽप्याम्रपाल्यां
मा रंसिष्ठा न पथि यतिनो विश्रमो मङ्गलाय।।५२।।

गुञ्जन–हे यायावरों के स्वामी निरन्तर भ्रमण में भी आलस्य न करने वाले भ्रमर, धरणि तनया सीता जी के दर्शनों के इच्छुक अतएव पूज्यपुलकावली से युक्त शरीर वाले तुम पृथ्वी के तिलकस्वरूप उस मिथिलाप्रदेश से पश्चिम की ओर वैशाली अवश्य जाना वहाँ कोकिल की कुहुक और आम्ररस से सम्मानित होकर भी तुम वहाँ की आम्रपाली में मत रम जाना क्योंकि अपने लक्ष्य सिद्धि के लिये यत्नशील संन्यासी का पथ में विश्राम मङ्गलप्रद नहीं होता, उसे लक्ष्य तक पहुँचकर ही विश्राम लेना चाहिये।

तीर्त्वा तूर्णं सुरवरनदीं नम्यनम्यां नदीष्णो
गङ्गां भृङ्ग स्मरहरजटारङ्ग खेलत्तरङ्गाम्।
तत्रस्नात्वा भवभयहरे ब्रह्मवारिण्यपारम्
पारावारं सुकृतसुखयोरेत्य मोमुद्यसे त्वम्।।५३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम नदियों को पार करने में भी बहुत कुशल हो, अतः वन्दनीयों की भी वन्दनीया, भगवान शंकर जी की जटा में अटखेली करने वाली लहरों से युक्त देवताओं की श्रेष्ठ नदी गंगा जी को शीघ्र पार करके उनके अपार ब्रह्ममय जल में स्नान करके तुम पुण्य एवं सुख के अगाध सागर को प्राप्त कर अतिशीघ्र अत्यन्त प्रसन्न होओगे।

गङ्गामर्चन् जलजरजसा मान्यतां स्मारयेस्तां
यात्रारम्भे विपिनवसतेर्मानितां भूमिपुत्र्या।
प्रोष्यक्षेमं सपतिसुहृदा प्रार्चितासे मयेत्थम्
श्रेयो दुग्धे तदनुचरणस्मारणं हीश्वराणाम्।।५४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! स्नान के अनन्तर कमल के पराग से गङ्गा जी की पूजा करते हुये, तुम उन्हें उस मान्यता का स्मरण करा देना, जो वनवास के प्रारम्भ में पृथ्वीनन्दिनी सीता जी ने मानी थी वह इस प्रकार थी–कि "मैं (सीता) पति श्री राघव एवं उनके मित्रस्वरूप देवर श्रीलक्ष्मण जी के साथ सकुशल वन प्रवास सम्पन्न करके लौटकर आपकी पूजा करूँगी।" क्योंकि महान लोगों को उनकी पूजा का स्मरण कराना भी बहुत कल्याणकारी होता है।

पारेगङ्गं गमितगरिमा सत्कृपालाभलक्ष्म्या
द्रष्टासि त्वं तनुभृदरणं सूटजं गौतमीयम्।
यत्राहल्या शिरसि लसता मत्पदेनाभिपेदे
सर्गातीता स्थलकमलिका काप्यभिख्या शिलायाम्।।५५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! सन्तों की कृपा के लाभ की सम्पत्ति से गरिमामय होकर तुम गंगा के पार प्राणिमात्र के शरणस्वरूप महर्षि गौतम का एक सुन्दर कुटीर देखोगे, जिसमें शिलामय अहल्या के शिर पर स्पर्श के क्रम में शोभित हुए मेरे चरण के द्वारा सृष्टि से परे स्थल कमल की एक अपूर्व शोभा प्राप्त की गई। अर्थात् सृष्टि में तो जल में ही कमल देखा जाता है, परन्तु वहाँ अहल्या के शिर पर मेरे चरण को देखकर लोगों को स्थलकमल का भी आनन्द मिल गया।

यस्मिन् गोत्रोद्‌गमन प्रकृतिच्छेददक्षं कदक्षम्
सूत्रामाणं चपल चपलं योजयञ्जन्मभोग्यैः।
भोगारम्भं किल विफलयन्गौतमश्चण्डदण्डै-
र्न्यायोपज्ञा विशदविरुदं कर्मणैवाऽभिपेदे।।५६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम गौतम की वह कुटी देखोगे, जिसमें महर्षि गौतम ने पर्वतों के उड़ने के साधन रूप पंखों के काटने में निपुण, परन्तु दुष्ट अनियन्त्रित इन्द्रियों वाले अत्यन्त चञ्चल इन्द्र को भी उसकी जीवनपर्यन्त भोग्य प्रचण्ड दण्डों से संयुक्त करते हुए, उसके कामभोग साधन को भी निष्फल करते हुये अपने कर्म से ही न्यायाचार्य के दिव्ययश को प्राप्त कर लिया।

यस्मिञ्छामामयुतशरदो यावदात्मानुपापाद्
ग्रावाकारां विपदमनिशं द्वन्द्वसाहं सहन्तीम्।
पादस्पर्शक्षपितकलुषां सङ्गमय्याशुपत्या
पत्नीं प्रापं पतितजनता पावनत्वं गुणं द्राक्।।५७।।

गुञ्जन–जिस गौतम की कुटीर में दश हजार वर्ष पर्यन्त अपने ही अनुचित पाप के कारण पत्थर का आकार धारण की हुई, रातदिन सर्दी, गर्मी आदि द्वन्द्वों के साथ विपत्ति झेलती हुई ब्राह्मणपत्नी को अपने चरण के स्पर्श

से उसके पाप नष्ट करके शीघ्र उनके पति गौतम के साथ मिलाकर मैंने पतितपावन गुण को तुरन्त प्राप्त कर लिया था।

तस्माप्रत्यक् प्रथितयशसं सिध्यसिद्धाश्रमं त्वम्
विश्वक्सेना चरिततपसं तापसस्वर्गवीकम्।
यस्मिन्विष्णुस्त्रिभुवनपिताप्यास्तवात्सल्यवार्धौ
मग्नोभग्नाखिलकुलकलाकौशलो देवमातुः।।५८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! अहल्या के स्थान से पश्चिम, प्रसिद्ध यशवाले, तपस्वियों के लिये कामधेनुस्वरूप, भगवान् वामन की तपोभूमि सिद्धाश्रम जाना, जिसमें तीनों लोकों के पिता भगवान् विष्णु भी अपनी श्रेष्ठकला और कुशलता के साथ देवमाता अदिति के वात्सल्यसागर में मग्न होकर बौने बन गये।

क्षीराब्धीनां शतशतशतं रोमराज्यापि बिभ्रत्
धातुर्धाताप्यहह जननी क्षीरपानाभिलाषम्।
यस्मिंश्चक्रे प्रणतविनतः पञ्चमे स्वावतारे
जातो जातानुरतिमनसां सिद्धिदातापि सिद्धः।।५९।।

गुञ्जन–अहो! जिस सिद्धाश्रम में भगवान् नारायण ने अपने पाँचवें अर्थात् वामन अवतार में अपने रोम-रोम में करोड़ों क्षीरसागर धारण करके भी ब्रह्मा के पिता होकर भी माता के क्षीरपान (दूध पीने के लिये) इच्छुक हो उठे और प्रणत कश्यप के प्रति भी पुत्र बनकर विनम्र हो गये। अपने प्रति अनुरागियों के सिद्धिदाता परमेश्वर भी जहाँ सिद्ध हुए इसीलिये उसका नाम सिद्धाश्रम पड़ गया।

यस्मिन्जाग्रत् गुहमुखनिशाः सौम्य सौमित्रिसार्थः
सार्थं कुर्वन्निजजनिगुणं धन्विधूर्यः सधैर्यः।
वैश्वामित्रं मखमहमवन् सप्तमेऽह्नीषुणास्यम्
पारेवार्धिवणमिव भिषड्नीचमारीचमारात्।।६०।।

गुञ्जन–हे सौम्य! धैर्यवान् और धनुर्धरों में श्रेष्ठ मैं (राम) ने सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी के साथ गुहमुख अर्थात् कार्तिकेय के मुख के समान संख्यावाली छः रात्रिपर्यन्त निरन्तर जगकर, अपने क्षत्रियगुण को सार्थक करते हुए विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुये सातवें दिन नीच मारीच को उसी प्रकार सुदूर समुद्र पार फेंक दिया था, जैसे धन्वन्तरि शरीर के घावों को समाप्त कर देते हैं।

यत्रागृह्णं दिविजसुलभान्यायुधान्यायुधाढ्याद्
यक्षीनाशात्प्रमुदितहृदः कौशिकाच्छक्रदिष्टात्।
मन्त्रग्रामोपनत् विभवान्यौपसंभारवन्ति
प्रातः कर्माण्यरुणकिरणात्जीवलोको यथार्कात्।।६१।।

गुञ्जन–हे मित्र! तुम उस सिद्धाश्रम में जाना, जहाँ यक्षपुत्री ताटका के वध से प्रसन्न मन वाले, इन्द्र से प्रेरित शस्त्र के धनी महर्षि विश्वामित्र से मैंने उसी प्रकार देवताओं के लिये सुलभ मन्त्र समूहों से उपस्थित, ऐश्वर्य सम्पत्ति वाले, संवयमोप–संहार से युक्त, दिव्यास्त्रों को प्राप्त किया था जिस प्रकार प्रातः काल यह जीव लीला अरुण किरणों वाले सूर्यनारायण से सभी जीवनोपयोगी कार्यों को प्राप्त कर लेता है।

गच्छेः प्रत्यक् प्रतिभयभयाकारकारूषकारा
कालव्याली वदनवपुषस्ताटकाया वनं तत्।
यत्राभूवं सितशरकरो यक्षकन्या करेणोः
प्रोद्यद्दर्पक्षपणचणकः कोऽपि कण्ठीरवोऽहम्।।६२।।

गुञ्जन–हे मित्र! सिद्धाश्रम से पश्चिम, भय के लिये भी भयाकार कारूष देश की कारागृह रूपिणी कालसर्पिणी के मुख जैसे शरीर वाली ताटका के उस वन में जाना जहाँ नुकीले बाणों को धारण करने वाला मैं यक्षपुत्री ताटका रूपिणी हथिनी के उद्धत अहंकार को नष्ट करने में निपुण एक अपूर्व सिंह बन गया था।

यत्राऽऽलोक्य द्रुमगिरिकरैस्छन्नमर्कं यथाभ्रैः
सत्सौमित्रिं समरशिखरे शेखरं सुन्दराणाम्।
मायामय्याः सशरधनुषं ताटकायाः स्थितं माम्
विश्वामित्रो मयि गुरुधिया स्वस्तिवाकं बभाषे।।६३।।

गुञ्जन–जिस ताटकावन में बादलों से घिरे सूर्य की भाँति, लक्ष्मण के साथ धनुषबाण लिये हुये, सुन्दरों के भी आभूषण, समराङ्गण में स्थित, मायामयी ताटका के वृक्ष एवं पर्वत समूहों से ढके हुये, मुझे देखकर महर्षि विश्वामित्र ने मुझमें अपनी गुरुबुद्धि के कारण स्वस्तिवाचन किया था।

यत्राकार्षं प्रथमचरितां चारुचारित्ररत्नो-
नूत्नाभ्यासोधृतशरशिखिप्लुष्ट यक्षेशपुत्रीम्।
विश्वामित्र व्यसनविशदीभूतभूतेश देवो
दीव्यन्दिव्यां गतिमथ दिशन् सौम्य संहारलीलाम्।।६४।।

गुञ्जन–हे सौम्य! जिस ताटका वन में सुन्दर चरित्र को रत्नरूप में मानने वाले मैंने, विश्वामित्र के कष्ट से विस्तृत हुये अनेक रुद्रों के पुञ्ज के रूप में खेलते हुये, दिव्यगति देते हुये, नवीन अभ्यास से उद्धृत बाण रूप अग्नि में यक्षपुत्री को भस्म बना देनेवाली संहारलीला का प्रथम चरित्र सम्पन्न किया था।

तत्रस्थित्वा मलदनिलये कृष्ण! कारूषनाम्नि
ग्रामे रामे रमितसुमनाः पादमपाथेयपायी।
श्रोतासि त्वं कृषिकृषिवधूगीतमद्वीर्यगाथे
पाथःक्षेत्रे शिशुरविरुचं शालिशूकं निपश्यन्।।६५।।

गुञ्जन–हे कृष्ण अर्थात् कल्लू (यह दुलार का सम्बोधन है) मुझ राम में लगे हुये सुन्दर मनरूप तुम उन मलय और कारूष ग्राम में थोड़े दिन ठहर कर कमल का रस पीकर पानी से भरे खेतों में बालसूर्य के समान

शोभा वाले सुन्दर धानों के, शूक अर्थात् बालों को निहारते हुए कृषि के ऋषि किसानों की पत्नियों द्वारा गायी जाती हुई, मेरी पराक्रमगाथा का श्रवण करोगे।

तस्मात्पश्चाच्छ्रमशिथिलितश्वङ्घ्रिषट्कः कपर्दि-
क्रीड़ानृत्यप्रमदित वृषाकप्युदाराब्जनेत्रात्।
आविर्भूतां शरसि सरयूं मानसे मन्दमन्दम्
गच्छन्द्रक्ष्यस्यमृतपयसा जाह्नवीं मण्डयन्तीम्।।६६।।

गुञ्जन-हे भृङ्ग! तुम्हारे छहों चरण श्रम के कारण शिथिल हो चुके होंगे इसलिये ताटका वन से पश्चिम की ओर धीरे-धीरे जाते हुए भगवान् शंकर के ताण्डव नृत्य से प्रसन्न वृषाकपि अर्थात् विष्णु के सुन्दर कमलनेत्र से आँसू के रूप में मानस सरोवर में प्रकट हुई और पुनः अपने अमृत जल से गंगा जी को सुशोभित करती हुई माँ सरयू के दर्शन करोगे।

विशेष-आज भी सरयू-गंगा का संगम क्षेत्र, उत्तर प्रदेश के बलिया और बिहार के छपरा का मध्यवर्ती क्षेत्र है, जिसे द्वाबा कहते हैं।

तत्रस्नात्वा सरस सरयू गंङ्गयोस्सङ्गमे त्वं
सङ्गं व्यक्त्वाक्षणमथसखे पद्मिनी रागरंम्।
मन्दं मन्दं मलयमरुता वीज्यमानो विमानो
मार्गश्रान्तिं किल परिणुदेर्विश्रमो ह्यौषधं नुः।।६७।।

गुञ्जन-हे मित्र! कमलिनी का राग ही जिसकी रंग भूमि है ऐसी आसक्ति को क्षणभर के लिये छोड़कर सुन्दर सरयू-गंगा के संगम में स्नान करके, मान रहित होकर तुम मार्ग-की थकावट दूर कर लेना और धीरे-धीरे मलयाचल का वायु तुम्हें पंखा डुलायेगा, क्योंकि विश्राम ही सतत चलने वाले की औषधि है।

विश्रान्तः सन् सपदि जलदश्यामरामाभिरामाः
श्रृण्वन्गाथाः सुभुजजयिनो मञ्जुजेगीयमानाः।

ग्रामस्त्रीभिः ससलिलकलत्कञ्जदृग्भिर्भवघ्नी-
गंत्वा मैत्रावनिपगुरुजां मित्र पश्येः प्रतीच्याम्।।६८।।

गुञ्जन-हे मित्र! सरयू गंगा के संगम पर थोड़ी देर विश्राम करके शीघ्र चलने का उपक्रम करना, हे बादल के समान श्यामल शरीर वाले भ्रमर अनुरागपूर्ण अश्रुयुक्त कमलनेत्रों वाली ग्रामवधुओं द्वारा बार-बार गाई जाती हुई भवमद को नष्ट करने वाली, तथा सीता जी को भी आनन्द देने वाली, ऐसे मुझ सुबाहुविजेता राम की, वीरगाथाओं को सुनते हुए पश्चिम में जाकर तुम मैत्र अर्थात् सूर्यवंशी, अवनिप राजाओं की गुरुजा अर्थात् गुरुदेव वसिष्ठ की पुत्री, श्रीसरयू मैया को आदरपूर्वक निहारना।

या तन्वाना विगतरजसः सौम्य साकेतलोके
स्वस्यांस्नाताञ्जयति विरजा नाम सत्यापयन्ती।
सैषायोध्याधरणिरमणी मौक्तिकस्त्रक्स्वरूपा
भूपानूपा सरति सरयूस्तीरयुग्यागयूपा।।६९।।

गुञ्जन-हे सौम्य! जो साकेतलोक में अपनी धारा में स्नान करने वालों को रज अर्थात् रजोगुण से दूर करती हुई, अपने विरजानाम को सत्यापित करती हुई सभी जलाशयों को जीतती चली आ रही हैं, वही सम्प्रति अयोध्याभूमिरूपिणी नायिका के गले की मुक्तामाला बनकर अपने दोनों ओर राजाओं को निवास देती हुई अपने तटों पर यज्ञीय यूप अर्थात् स्तम्भों को आश्रय देती हुई सरयू नाम से प्रवाहित हो रही हैं।

मन्नेत्राम्भोरुहरसरसां साधकस्वर्गवीकाम्
कन्यां धन्यां रघुकुलगुरोमानसीं बाणहेतुम्।
एणाङ्काभां भवभयहरीं नष्टपङ्काङ्कशङ्कां
वन्देथास्त्वं मम भगिनिकां काञ्चिदिष्टां नदीनाम्।।७०।।

गुञ्जन-हे मेरेमन मधुकर! मेरे नेत्र कमल का अश्रु मकरन्द ही

जिनका जल है, जो साधकों की कामधेनु हैं, जो मेरे कुलगुरु वसिष्ठ जी की मानसपुत्री हैं, जिनका मानससरोवर उद्‌गमस्थल है, जो वसिष्ठ जी के बाण से ही प्रवाहित हुईं, और जो चन्द्रमा के समान श्वेत तथा भवभय को हरनेवाली हैं, जिन्होंने कीचड़, कलङ्क और शंकाओं को नष्ट कर दिया है, ऐसी सभी नदियों की पूज्य मेरी एक अनुपम प्रिय बहिन सरयू को तुम वन्दन कर लेना।

तस्यास्तीरे तरलललिते दक्षिणे दक्षधीरे
ध्यायद्धीरे मलयजमिलन्मञ्जुमाभृत्समीरे।
कूजत्केकिप्रवरपटली कोकिला कोककीरे
द्रक्षस्यास्थामिव तनुभृतां ब्रह्मबोध्यामयोध्याम्।।७१।।

गुञ्जन-हे मित्र! जहाँ भजन में चतुर और धीर पुरुषों का निवास है जहाँ धीर जन परमात्मा का ध्यान करते हैं, जहाँ मलय की सुगन्धि से मिला हुआ माधुर्य की शोभा से युक्त वायु धीरे-धीरे चलता रहता है, जहाँ मोर कोकिलों के समूह, तोते आदि पक्षी बोलते रहते हैं, माँ सरयू के उस दक्षिण तट पर प्राणियों की आस्थारूप वेदों द्वारा बोध्य श्रीअयोध्या जी के तुम दर्शन करोगे।

त्रेतारम्भेऽभिभरतभुवं साधु साकेतलोकात्
प्रत्युद्गन्तुं प्रथममिवमामागतां सत्यनामाम्।
पुण्यारामां शरजजननीमासि शुक्ले नवम्या-
मक्षय्याङ्कं शतनुमिवभीं कामयोध्यामयोध्याम्।।७२।।

गुञ्जन-नारायण की अगवानी करने के लिये, शरीरधारिणी लक्ष्मी जैसी मानो मेरी अगवानी करने के लिये मुझसे पहले त्रेता के आरम्भ में कार्तिक शुक्ल नवमी को भारतभूमि पर आई हुई, सत्या नामवाली सुखस्वरूपिणी, लौह के समान स्थिर, लोगों द्वारा ध्यान का विषय बनाई हुई श्री अयोध्या को तुम निहारोगे।

यस्यां त्यक्त्वा त्वचमिव तनुं कोऽपि भोगीव भोगी
योगीवान्तःक्षपितकलुषो भग्नभूभूतिभोगः।
शान्तः शान्ताखिलकुकरणोन्यस्तपञ्चप्रपञ्चः
पूतः पूतप्रथितचरितो मत्सकाशं चकास्ति।।७३।।

गुञ्जन–जिस प्रकार साँप केंचुल को छोड़कर विमल हो जाता है उसी प्रकार इस अयोध्या में शरीर छोड़कर कोई भी भोगवादी, योगी की भाँति अन्तःकरण के पापों को नष्ट करके सांसारिक भोगों एवं ऐश्वर्यों से दूर होकर, सम्पूर्ण कुत्सित इन्द्रियों को शान्त करके, पाँचों विषयों के प्रपञ्चों से दूर होकर परम शान्त हुआ पवित्र आत्मा, पवित्रजनों द्वारा ख्यात चरित्र होकर, मेरा सामीप्य पाकर सुशोभित हो जाता है।

यस्याः कृत्स्नां कृतिपथिमरी मृद्यते मञ्जु मृत्स्ना
स्थाणुं विष्णुं विरजयति कं यद्रजोराशिरीड्यः।
यस्याः पङ्कः कलिजनिभृतां पापपङ्कं प्रमार्ष्टि
त्वं तां सर्गाज्जलजजनुषोध्याय मे त्वामयोध्याम्।।७४।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! जिसकी कोमल माटी सम्पूर्ण कर्मवासना का मर्दन कर डालती है, जिसकी पवित्र धूलि की राशि, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी निर्मल बना डालती है, जिसका पङ्क कलियुग में जन्मे हुये लोगों के पापरूप पङ्क को नष्ट कर डालता है, ऐसी ब्रह्मा जी की सृष्टि से भी विलक्षण मेरी अयोध्या का तुम अवश्य ध्यान करना।

यस्या धूलौ ध्रुवपदपदो धूसरो बालकेलौ
रिङ्गन्पद्भ्यां न्यपपत्महं लक्षसोऽलब्धलक्षः।
यन्मृत्स्नायामहह रभसा बालको बद्धतृष्णः
पीयूषं नागणयमधिकं पश्य मे तामयोध्याम्।।७५।।

गुञ्जन–हे मित्र! ध्रुवपद देने का जिसके चरण में सामर्थ्य है वह मैं

बाललीला के समय धूलधूसरित होकर, अपने लक्ष्य को न पाकर जिसकी रज में लाखों बार गिरा और जिसके रोम-रोम में ब्रह्माण्ड हैं वह मैं जिसकी मिट्टी पर लालायित होकर अमृत को भी उससे अधिक नहीं मानता था, ऐसी मेरी अयोध्या को तुम अवश्य देखना।

यत्प्राकारा दधति सुषमां न्यक्कृताशेषकाराः
सौधाधाम्ना त्रिदिवसदनान्यासते धर्षयन्तः।
तां मत्प्राणैरपि बहुमतां राघवीं राजधानीं
वन्देथास्त्वं विनतशिरसा सन्नुतिर्हीष्टसिध्यै।।७६।।

गुञ्जन-जिसके प्राकार सभी आध्यात्मिक बन्दीगृहों को समाप्त करके दिव्य शोभा धारण कर रहे हैं। अर्थात् अयोध्या के दर्शन करके कोई भी नरक के बन्दीगृह में नहीं पड़ता। जिसके महल अपने तेज से स्वर्ग के भवनों को भी अपमानित करते हुये विराजते हैं, ऐसी मुझे अपने प्राणों से भी अत्यन्त प्रिय, रघुवंश की राजधानी श्री अयोध्या को तुम शिर झुकाकर नमन करना। क्योंकि महज्जनों का नमस्कार इष्ट वस्तु की सिद्धि में सहायक होता है।

यो वैकुण्ठो गरितगरिमा वेदमूलैः पुराणै
र्नायोध्यायास्तुलयितुमलं सोऽपि सौभाग्यलक्ष्मीम्।
किं खद्योतः प्रभवति तुलां चाधिरोढुं कथञ्चिद्
भर्गो भृज्यज्जलदतमसो ग्रीष्ममध्याह्नभानोः।।७७।।

गुञ्जन-हे मित्र! वेदमूलक पुराणों ने जिस वैकुण्ठ की गरिमा गाई वह वैकुण्ठ भी हमारी अयोध्या की सौभाग्यलक्ष्मी की तुलना नहीं कर सकता। भला बताओ क्या कहीं छोटा सा जुगनू किसी भी प्रकार अपने तेज से बादलों और अन्धकार को भून देने वाले ग्रीष्म के मध्याह्नकालीन सूर्य की तुला पर चढ़ने का साहस भी कर सकता है?

नो साकेतः सुखयति हि मांकर्हिचित् दिव्यकेतो
नो गोलोकः कलयति कदाप्यस्त शोकं विशोकम्।

लब्ध्वायोध्या क्षणवसतिजं सौख्यमानन्दकन्दोऽप्या-
नन्दानां शतमपि सखे मन्य अस्यँस्तृणाय।।७८।।

गुञ्जन–हे मित्र! दिव्य भवनों वाला साकेत लोक भी कभी मुझे इतना सुख नहीं पहुँचा पाता जितनी कि अयोध्या, गोलोक भी मुझ विशिष्ट शोक को कभी भी अस्त शोक अर्थात् शोक रहित नहीं कर पाता। (यहाँ अवध के वियोग का शोक ही विशिष्ट शोक है) अयोध्या निवास के एक क्षण का भी सुख प्राप्त करके, सभी आनन्दों का कारण मैं परमानन्दादि इतर आनन्दों को तृण समान समझकर फेंक देता हूँ।

तत्राभ्येत्य प्रमथपतिना पूजितायां पुरित्वम्
मृत्स्नां कृत्स्नाभयदविरुदोद्भाषितायां षडङ्घ्रे।
वक्ष्यन्मूर्ध्ना मनसिजमदान्मुग्ध मोमोत्सिमुक्तो
मुक्तात्म्येव प्रणति विशदां प्राप्य मद्भव्यभक्तिम्।।७९।।

गुञ्जन–हे मित्र! भगवान् शंकर से पूजित, सभी को अभय देने वाले देवताओं के निवास से प्रकाशित उस अयोध्या में पहुँचकर वहाँ की मिट्टी को मस्तक पर धारण करके संसार के मद से मुक्त होकर तुम इतने प्रसन्न होओगे जितना कि प्रणतसुखकारिणी मेरी भक्ति को प्राप्त करके मुक्तात्मा जन प्रसन्न होते हैं।

पश्यन्पश्चात् परिणतवयः कम्पकम्रेड्यशीर्षान्
वृद्धान्विप्रान्विशदवपुषो मद्वियोगाद् विषण्णान्।
वन्दं वन्दं वद परिणुदन्कौशलं मे महात्मन्
प्रायः . शोकापनुदविकला प्रेयसां प्रेष्ठवार्ता।।८०।।

गुञ्जन–हे महात्मन्! इसके पश्चात् वृद्धावस्था के कारण जिनके पके केशों वाले शिर काँप रहे हैं, ऐसे मेरे वियोग से दुखी, गौर शरीर वाले वृद्ध-वृद्ध ब्राह्मणों के दर्शन करके उन्हें बारम्बार प्रणाम करके मेरा कुशल सुनाना। क्योंकि प्रेमास्पद का सम्पूर्ण कुशल समाचार ही प्रेमीजनों के शोक को दूर कर देता है।

भूयो भूया भुवनमहितां भूरिभागो गुरोर्मे
दृष्ट्वा भूमौ चितमिवमहः पर्णशालां महर्षेः।
यत्राद्याप्यप्रतिहतरुचश्चारुराराज्यमाना
जाज्वल्यन्ते तमितितमसो मत्स्मृतीनां प्रदीपाः।।८१।।

गुञ्जन–हे मित्र! फिर श्रीअवध में सर्वप्रथम पृथ्वी पर विराजमान तेज की भाँति सम्पूर्ण भुवनों में पूजित, मेरे गुरुदेव महर्षि वसिष्ठ जी की पर्णशाला को निहार कर बड़भागी बन जाना जिसमें आज भी अबाधित प्रकाश वाले सुचारू रूप से अत्यन्तदीप्त घोर अन्धकार को नष्ट करने वाले मेरी स्मृतियों के दीपक उत्कर्ष के साथ जल रहे हैं।

तस्या द्वारे दुरितदलना द्रक्ष्यतेरुन्धती ते
तेजो द्वारा ललितललना दीपयन्ती हृदन्तः।
कम्पं कम्पं दिवसकलना कल्पिता मद्विवासं
ध्वान्तांपायं गमयितुमिव प्राप्तरात्री रथाङ्गी।।८२।।

गुञ्जन–हे भृङ्गवर! उस पर्णशाला के द्वार पर जीवों के पाप नष्ट करने वाली, अपने तेज के द्वारा श्रेष्ठ नारी जन के अन्तःकरण को प्रकाशित करती हुई, मेरे बनवास की अवधि का एक-एक दिन गिनती हुई, काँपती हुई, अन्धकार को नष्ट करने के लिये उत्सुक, रात्रि में विराजमान चकवी की भाँति, माता अरुन्धती के तुम्हें दर्शन होंगे।

विश्वामित्र प्रहुतहुतभुग्भुक्तमुक्तात्मदोष-
श्रद्धाकोशात्मजशत समुद्दीप्त शोकौर्ववह्निम्।
शान्ता स्वान्ताम्बुधिवनमहो निर्दहन्तं दुरन्तम्
या मत्प्राप्ति त्रिदशसरिता शान्तमुच्चैश्चकार।।८३।।

गुञ्जन–अहो! जिन शान्तस्वभाव वाली माता अरुन्धती जी ने अपने अन्तःकरण समुद्र के धैर्यरूप जल को भस्म करते हुए, दुरन्त, विश्वामित्र

द्वारा प्रज्वलित क्रोधाग्नि द्वारा खाये गये आत्मदोष से मुक्त श्रद्धा के कोशरूपी अपने सौ पुत्रों के उद्दीप्त शोकरूप वाडवाग्नि को मेरी उपलब्धिरूप गंगा जी द्वारा अत्यन्त शीघ्र ही शान्त कर लिया था। तात्पर्यतः जैसे गंगा जी के द्वारा सागर का वाडवाग्नि शान्त हो गया था उसी प्रकार मेरी प्राप्ति से अरुन्धती जी ने विश्वामित्र द्वारा मारे हुए सौ पुत्रों के शोकाग्नि को शान्त कर लिया।

यस्या हस्ते प्रथममनलो वह्निहोत्रोपयोगी
योगीवास्माभवदपमले सत्कुले ब्राह्मणानाम्।
या प्राथम्यात्प्रथितमहिमा सर्वभर्तृव्रतानां
पूजां लेभे श्रुतिरिवगिरां श्रौतसप्तर्षिमध्ये।।८४।।

गुञ्जन-जिस प्रकार ब्राह्मणों के निर्मल कुल में योगी जन्म लेता है, उसी प्रकार जिन अरुन्धती जी के श्रीहस्तकमल में सर्वप्रथम अग्निहोत्र के लिये उपयोगी भगवान् अग्निदेव प्रकट हुए थे। जिस प्रकार वाणियों के मध्य श्रुति अर्थात् वेदवाणी पूजा प्राप्त करती है उसी प्रकार जिन महिमामयी अरुन्धती जी ने वैदिक सप्तर्षियों के बीच पतिव्रता नारियों में सर्वप्रथम होने से पूजा प्राप्त की अर्थात् विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, अत्रि, गौतम, वसिष्ठ, कश्यप इन सात ऋषियों में केवल वसिष्ठ जी की पत्नी अरुन्धती को ही पूज्य माना गया, छहों ऋषियों की पत्नियों को नहीं।

तां वन्देथा जलजजनुषः सुस्नुषां शान्तिमूर्तिं
श्रद्धापूर्तिं महितमनसां नित्यमायोध्यकानाम्।
स्मारं स्मारं मम विवसनं या ससीतानुजस्य
स्तब्धाकारा सवननयना दारुयोषायितास्ते।।८५।।

गुञ्जन-ब्रह्मा जी की श्रेष्ठ पुत्रवधू शान्तिमूर्ति पवित्र मन वाले अयोध्यावासियों के लिये निरन्तर श्रद्धा की पूर्ति ऐसी उन अरुन्धती माता

को तुम मेरी ओर से प्रणाम कर लेना, जो सीता एवं लक्ष्मण के साथ मेरे निर्वासन को बारम्बार स्मरण करके स्तब्ध, चेष्टा रहित आकृति वाली होकर नयनों में आँसू भरकर इस समय भी लकड़ी की बनी हुई महिला के समान शान्त बैठी हैं।

तस्याः पश्येः परमपुरुषाराधिनं दक्षिणेऽर्क
ज्योतिष्पुञ्जायुतमहमहं ब्रह्मवित्सद्वरिष्ठम्।
श्वेतश्मश्रुं मम गुरुवरं साग्निहोत्रं यमिष्ठं
वह्न्यागारेऽग्निमिवमवरं त्वं वशिष्ठं वसिष्ठम्।।८६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! अग्निशाला में उन्हीं माता अरुन्धती के दक्षिण भाग में मुझ परमात्मा की आराधना करते हुए, सूर्य ज्योति के पुञ्जस्वरूप अनेक वैदिक उत्सवों से प्रसन्न ब्रह्मवेत्ता सन्तों में श्रेष्ठ श्वेतदाढ़ी वाले संयमी, अग्निहोत्र करते हुये, इन्द्रियों को वश में करने वालों में श्रेष्ठ मेरे गुरुदेव श्रीवसिष्ठ जी के दर्शन करोगे।

वन्देथास्त्वं वरदवनदं ब्राह्मणाली सुशालेः
शान्तं दान्तं दमितदशदिग्दण्डदब्रह्मदण्डम्।
स्वाहाकार प्रथित यशसा वामयाजुष्टवामं
हाहाकारघ्नमनलमिव स्वाहया गार्हपत्यम्।।८७।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! ब्राह्मणरूप शालिधान के लिये वरदान देने वाले मेघ के समान, शान्त, संयमी तथा दशों दिशाओं का दमन करने वाले, दुष्ट राजाओं के दण्ड–दाता, ब्रह्मदण्ड से युक्त स्वाहाकार शब्द के उच्चारण से प्रसिद्ध यशवाली धर्मपत्नी अरुन्धती द्वारा सेवित वामभाग वाले, साक्षात् स्वाहा भगवती से युक्त हाहाकार को नष्ट करने वाले गार्हपत्य अग्नि के समान तेजस्वी मेरे गुरुदेव श्रीवसिष्ठ को तुम वन्दन करना।

गुञ्जं गुञ्जं श्रवणसविधे बेधसस्तस्य सूनो-
र्लूनारण्यारणचणधियोऽनामयं मे वदेथाः।
मामायेथा हरणचरितं कोः सुतायाः कजाय
व्रीडाधायी भवति हि गुरोः शिष्यवीर्यापकर्षः।।८८।।

गुञ्जन-हे भृङ्गवर! तुम उन ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ जी के श्रवणों के समीप बार-बार गुञ्जार करते हुए उनसे राक्षसों द्वारा उजाड़े हुये वनकुटीरों वाले ब्राह्मणों के शरण में जिसकी बुद्धि कुशल है, ऐसे मुझ राम का स्पष्ट अक्षरों में अनामय अर्थात् क्षत्रियोचित कुशल कह देना परन्तु उन ब्रह्मपुत्र गुरुदेव से भूमिपुत्री सीताहरण की चर्चा मत करना क्योंकि शिष्य के पराक्रम का अपकर्ष गुरु के मन में लज्जा उत्पन्न करने वाला होता है।

यो मां दृष्ट्वा स्वततवचसा यान्तमारादरण्यं
कौसेयस्योपरि परिवृढं धापयन्तं रघूणाम्।
सीतायास्तं तरुणवयसं चीरमुच्चैर्ननाद
व्याघ्रीक्रान्तो वनगजइव प्रह्वगृह्या हि सन्तः।।८९।।

गुञ्जन-अपने पिता के आदेश से वन जाते हुये रघुवंशियों में श्रेष्ठ, युवावस्थावाले, सीताजी की कौशेयसाड़ी के ऊपर वल्कल पहनाते हुये मुझ राम को सन्निकट देखकर मेरे गुरुदेव वसिष्ठ जी बाघिन के द्वारा दबोचे हुए जंगली हाथी के समान उच्च स्वर में चिल्ला पड़े थे। क्योंकि सन्तजन विनम्रों के प्रति पक्षपाती होते हैं।

दत्वा संख्ये निशितविशिखैर्लोकपालेभ्य आशु
प्रोद्यच्छत्रोः समलशिरसां वैश्वदेवं बलिं वै।
तद्गात्रास्त्रिग्सरिति सरसं स्नातशीर्षोऽहमुच्चै-
र्वक्ष्ये वृत्तं गुरुवरमहं जैत्रवीर्या हि शिष्याः।।९०।।

गुञ्जन–युद्ध में तीक्ष्ण बाणों से गर्वीले शत्रु रावण के मलयुक्त शिरों की लोकपालों को वैश्वदेव बलि देकर, उसी के शरीर की रक्त सरिता में सशिरष्क स्नान करके मैं (राम) स्वयं ही गुरुदेव से यह वृत्तान्त कहूँगा। क्योंकि जिनका पराक्रम विजयशील होता है वे ही गुरु के वास्तविक शिष्य होते हैं।

कौसल्यायास्त्वमथभवनं याहि यायावरेश
प्राच्याः कुह्वा अरविशशिनो मज्जनन्याइवाले।
या मां सीतानुजसहचरं काननं वीक्ष्य यान्तम्
नेत्राम्भोभिः समसिजदलं कुर्वतीवाभिषेकम्।।९१।।

गुञ्जन–हे भ्रमण करने वालों में श्रेष्ठ भ्रमर! श्रीअरुन्धती वसिष्ठ जी के दर्शनों के पश्चात् तुम सूर्य, चन्द्र से रहित अमावस्या की रात्रि की पूर्वदिशा के समान मुझ पुत्र और पिता दशरथ से रहित, मेरी माता कौसल्या के भवन में जाना जिन्होंने सीता एवं लक्ष्मण के साथ मुझे वन जाते देख मेरा अभिषेक करती हुई सी अपने नेत्रों के जलों से मुझे पूर्णरूपेण नहला दिया था।

स्मारं स्मारं विवसनमथानागसे मे समात्रा
प्रत्तं प्रायो निपतति भुवि प्राप्तमूर्च्छा मुमूर्षुः।
स्रावं स्रावं स्तनरसमसौ वत्सलागौरिवार्ता
भग्नोपघ्नाव्रततिरिव वै वत्सवित्ता हि माता।।९२।।

गुञ्जन–सौतेली माँ कैकेयी द्वारा मुझ निरपराध को दिये हुये निर्वासन का बार–बार स्मरण करके, बिछुड़े हुये बछड़े वाली आर्त गौ की भाँति बार–बार थन से दूध चुआकर, आधार वृक्ष के कटने पर निराश्रय लता की भाँति मरणासन्न मेरी माता कौसल्या जी मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं, क्योंकि वात्सल्यभाजन पुत्र ही माता का धन होता है।

यस्यास्तन्या पृषति लषतिः सन्ततं मेऽनभित्सोः
क्षीराब्धीनामहह वहतो लोमभिः कोटिकोटीन्।
यस्या अङ्कं भुवनजनकोऽप्यारुरुक्षुः सदाहम्
को वा मातुर्न भवति ऋणी मातृदेवा हि शिष्टाः।।९३।।

गुञ्जन–अहो! रोम–रोम में करोड़ों–करोड़ों क्षीरसागरों को धारण करने वाले, इच्छा रहित मुझ परमात्मा की जिन कौसल्या के दूध की एक छोटी सी बूँद के प्रति पीने की निरन्तर अभिलाषा बनी रहती है। सम्पूर्ण भुवनों का पिता होकर भी मैं जिनके गोद में आरूढ़ होने की सदैव इच्छा करता रहता हूँ। भला कौन माँ का ऋणी नहीं होता? क्योंकि शिष्ट लोग माता को ही प्रथम देवता मानते हैं।

यस्या रम्यैः कररुहरवैर्नर्तिताशेषमायो
नृत्यन्त्रासं पृथुकचरित स्तालिकाताडमुच्चैः।
यस्या अग्रे न्यपतमबलो नेकसो बाललीलो
यस्या गृह्वन् करजमचलं भूरिदात्री हि धात्री।।९४।।

गुञ्जन–हे मित्र! सम्पूर्ण मायाओं को नचाने वाला मैं, बालचरित करते समय जिनकी सुन्दर चुटकी की धुन पर प्रसन्नता से ताली बजाकर नाचता था, बाललीला में जिनके सामने मैं अनेक बार गिर पड़ता था जिनकी उंगली पकड़कर चलता था, वस्तुतः जन्मदात्री थन पिलाने वाली माँ व्यक्ति को बहुत कुछ दे डालती है।

यद्वात्सल्यामृतवननिधौ षड्गुणा मे निमग्ना
ब्रह्मागुण्यः सगुणशिशुतां व्याप्यतां व्यापको गाम्।
नैरञ्जन्यं जहदकलतां साञ्जनः सत्कलाढ्य-
स्तस्मान्माता छगनमगनेत्याख्यया माजुहाव।।९५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जिनके वात्सल्य रूप अमृत सागर में मेरे ऐश्वर्य धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य नामक छहों गुण डूब गये, मैं ब्रह्म होकर भी बालक, निर्गुण होकर भी सगुण, व्यापक होकर भी व्याप्य बना, मैंने निरञ्जनता और कलाशून्यता छोड़कर आंख में अञ्जन लगाया और पुरुषोचित्त सभी श्रेष्ठ सोलह कलाओं से युक्त हुआ, इसीलिये अजन्मा के जन्म लेने पर मुझ परमात्मा को जिन माता कौसल्या जी ने छगन मगन कहकर बुलाया।

विशेष–छगन–मगन "षड्गुणमग्न" शब्द का अपभ्रंश रूप है।

यत्क्रोडस्थो निजमुखमहो व्रीड़ितैणाङ्कबिम्बो
डिम्भोऽयाचेऽसकृदहमहो क्रीडनेचन्द्र बिम्बम्।
या मां धर्तुं चपलमजिरे धावमानं दधावे
ध्याने धातुं क्षणमपि सखे योगिनोऽयं न शेकुः।।९६।।

गुञ्जन–अहो! अपने मुख की कान्ति से मृगाङ्क चन्द्रमण्डल को लज्जित करने वाला भी मैं बाललीला में जिन कौसल्या जी की गोद में बैठकर अनेक बार खेलने के लिये चन्द्रमा को माँगा करता था, जिस मुझ परमात्मा को क्षण भर भी ध्यान में धारण करने में योगी भी समर्थ नहीं हो सके। हे मित्र! उसी मुझ चपल राम को दौड़ते हुये आंगन में पकड़ने के लिये मेरी माँ दौड़ पड़ी थीं।

तां वन्देथा विधिहरिहरैर्वन्दितां चन्द्रिताशां
श्रीकौसल्यां मम जननिकां भानुमत्पूतपुत्रीम्।
लब्ध्वाग्नेयं हविरथ पितुर्या स्वगर्भेऽदधान्माम्
तेजोमाया वटुमिव सती कश्यपाद्देवमाता।।९७।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस प्रकार प्रजापति कश्यप से तेज प्राप्त कर साध्वी देवमाता अदिति जी ने मायावटु भगवान् वामन को गर्भ में धारण किया था, उसी प्रकार मेरे पिता श्रीदशरथ से अग्नि सम्बन्धी हवि प्राप्त करके जिन कौसल्या माता ने मुझे अपने गर्भ में धारण किया उन्हीं ब्रह्मा,

विष्णु, शंकर से भी वन्दित दिशाओं को आह्लादित करने वाली भानुमान् महाराज की पवित्र पुत्री, मेरी अनुकम्पित माता श्री कौसल्या को तुम अवश्य वन्दन करना।

तस्या वामे श्रवणपुटके स्वब्दशब्दाभिरामं
गुञ्जं गुञ्जं मधुरमधुरं ब्रूहि मेऽनामयं भोः।
श्रुत्वा वार्तं सरसिजरसैमानितस्तत्र मात्रा
विश्रान्तस्याः पथिकृतिमतेः श्रेयसे विश्रमो हि।।९८।।

गुञ्जन–हे मित्र! उन माता जी के बाम श्रवण के पास सुन्दर बादल के शब्द के समान मधुर-मधुर गुञ्जार कर-कर के मेरा अनामय कुशल सुना देना मेरा कुशल समाचार सुनकर माता श्री के द्वारा वहाँ पर तुम्हारी कमल के रसों से पूजा की जायेगी, तुम थोड़ी देरतक विश्राम कर लेना, क्योंकि बौद्धिक लोगों का मार्ग में थोड़ी देर तक विश्राम भी कल्याण का कारण बन जाता है।

तत्र भ्राम्यन्भ्रमर मणिभिर्मेदुरं मेजिरं त्वं
घ्रायं घ्रायं तरुणतुलसीसौरभं सौम्य पश्येः।
यस्मिन्क्रीडन्जगदभयदोप्यर्भको नैजमूर्ति-
च्छायां दृष्ट्वा स्फटिकखचिते प्रारुदं भीतभीतः।।९९।।

गुञ्जन–हे मित्र भ्रमर! उस भवन में भ्रमण करते हुये नवीन तुलसी की सुगन्ध बार-बार लेकर मणियों से सुन्दर मेरा वह आंगन देखना, जिसमें खेलता हुआ जगत् को अभय देने वाला मैं परमात्मा, स्फटिक के फर्श में अपनी ही मूर्ति की छाया को निहारकर अत्यन्त भय से भयभीत होकर जोर-जोर से रो पड़ता था।

यत्रस्निग्धैरनुजसखिभिः क्रीडतो मे भुशुण्डी
प्राप्तानन्दो वदनगलितं प्रास्य दध्योदनं तत्।

यत्कुड्डेषु स्फटिकगुणतः बिम्बितं मत्पदाब्जम्
भक्त्या भ्राता भरत भरतः साश्रु नेत्रो ववन्दे।।१००।।

गुञ्जन–जिस आंगन में स्नेहिल, अनुजों और मित्रों के साथ खेलते हुये मुझ राम के मुख से निर्गलित दही भात का ग्रास पाकर भुशुण्डी जी आनन्दित हो उठे थे, जिसकी दीवारों में स्फटिक मणि की गुणवत्ता के कारण बिम्बित मेरे चरणकमल को अश्रुपूरित नेत्र होकर भक्ति से भरे हुए भैया भरत ने वन्दन किया था।

व्यग्रोऽपि त्वं जनकतनयादर्शनार्थं तथापि
द्रागीक्षेथाः स्थगितगमनो मत्पितुः संग्रहौकः।
यत्स्थान्यर्भानुचरितसखा मामकक्रीडनानि
प्रायो मातुर्दधति महिकां वत्सलोद्दीपकानाम्।।१०१।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! यद्यपि तुम सीता जी के दर्शनों के लिये व्यग्र हो तथापि मेरे पिताश्री के संग्रहालय को अवश्य देख लेना जिसमें रखे हुए, मेरे बालचरित्र के मित्रके समान खिलौने प्रायशः मेरी माताश्री के वत्सलरस के उद्दीपकों की भूमिका का पोषण करते रहते हैं।

तत्राभीष्टां मम घुनघुनां द्रक्ष्यसि त्वं मनोज्ञां
बाल्ये बालप्रकृति वसतो वादितां तां मयैव।
या मत्पाणिप्रसवपुटके लब्धपुण्याधिवासा
श्यामाब्दस्थाम्बुजरविमिलत्विद्युदाभां जहार।।१०२।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! उस संग्रहालय में रखी हुई मेरी परमप्रिय सुन्दर घुनघुना खिलौने को अवश्य देख लेना (जिसे आजकल झुनझना कहते हैं) जिसे बाल्यकाल में बालस्वभाववश स्वयं मैंने बजाया था, जो मेरी अंगुलियों की सम्पुट में पवित्र निवास प्राप्त करके नीले मेघ में विराजमान कमल से मिलित सूर्यनारायण के साथ बिजली की शोभा को भी चुराती थी।

विशेष–यहाँ प्रभु श्रीराम का श्रीविग्रह नीला बादल, उनका हाथ कमल, उसमें विराजमान घुनघुना का स्वर्णदण्ड सूर्य और उसके साथ घुनघुने का ऊपरी भाग सतत घूमने के कारण विद्युत का उपमेय है।

भूयस्तत्रत्रपुजवनिका हेममञ्जूषिकास्थां
द्रष्टासि त्वं तव तनुसखीं भ्रामर भ्रामरीं मे।
या मत्क्रीड़ापरिकृतचरी पूर्वसंस्कारहेतो-
र्भ्राम्यन्तीवाभिलसति वने वायुनैजल्लयतेव।।१०३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! फिर तुम शीशे के ऊपरी आवरण से ढकी हुई सोने की मञ्जूषा में विराजमान, तुम्हारे शरीर की मित्र बनी हुई अर्थात् तुम जैसी श्यामरंग वाली, मरकत मणि निर्मित मेरी भौंरा चकडोरी (एक प्रकार का खिलौना) देखोगे, जो मेरी क्रीड़ा में उपकरण बन चुकी थी उसी पूर्व संस्कार के कारण आज भी वायु से हिलती हुई लता के समान घूमती हुई सुशोभित होती है।

तस्यां द्रक्ष्यस्यथ तृणधनुः कामकोदण्डशोभं
बाल्ये यन्मे करतलसखस्तातपादैर्व्यधायि।
यन्मन्मात्रा नयनसलिलैः प्रत्यहं चाप्रवासात्
पुत्रस्नेहक्षरितपयसा स्नाप्यमानं चकास्ति।।१०४।।

गुञ्जन–हे मित्र! इसके अनन्तर मेरा वह तृण निर्मित धनुष उस मञ्जूषा में देखोगे जिससे कामदेव के धनुष को भी शोभा मिली है, जो पिताश्री द्वारा बाल्यकाल में मेरे हाथ का मित्र बनाया गया था और जो प्रतिदिन मेरी माता कौसल्या द्वारा मेरे वनवास के दिन से ही अपने नेत्रों के आँसुओं से और पुत्रस्नेह से चू रहे थन के दूध से भी सतत स्नान कराया जाता हुआ शोभित हो रहा है।

तस्मात्प्रत्यक् प्रतिमतिहरं हर्म्यमन्मध्यमाम्बं
द्रक्ष्यस्याराद्रतिशत लसद्दीप्तिदासी सहस्त्रम्।

यस्मिन्बाल्ये वयसि बहुशः क्रीडनैः क्रीडयन्ती
व्योम्नीवाब्दैर्वनजवदना केकयत्केकयी माम्।।१०५।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! पिता जी के संग्रहालय के पश्चिम की ओर, विपरीत बुद्धि का हरण करने वाला, मेरी मझली माँ का राजमहल अत्यन्त निकट से देखना जिसमें अनेक रत्नों की शोभा वाली सहस्रों दासियाँ हैं, जिस महल में मेरी बाल्यावस्था में अनेक खिलौने से मुझे खिलाती हुई माता कैकेयी कमलमुख से मुस्कुरा–मुस्कुरा कर, आकाश में बादलों के माध्यम से मोर के समान नचाया करती थीं।

दासी वाक्याद्विचलितमतिर्मामदोषं विवास्य
प्रायश्चित्त प्रबलदहनोद्दग्ध नाथा विनाथा।
शोचत्यम्बा सुतविरहिता येव गृष्टिर्विवत्सा
साश्रुर्नित्यं व्यसुरिव तनुः को न नष्टः कुसंगात्।।१०६।।

गुञ्जन–जो मेरी माँ कैकेयी, दासी मन्थरा के वाक्य से बुद्धि के विचलित होने के कारण, मुझ निर्दोष को वनवास देकर आज विनाथा विधवा हो गई, क्योंकि उनके पति महाराज श्री दशरथ प्रायश्चित्त रूप प्रबल अग्नि में ही भस्म हो गये। कैकेयी बछड़े से बिछुड़ी हुए गौ की भाँति पुत्र भरत से दूर हो गईं, अब तो वे अश्रुपात करती हुईं प्राणरहित शरीर की भाँति निरन्तर शोक करती रहती हैं, भला कुसंगति से कौन नहीं नष्ट हो जाता?

त्रिश्योऽरण्यं श्वसुवि कुयशोऽराज्यमार्तिं तथात्म–
न्यप्राशस्त्यं विषविधवतां क्रूरमृत्युं स्वभर्त्रे।
दत्त्वाशोकं दुरितमनिशं तीव्रतापं प्रजायै
भानोर्वंशं व्यहनहह सा भानुसंख्यैः कुठारैः।।१०७।।

गुञ्जन–अहह! मेरी माँ कैकेयी ने हमें (राम लक्ष्मण सीता को) वनवास, अपने पुत्र भरत को अपयश, कुराज्य और आर्ति, स्वयं को नीचता

और विष जैसा विधवापन अपने प्राणनाथ महाराज दशरथ को क्रूरमृत्यु, प्रजा को दिनरात का शोक, दारिद्र्य और तीव्रतम विरह का ताप देकर सूर्यवंश को इन सूर्यसंख्यावाले बारह कुल्हाड़ों से काट दिया।

नामं नामं चरणयुगले मध्यमायाश्च मातु-
र्भ्रामं भ्रामं मधुपपरितः कर्णयुग्मं तदीयम्।
ग्लानिग्रस्तामलिवरमुदा नामयं मे वदंस्त्वं
शोकं नुद्या किलमृदुगिरा कैकेयी कैः प्रशस्ता।।१०८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर श्रेष्ठ! मेरी मझली माँ के चरणयुगल में प्रणाम कर-करके, उनके कानों के पास बार-बार गूंज कर ग्लानिग्रस्त माता से मेरा कुशल कहते हुये, उनका शोकापनोदन करना, क्योंकि कैकेयी किनके द्वारा सम्मानित हुई? इसलिये मुझे उनका सम्मान करना ही चाहिये।

तस्माद्दक्षे छतजवसते द्रक्ष्यते दक्षिणाया
आरादार्तिक्षपणमपण प्रेमभाजो जनन्याः।
मा गध्या वै भवनभवनं वैष्णवानामनिन्द्यम्
लीलोर्मीभिर्निचितमुचितं सोर्मिलेशस्य यन्मे।।१०९।।

गुञ्जन–हे कमल में निवास करने वाले मित्र! मझली माँ के राजमहल से दाहिनी ओर, दक्षिणा अर्थात् अनुकूल स्वभाव वाली मगधराज पुत्री और निष्कपट प्रेम को धारण करने वाली, माँ सुमित्रा का वह भवन देखोगे जो वैष्णवों का रक्षक, अनिन्दित तथा उर्मिलापति लक्ष्मण के साथ वर्तमान मुझ राम की लीलातरंगों से तरंगित है।

यत्राशिक्षे दिगधिपबलिं बाल्यकाले सुमित्रा
मातुर्धातुर्वरबलभृतः पंक्तिमूर्ध्नः शिरोभिः।
रान्त्यारामोमुदित कुमुदो मोदकान्कर्मसक्तः
पापध्वंसं [illegible] [illegible]र्थश्रुतेर्वै।।११०।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस राजमहल में मैंने ब्रह्मा जी के वरदान से वर प्राप्त किये हुये, रावण के शिरों से दशदिग्पालों की बलि, लड्डू देती हुई माता सुमित्रा से उसी प्रकार सीखी जैसे कर्म में आसक्त प्राणी पृथ्वी के भोगों से प्रसन्न होने वालों को, आनन्दित करने वाले सांसारिक धनों को देकर मुख्य रूप से वेदविधि के अनुष्ठान द्वारा पापनाशरूप श्रेष्ठ फलवाली रोचनार्था श्रुति से सीख लेता है। तात्पर्य यह है कि जैसे रोचनार्थ श्रुति व्यक्ति को सांसारिक कल का प्रलोभन देकर उसे वैदिक अनुष्ठानों में प्रवृत्त करके, अन्ततः पापनाशरूप फल दे देती है, उसी प्रकार माता सुमित्रा मुझे लड्डुओं का प्रलोभन देकर, रावण वध की शिक्षा दिया करती थीं।

यद्वेदान्ते प्रथितपरमौदार्यं कारुण्यकोशं
कल्याणानामुदधिमनघं भक्तभावैकतोषम्।
ब्रह्माद्वैतं तमतिसिसुमोद्भासि देहं स्वगेहे
बालं लाला ललितवदनं मामगौप्सीत्सुमित्रा।।१११।।

गुञ्जन–हे मित्र! जो वेदान्त में परम औदार्य और करुणा के कोश के रूप में प्रसिद्ध है तथा जिसे कल्याणों का सागर, निष्पाप, भक्तों के एकमात्र भावों से संतुष्ट होने वाला कहा गया है, उसी मुझ सांसारिक माता–पिता से निरपेक्ष, तीसी के फूल के समान सुन्दर सगुण साकार, वस्तु के लोभ से मुख में आई हुई लार से ललित मुखवाले बालरूप में वर्तमान ब्रह्म को सुमित्रा माँ अपने घर में छिपा कर रखती थीं।

तां वन्दित्वा मयि कृतमतिं शक्रशत्रुघ्नसूतिं
वामे कर्णे कथय कुशलं मातरं मे कनिष्ठाम्।
गुञ्जं गुञ्जं शतशतसुधासौभगं सौभगोप्तिं
त्वामत्यर्थं सरससरयूसारसैरर्चिताम्बा।।११२।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मुझमें अनुरक्त बुद्धिवाली इन्द्र के शत्रु लक्ष्मण की जन्मदात्री उन मेरी छोटी माँ को वन्दन करके सैकड़ों अमृत के समान

गुञ्जार कर-करके माँ के बाएँ कान में मेरा कुशल कहना। मेरी माँ इस प्रकार सुन्दर संदेश सुनाने वाले तुझ भ्रमर को मकरन्द युक्त सुन्दर सरयू के कमलों से समर्चित करेंगी, अर्थात् सरयू के मकरन्दमण्डित कमलों से तेरी पूजा करेंगी।

भूयो ब्रूयाः प्रथमगुरवे चापविद्याविधौ मे
मात्रेऽमात्रे हरिरिव हरे र्द्विड्जयं जैत्रवेगः।
मागध्यै भो भुवनवपुषे वाचिकं वाग्मिवर्य
प्रायो वार्तं प्लव इव विपद्वारिधौ मज्जतो हि।।११३।।

गुञ्जन-हे वाग्मियों में श्रेष्ठ भ्रमर! फिर तुम धनुर्विद्या की विधि में मेरी प्रथम गुरु, सम्पूर्ण भुवनों का नियन्त्रण करने वाले मुझ राम की पोषिका, मगधराजपुत्री माता सुमित्रा से उसी प्रकार मेरा संदेश सुनाना, जिस प्रकार देवमाता अदिति को भगवान् विष्णु के शत्रु विजय का समाचार विजयशाली सूर्यनारायण ने सुनाया था। क्योंकि विपत्तिसागर में डूबते हुए के लिए प्रियजन का कुशल समाचार जलपोत (पानी का जहाज) के समान होता है।

लब्ध्वादेशं व्युषितमनघं याश्वपत्यात्मजायाः
कान्तारं मां कटिमुनिपटं नेक्षितुं शक्नुवाना।
प्रत्यादेशाधिकरणचणाप्यात्मवात्सल्यविन्ध्यम्
नीत्वाभ्यरणं स्वमतिधरणौ कौम्भिवत् प्रत्यशेधीत्।।११४।।

गुञ्जन-निष्पाप होने पर भी अश्वपति की पुत्री कैकेयी का आदेश प्राप्त करके वन में प्रस्थान किए हुए वल्कल वस्त्रधारी मुझ राम को करुणा की अधिकता से देखने में असमर्थ होती हुई भी कैकेयी के आदेश को निरस्त करने का अधिकार धारण करती हुई भी जिस सुमित्रा माँ ने अपने वात्सल्य रूप विन्ध्याचल को अपनी बुद्धि की पृथ्वी पर निकट ले आकर अगस्त्य की भाँति बढ़ने से रोक दिया।

तां वन्दित्वा भ्रमर भण भो भार्गवोत्सेकहर्तुः
सत्यां सन्धामिव जलनिधेर्मावहेलां सुवेलाम्।
लक्ष्मीमिन्दोरिव हिमवतोऽसद्धिमानीं हिमानीम्
रामस्यैतां श्रुतिमिव सदा वन्द्यवन्द्यामनिन्द्याम्।।११५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मेरी छोटी माँ को प्रणाम करके परशुराम के मदहर्ता मुझ राम की अनुल्लंघनीय सागर की बेला के समान, चंद्रमा की शोभा के समान, असज्जनों को जड़-बना देने वाले हिमालय पर्वत के सम्पूर्ण बर्फ के समान, वन्दनीयों के भी वन्दनीय निन्दा रहित श्रुति के समान सत्य प्रतिज्ञा सुना देना।

हत्वा क्रूरान् नृपिशितभुजः संयुगे चण्डबाणै
रक्तैः कोष्णैः कुणपजनुषां योगिनीस्तर्पयित्वा।
दत्वा पूजां दशमुखशिरःपुष्पिकां दिक्पतिभ्यः
प्रत्यायातस्तवपदरजः शोणपाणिर्ग्रहीष्ये।।११६।।

गुञ्जन–आपका पुत्र मैं राम प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने प्रचण्डबाणों से क्रूर नरमांसभक्षियों को मारकर, राक्षसों के गरम रक्त से योगिनियों को संतुष्ट करके, दिक्पालों को रावण के शिरों की ही पुष्प पूजा भेंट करके, सकुशल अयोध्या लौटकर शत्रुओं के रक्त से लाल हाथ वाला मैं आपकी श्रीचरण रज लूँगा।

कृत्वा सिन्धोर्भरतधरणीं यावदीशं गिरीणा-
मेकां कैकां समधिक निरातंकवादामसादाम्।
गेहे गेहे दशमुखवदं गाथकान् गापयित्वा
द्रक्ष्यामि त्वां सह जनकजा लक्ष्मणश्चाध्ययोध्यम्।।११७।।

गुञ्जन–सागर से हिमालय पर्यन्त इस अद्वितीय भारत भूमि को एक मात्र सुखरूप, आतंकवाद से रहित, क्लेशमुक्त करके घर-घर में रावण

वध की कथा गायकों से गवाकर सीता एवं लक्ष्मण के साथ श्री अयोध्या में आकर आपके दर्शन करूँगा।

जानानोऽपि त्वयि मम कृते भूरि वात्सल्यमम्ब
त्वां सन्देक्ष्यन् अहह हृदये हार्दहीनो हृणीये।
यद्वा नायं प्रकृति मधुरो राघवस्तेऽपराधी
किं कौटुम्बं क्वचन हि सुखं क्वेव सेवाव्रतानाम्।।११८।।

गुञ्जन–हे माँ! मेरे प्रति आपमें अनन्त वात्सल्य जानता हुआ भी हृदय के भाव से हीन मैं राम आपको संदेश भेजते हुए लज्जा का अनुभव कर रहा हूँ। अथवा स्वभाव से मधुर राघव आपके प्रति अपराधी नहीं है। क्योंकि जिसने सेवा व्रत ले लिया उसके लिए कौन कुटुम्ब और किस प्रकार का सुख?

वाच्या वाचामृतरससिचा मागधेयीमुखेन
श्रीसीताया लघुभगिनिका सौम्य सौमित्रिपत्नी।
यावत् पत्यागममभिरविं या पदास्पृश्य भूमिम्
सारार्तिक्या लिखित वनितेवास्थिता स्फारिताक्षी।।११९।।

गुञ्जन–हे सौम्य! मगधराज पुत्री-माँ सुमित्रा के मुख को माध्यम बनाकर सीता जी की छोटी बहिन लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला से अमृतरस सिञ्चित वाणी में मेरा यह संदेश कहना। जो बनवास के प्रथम दिन से लक्ष्मण के आगमन पर्यन्त सूर्यनारायण की ओर मुख करके एक चरण से पृथ्वी को छूती हुई फटे नेत्रों से सूर्य नारायण को निहारती हुई, चित्र में लिखित नारी की भाँति निश्चेष्ट खड़ी हैं।

नो निर्वाति क्षणमपि सखेऽद्यापि नीराजना स्याः
सत्या ब्राह्मी स्थितिरिव सतो लक्ष्मण प्राणिकायाः।
उर्मीर्लान्ती दयितजलधौ रामभक्तेर्लुनन्ती
कूर्मीः क्रूराः भवभयभृतामूर्मिलेवोर्मिलैव।।१२०।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस प्रकार सन्त के हृदय में स्थित ब्राह्मी स्थिति शान्त नहीं होती उसी प्रकार लक्ष्मणप्राणवल्लभा उर्मिला के हाथ की आरती इन चौदहों वर्षों में कभी बुझी ही नहीं। उर्मिला लक्ष्मणरूप महासागर में श्रीराम भक्ति की लहर लाती हैं और यही संसारीजनों की दुष्टवासना जन्म, स्थिति, बढ़ना–घटना बदलना और मरण इन छहों उर्मियों को काटकर फेंक देती हैं। इसलिए उर्मिला के समान तो उर्मिला ही है।

आरार्तिक्यं तव विगणयन्हर्तुमार्तिं जनानाम्
सेवालक्ष्ये धृतशुचिमना लक्ष्मणोऽन्वर्थनामा।
सम्प्रत्येश्यन् मयि च मनसो लोपयित्वानुबन्धम्
संज्ञासिद्धिं स्वभजनबहुब्रीहिकारं चकार।।१२१।।

गुञ्जन–लोगों की आर्ति (दुःख) दूर करने के लिये आप=उर्मिला की आरती ठुकराते हुये सेवारूप लक्ष्य में अपने पवित्र मनको धारण करके, अब लक्ष्मण अन्वर्थनामा अर्थात् यथार्थनाम वाले हो गये हैं, मुझमें प्रत्यय रूप विश्वास करते हुये, मन (मनस् शब्द के) अनुबन्ध=सांसारिक संबंधों को तथा शब्द की दृष्टि से, टि मात्र को लुप्त करके अपना भजन रूप बहुब्रीहि प्रस्तुत करके उन्होंने लक्ष्मण शब्द की संज्ञा सिद्धि कर दी।

विशेष–लक्ष्मण शब्द बहुब्रीहि समास करके समासान्त अच् प्रत्यय से पृषोदरादित्वात् पूर्वपद लक्ष्य शब्द के अकार तथा यकार का लोप करके, पुनः उत्तर पद मनस् शब्द के टि अर्थात् अस् का लोप करके, पुनः नकार को णकार करके रूढसंज्ञा शब्द के रूप में निष्पन्न होता है। लक्ष्ये मनः यस्य सः लक्ष्मणः। यहाँ बहुब्रीहि शब्द श्लेष अलंकार की महिमा बहुब्रीहि समास तथा अपरिमित धन का वाचक होगा। इसी प्रकार प्रत्यय शब्द भी श्लेष के कारण व्याकरण के समासान्त अच् प्रत्यय तथा भगवद् विश्वास का वाचक होगा, और अनुबन्ध सांसारिक सम्बन्ध तथा प्रकृति के टि मात्र अंश का वाचक होगा अर्थात् जैसे लक्ष्मण शब्द में बहुब्रीहि समास हुआ उसी प्रकार लक्ष्मण में भी भजन रूप बहुब्रीहि अर्थात् अपरिमित धन का संग्रह किया।

जैसे मनस् शब्द में असरूप अनुबन्ध का लोप हुआ उसी प्रकार लक्ष्मण जी में भगवद्विरुद्ध सांसारिक देहगेहसम्बन्ध को ही समाप्त कर दिया।

ब्रूयामेकां तव विवशतां भृङ्ग मृद्वब्जकोशे
बद्धोभासि प्रभुरपि महाकाष्ठभेदे निसर्गात्।
तन्मे भ्राता तव समहरद् वैभवं चोर्मिलायाः
प्रेमाम्भोजं तृणमिव जहत्क्रूरकर्मा हि सेवा।।१२२।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! मैं तुम्हारी एक विवशता कह सकता हूँ कि तुम स्वभाव से महाकाष्ठों को भेदने में समर्थ होते हुए भी कोमल कमल के कोश में बँधकर वहीं सुशोभित होते रहते हो पर उसको भेद नहीं पाते। परन्तु मेरे भ्राता लक्ष्मण ने तो उर्मिला के प्रेम कमल को तिनके के समान छोड़ते हुए तुम्हारे यश को समाप्त कर दिया। क्योंकि सेवा बहुत कठोर कर्म वाली होती है।

निद्रां नारीमशनरसनामाद्विसप्ताब्दमुज्झन्
भुञ्जन् भूयो भरतनिरतप्रेमसन्मार्ग गन्त्रीन्।
संग्रामाब्धिप्रतरणविधौ मत्कृते बाहुसेतु-
र्हेतुर्जाग्रज्जय सुयशसोऽनामयो लक्ष्मणस्ते।।१२३।।

गुञ्जन–हे उर्मिले! चौदह वर्षों के लिए नींद, नारी एवं भोजन का स्वाद छोड़कर भरत जी में निरत विशुद्ध शरणागतों को प्रेम से पालते और पोषते हुए राम–रावण संग्राम महासागर में मेरे लिए अपनी भुजा को ही सेतु बनाने वाले विजय एवं सुयश के जागरूककारण आपके लक्ष्मण कुशल से तो हैं?

भङ्क्त्वा भल्लैर्भरतभयभिद् भूमिभृच्छत्रुजत्रून्
सौभाग्येन्दुं बल जलनिधौ मज्जयित्वाहिजायः।
भग्नीकृत्य प्रखरविशिखैरल्प कायोऽतिकायम्
भूयाद् भव्यो दृषि तृषि लषत् पक्ष्मणो लक्ष्मणस्ते।।१२४।।

गुञ्जन-अपने भल्लाकार बाणों से भरत के भय को नष्ट करने वाले पृथ्वी को धारण करने वाले मुझ राम के शत्रुओं की जत्रु अर्थात् स्कन्ध की हड्डियों को तोड़कर शेषकन्या सुलोचना के सौभाग्य चन्द्रमा को अपने बल महासागर में डुबाकर अल्पकाय होकर भी अतिकाय नामक राक्षस को तीक्ष्ण बाणों से समाप्त करके दर्शन की पिपासा में पलकें बिछाई हुई आप श्री उर्मिला के प्राणवल्लभ लक्ष्मण शीघ्रातिशीघ्र आपकी आँखों के सामने स्वस्थ और निरोग दिखें।

व्यायस्तोऽपित्वमवनिसुता तोषकर्मण्यलीन्द्र-
प्रेक्षोत्कण्ठां कनकभवने मा कृथा भो कृषिष्ठाम्।
यत्सीतायाः प्रथमवदनप्रेक्षणे प्रीतिदानं
प्रादात् तस्यै विहितदिनकृन्मध्यमं मध्यमाम्बा।।१२५।।

गुञ्जन-हे भ्रमरों के राजा! पृथ्वी पुत्री सीता जी के सन्तोष कर्म में व्यस्त होते हुए भी तुम कनकभवन के दर्शन की उत्कण्ठा को शिथिल मत बनाना। जिसने अपने प्रकाश से सूर्य नारायण को भी अपने से मध्यम बना दिया और जिसे मेरी मझली माँ कैकेयी ने सीता जी के प्रथम मुखदर्शन में उन्हें मुँह दिखाई के नेग रूप में दिया था।

यस्मिन् सीता शतरतिरुचिव्रीडिताशेषशम्पा
पार्श्वस्था मे जलदवपुषः षोडशी षोडशाढ्या।
वामा रामा रमणरसिका रम्यमाणानुकूलम्
श्रीरामाख्या सुखमिव मयान्वर्थितामित्रवर्षम्।।१२६।।

गुञ्जन-जिसमें मेरे द्वारा सहस्रों रतियों के समान शोभा वाली अपनी प्रभा से सभी बिजलियों को लज्जित करने वाली बादल के समान शरीर वाले मुझ राम के पार्श्व में विराजमान, सोलहशृंगारों से युक्त, सोलह वर्ष की अवस्था में वर्तमान, अत्यन्त सुन्दर रमणीय रमण की रसिक ऐसी सीता जी को अनुकूलता से रमाते हुए बारह वर्ष पर्यन्त श्रीराम यह संज्ञा सार्थक की

गई थी। अर्थात् श्रियं रमयतीति श्रीरामः जो श्री जी को रमाता है, वही श्रीराम है। इस दृष्टि से मैंने विवाह से बारह वर्ष पर्यन्त सीता जी को रमा कर श्रीराम संज्ञा सार्थक की।

यत्र श्यामा स्मितशरदिजश्याममञ्ज्वब्जनेत्रा
नेत्रा नीता तरुण तरसा प्रोज्वला सोज्ज्वलस्य।
कान्ता कान्तालककलकलासार्धमध्यर्धरंगम्
वामा वामा क्षणमिव मया रम्यरात्री रंस्त।।१२७।।

गुञ्जन–जिसमें वामा होने पर भी अवामा अर्थात् अनुकूल स्वभाव वाली श्यामा मुग्धा नायिका विकसित शरद काल में उत्पन्न नीले कमल के समान नेत्र वाली ऐसी परम उज्ज्वल कान्ति से सम्पन्न सीता जी उज्ज्वल अर्थात् शृंगार रस के नवीन उत्साह से मुझ नवीन नायक द्वारा मंच के मध्य भाग में लाई गई और हम दोनों बहुत रात्रियों पर्यन्त वहीं रमण करते रहे।

यस्मिन् स्वः सत्कुसुमलतया क्वापि केलौ कपोले
स्पृष्टा पीशज्जकतनया साश्रुकण्ठा क्षतेव।
कौसल्यायै गदित चरिता रास लीलानभिज्ञा
तर्जं तर्जं मनसि मुमुदे मां समात्रातिमात्रम्।।१२८।।

गुञ्जन–जिस कनकभवन में किसी समय रासलीला में अनभिज्ञ सीता जी मेरे द्वारा खेल–खेल में देवपुष्प लवङ्ग की लता से कपोल पर स्पर्श की गई। इतने से ही सीताजी ने अपने को क्षत–विक्षत मान लिया और अश्रुपूर्ण नेत्र होकर कौसल्या माँ से सब कुछ कह दिया। फिर तो कैकेयी माँ के द्वारा मुझे बार–बार डाँट खिलाकर प्रसन्न हुईं।

यस्मिन् सीतामणिमयमिलन् मञ्जुसुत्रामरत्ले-
ष्वात्मच्छायाः स्फटिक विलसत्कुट्टिमेष्वीक्षमाणा।
मा माक्षैप्सीद् विपुलललनासंश्रयं सन्दिहाना
न स्वर्गेऽपि त्यजति कलुषं मानिनी स्वं सवपत्न्याम्।।१२९।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! जिस कनकभवन में अनेक मणियों से मिलित, इन्द्रनीलमणि से जटित स्फटिक से सुशोभित दीवारों में अपनी बहुत सी छायाएँ देखकर सीताजी मुझमें अनेक नारियों के पति का संदेह करती हुई मुझ पर आक्षेप करने लगी थीं। क्योंकि मानिनी नारी स्वर्ग में भी अपनी सौतन के प्रति कलुषभाव को नहीं छोड़ती।

प्रत्यायातः प्रथमदिवसे यत्र सात्मा त्रिहुत्या
अक्षैर्लोकं सुखमनुसरन्दिव्यदेवोऽपि दीव्यन्।
सन्दीव्यन्त्या विहसति तते मातृभिः प्रेक्षमाणे
प्रेक्षागारे मुहुः रवि जितोप्यावनेय्या जितोऽहम्।।१३०।।

गुञ्जन–हे भृंगवर्य! जिस कनकभवन में सीता जी के सहित विवाह करके लौटा हुआ मैं पहले ही दिन लोकलीला का अनुसरण करता हुआ, अर्थात् दिव्य देव होकर भी जानकी जी के साथ जुआ खेलता हुआ माताओं के साथ प्रेक्षागार में बैठकर देख-देख कर हँसते हुए पिताश्री के समक्ष अविजित होकर भी पृथ्वीपुत्री सीता जी के द्वारा जीत लिया गया।

यत्र क्रीड़ा रसिक रभसा सौम्य सौमित्रिणाद्धा
चित्रे कृत्वा प्रविकट मुखं मर्कटं दर्श्यमाना।
सीता भीता हरिमिव मृगी वातधूतेव वल्ली
दृष्ट्वा मात्रा रुदितनयना तर्जयत् देवरं स्वम्।।१३१।।

गुञ्जन–हे सौम्य! जिस कनकभवन में क्रीड़ा में रसिक उत्साह वाले लक्ष्मण द्वारा कौतूहलवशात् भयंकर मुखवाले वानर को चित्र में बनाकर दिखाए जाने पर सीता जी उसी प्रकार डरीं, जैसे सिंह को देखकर मृगी डर जाती है, और वायु से झकझोरी हुई लता की भाँति कम्पित होकर अश्रुपात करने लगीं। फिर तो माँ कौसल्या द्वारा अपने देवर लक्ष्मण को डाँट लगवाई।

यस्मिन् नष्टाभिरथशुचिभिश्चारुशीला मुखाभिः
सार्धं स्त्रीभिर्जनकसुतयेवात्म शक्तया नवम्या।

आसुर्याब्दं कनकभवने रम्यमाणोऽनुकूलम्
व्याचक्षेऽहं जगति नवमीजन्महेतुं जनेभ्यः।।१३२।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस कनकभवन में चारुशीला आदि आठ नित्य सखियों के साथ नवम शक्तिरूपिणी सीता जी द्वारा अनुकूलता पूर्वक बारह वर्ष पर्यन्त विहार करते हुए मैंने लोगों को अपने नवमी तिथि में जन्म लेने के कारण को स्पष्ट कर दिया था। चूँकि नव शक्तियाँ मेरे पास नित्य रहती हैं इसीलिए मैंने नवमी को जन्म लिया।

विशेष–भगवान् के पास निरन्तर नव शक्तियाँ रहती हैं, वे हैं विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, सत्या, ईशाना निग्रहा तथा अनुग्रहा।

तस्माद् गत्वा कनकसदनात् सत्वरं गत्वरेश
द्रक्षस्यारादजनजनिकां भव्यवायव्यकोणे।
लोकेशानां मुकुटमणिभिः स्तूयमानेड्यरेणुम्
स्वर्धेनुं मच्चरणमनसां रामजन्मस्थलीं मे।।१३३।।

गुञ्जन–हे गत्वरेश! अर्थात् चलने वालों में श्रेष्ठ भ्रमर! उस कनकभवन से निकट सुन्दर वायव्य कोण में जाकर तुम शीघ्र ही राम जन्म भूमि नाम से प्रसिद्ध मुझ परमात्मा की जन्मभूमि के दर्शन करोगे। जिसकी स्तुत्यधूलि लोकपालों के मुकुटमणियों द्वारा सदैव नमन का विषय बनायी जा रही है तथा जो मेरे चरणों में मन लगाने वालों के लिए कामधेनु के समान है।

यां दीव्यन्त्यो दिविजललनाः शैलकन्याप्रधाना
भक्तिंभावप्रवणहृदयाः श्रद्धधाना ददानाः।
नित्यं प्रार्च्यन्त्यधि विधि परिक्रम्यमूर्ध्ना दधानाः
सौभाग्याप्त्यै यदमलरजो हीड्यपूजा भवाय।।१३४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! पार्वतीप्रमुख देववधुएँ श्रद्धापूर्वक भाव से युक्त हृदय वाली होकर भक्ति का समर्पण करती हुई जिस रामजन्मस्थली को स्तुति का विषय बनाती हुई विधिपूर्वक परिक्रमा करके सौभाग्य की प्राप्ति

के लिए जिसकी निर्मल धूलि अपने शिर पर धारण करती हुई जिस रामजन्मभूमि की निरन्तर पूजा करती रहती हैं। क्योंकि पूज्यजनों की पूजा कल्याण के लिए ही होती है।

यस्याः सौधे सुरपतिपुरा नित्यमास्पर्धमाने
स्वः सम्भूत्या विबुधविभवैर्भ्राजमाने विमाने।
श्रीकौसल्या विनतिविवशो व्यापको विश्वरूपो-
ऽप्याविर्भूतोऽहमिह कुरुते किन्न मे भक्तियोगः।।१३५।।

गुञ्जन–अमरावती से भी निरन्तर स्पर्धा करने वाले स्वर्गीय सम्पत्ति तथा देवताओं के विभव से सुशोभित विशिष्ट पूजा से युक्त जिस रामजन्मभूमि के राजमहल में व्यापक और विश्वरूप होता हुआ भी मैं श्रीकौसल्या जी की विनय पूर्ण भक्ति के वश में होकर प्रकट हो गया। मेरा भक्ति योग क्या–क्या नहीं कर देता। अर्थात् जगत् पिता को भी बालक बना सकता है।

यां मेषस्थो रविरवनिजो माकरो वै तुलास्थो
भानोःपुत्रः सुरवरगुरुः कर्कगामी च जीवः।
मैनः शुक्रः सह बुधगणाः स्वोच्चपञ्चग्रहास्ते
मज्जन्मर्क्ष्येऽश्रितदशरथाः प्रह्वभावात् प्रणेमुः।।१३६।।

गुञ्जन–मेष के सूर्य, मकर के मंगल, तुला के शनि, कर्क के बृहस्पति और मीन के शुक्र ये पाँचों ग्रहों ने स्वोच्च होकर देवताओं के साथ महाराज दशरथ का श्रयण करते हुए मेरे जन्मनक्षत्र काल में मेरी जिस जन्मभूमि को भक्तिपूर्वक प्रणाम किया था।

यां जानाना अमरनिकरा विग्रहं मे तुरीयम्
भक्त्युद्रेकाद् विनतवनितावृन्द सीमन्तपुष्पैः।
संस्कुर्वाणाः सुरभितरसैरार्द्रयन्तोऽर्चयन्ते
प्राहुः पुंसां दुरितदलनं जन्मभूम्यर्चनं मे।।१३७।।

गुञ्जन-देवतागण मेरी जिस जन्मभूमि को मेरा ही चतुर्थ विग्रहधाम जानते हुए विनम्र देवपत्नियों के जूड़े में लगे हुए पुष्पों से संवारते एवं सुगन्धित रसों से स्नान कराते हुए निरन्तर पूजा करते हैं। क्योंकि मेरी जन्मभूमि के पूजन को विद्वान् लोग प्राणियों के समस्त पापों का नाशक कहते हैं।

यस्या धूल्या विलसितजटो धूर्जटिर्धुर्यशौचा-
मंगल्यानां शुचिरघतमो रश्मिमाली कपाली।
आशावासा धनपतिसखोऽप्यास्त दीनोऽपि दानी
किं किं न स्याद् जगति कृतिनां जन्मभूम्यर्चनान्मे।।१३८।।

गुञ्जन-मेरी जिस जन्मभूमि की धूलि से अपनी जटा को सुशोभित करके अपवित्रता और अमंगलों के धुरी होकर भी भगवान् शंकर पवित्रता की अवधि और पापरूप अन्धकार के नाश के लिए सूर्य बन गए। कपाली और दिगम्बर होकर भी शिव कुबेर के मित्र बने। दीन होकर भी शंकर भगवान् एकमात्र दानी बने। मेरी जन्मभूमि के पूजन से संसार में बड़भागियों के लिए क्या-क्या नहीं हो जाता?

ये वै श्रौताः स्मृतिनिगदिता ये च पौराणिका वां
तीर्थास्तर्तुं भवजलनिधिं पोतभूताः प्रभूताः।
सर्वेऽपीताः ससरसरितः कोसलान्पुण्यकोषा
मत्प्राकट्ये प्रणतशिरसो यां नमस्यां बभूवुः।।१३९।।

गुञ्जन-जो भी श्रौत स्मार्त तथा पौराणिक अनेक तीर्थ संसार सागर से पार होने के लिए जहाज के समान कहे गए हैं वे सभी तालाबों एवं नदियों के साथ पुण्यों के कोषरूप निन्यानवे करोड़ तीर्थ मेरे जन्म के समय श्री अवध आकर मेरी जिस जन्म भूमि को प्रणाम किए थे।

पूज्यन्तां भो निगमगदिता मूर्तयोऽष्टौ प्रयत्नैः
कामं कामोपहतहृदयैर्नामरूपाक्षराणि।

किन्त्वर्च्यानां चरति चरमं विग्रहाणां चतुर्णाम्
नित्यं पूज्यं जगदघहरं जन्मभूमिस्थलं मे।।१४०।।

गुञ्जन–अरे मित्र! भले ही वेद प्रतिपाद्य मेरी आठों मूर्तियों की प्रयत्न से पूजा की जाय, भिन्न–भिन्न कामनाओं से व्याकुल मनवाले लोग भले ही नाम रूप अथवा अक्षरों की पूजा करें किन्तु मेरे नाम रूप लीला धामात्मक चारों पूज्य विग्रहों में राम जन्मभूमि अन्तिम और चतुर्थ विग्रह के रूप में विराज रही है। यह नित्य ही पूज्य है। यही रामजन्मभूमि स्थल संसार के पापों को नष्ट करने वाला है।

विशेष–(१) वेद मूलक पुराणों में भगवान् की शैली धातुमयी, लौही लेख्या, लेप्या, सैकती, मानसी तथा मणिमयी इन आठ प्रातिमाओं का वर्णन है।

(२) इसी प्रकार वसिष्ठसंहिता में भगवान् के नाम रूप लीला धाम ये चार सच्चिदानन्दमय नित्य विग्रह कहे गए हैं।

रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्पम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्।।

तस्या यायाः किमपि मधुपा जन्मभूमेश्च पूर्वम्
पश्यापूर्वं निमिकुलभुवां क्वापि नो दृष्टपूर्वम्।
पुञ्जीभूतं मह इव सतां विश्ववार्द्धेस्तमौर्वम्
यं संजज्ञेऽश्वपतितनया पर्वतं रत्नपूर्वम्।।१४१।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जन्मभूमि से कुछ पूर्व जाना और वहाँ कहीं भी पहले न देखा हुआ, इकट्ठे हुए निमिवंश के पुण्य के समान संतों के लिए भवसागर को समाप्त करने हेतु वडवानल के समान एक पर्वत देखना। जिसको माँ कैकेयी ने मणिपर्वत नाम से पुकारा था।

सम्बन्धिन्याः पितरि पतितं संकटं संजिहीर्षुः
श्वश्रू चूडामणिशतरुचीन्कोटि कोटीन् विधित्सुः।

सीतान्यर्मान् मणिमय गिरिं स्वीयसत्वात् क्षणार्धात्
सोढुं नैव प्रभवति पितुर्मानभङ्गं सुपुत्री।।१४२।।

गुञ्जन–अपनी समधिन के पास से पिता श्री महाराज जनक के ऊपर आए हुए संकट का समाधान करने के लिए सासूमाँ कैकेयी के पास वर्तमान इन्द्रप्रदत्त चूडामणि जैसे सैंकड़ों चूडामणियों की कान्ति वाले, करोड़ों मणियों का निर्माण करने की इच्छा करती हुई सीता जी ने ही आधेक्षण में मणियों का पर्वत ही बना दिया था। क्योंकि श्रेष्ठ पुत्री अपने पिता का अपमान नहीं सह सकती।

यस्मिन् भौम्या निशि विरचिते भानुकोटिप्रकाशे
दोषा दोषं सुदिनमितिसा चक्रवाकी विभाव्य।
साकं भर्त्रा विगतविरहा हृष्टरोमैव रेमे
गुञ्जत्भृङ्गा विकसितदला रम्यराजीव राजिः।।१४३।।

गुञ्जन–सीता जी द्वारा रात्रि में ही करोड़ों सूर्यों के प्रकाश वाले जिस मणि पर्वत के निर्मित किए जाने पर चतुर चक्रवाकी रात्रि को ही सुन्दर दिन समझकर अपने पति चकवे के साथ विरह मुक्त होकर विहार करने लगी और सुन्दर कमलों की पंक्ति भ्रमरों की गुञ्जार से भर गयी। उसके दल विकसित हो उठे।

यस्मिन् मासे नभसि धवले वासरे वै तृतीये
प्रत्येकस्मिन् नभसि वनभृद् वारिदे विद्युदाभे।
सायंभूते कलखगकुले चातकैः कीयमाने
आयोज्यन्ते ललितललनालोलदोलोत्सवा नौ।।१४४।।

गुञ्जन–जिस मणि पर्वत पर प्रत्येक श्रावण शुक्ल पक्ष की तृतीया को जल बरसने वाले बादलों की उपस्थिति में बिजलियों के चमकते रहने पर पक्षियों के कल-कल एवं चातकों की पी कहाँ पी कहाँ, ध्वनि से निनादित दिन में ही सायं काल का वातावरण उपस्थित हो जाने पर ललित सीता

सखियों की आनन्द चञ्चलता से युक्त हम दोनों के झूलने के आयोजन किए जाते हैं।

तत्रस्थित्वा कतिचन दिनान्यार्य दोलोत्सवेषु
स्मारं स्मारं भवमुखरितः सार्धमीषत्सखीभिः।
भ्रामं भ्रामं भ्रमर परितः पर्वतं तं मणीनाम्
विश्रान्तः सन्व्रज कुलबधूभिस्तुतः कोसलानाम्।।१४५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! कुछ दिन मणिपर्वत पर झूलन के उत्सव में रहकर उस आनन्द का स्मरण कर सखियों के साथ तुम भी मुखरित हो लेना। मणिपर्वत की बार-बार परिक्रमा करके थोड़ा विश्राम करके अयोध्या की नारियों से सम्मानित होकर फिर आगे बढ़ जाना।

विशेष–पूर्व पञ्च श्लोकों में वर्णित मणिपर्वत का इतिहास भी एक रोचकता आर्यमर्यादा तथा भारतीय सुयोग्य पुत्री के स्वाभिमान का सूचक है। सीताजी पर अधिक वात्सल्य होने के कारण उन्हें देखने के लिए महाराज जनक का प्रायशः अवध में आना होता रहता था। कन्यापक्षीय मर्यादा के कारण जनक जी को कोसल नरेश के यहाँ संकोच होता था। अतएव अपना पृथक् आवास भवन बनाने के लिए श्री जनक ने चक्रवर्ती दशरथ जी से कुछ भूमि क्रय करने की इच्छा की। कैकेयी जी ने इन्द्र द्वारा दशरथ जी को दी हुई चूड़ामणि के समान एक और मणि की महाराज जनक से अपेक्षा की और उसी के बदले में भूमि देने की बात कही, जिससे समान मणियों को श्रीसीताराम जी धारण कर सकें। अभी तक चूड़ामणि नव दम्पति में से कोई धारण नहीं करता। जनकजी का यह धर्मसंकट देखकर सीता जी ने रातों रात मणियों का पर्वत बना दिया। जिसे कैकेयी जी ने अपने राजमहल के पीछे रखने की आज्ञा दी। तब जोड़ा बन जाने पर श्रीसीताराम जी ने चूड़ामणि धारण की। इसीलिए मानसकार ने भी संकेत में दोनों के चूड़ामणि धारण की बात कही। यथा श्रीराम के लिए "भूपालचूडामणिम्" सीता जी के लिए 'चूडामणि उतार तब दयउ।"

किञ्चिद् दूरं दुरितदमनं कोणमाग्नेयमेत्य
द्रष्टासि त्वं त्वमिव सुकृतं पार्थिवं पाद्मसर्गात्।
ग्रामीभूतं भुवनविदितं भक्तिभूमिं विभूम्नो
नन्दिग्रामं भरतनिरतग्रामणीगीतरामम्।।१४६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस मणिपर्वत से थोड़ी दूर पर आग्नेय कोण में जाकर तुम उस नन्दिग्राम के दर्शन करोगे ज़ो पापों को नष्ट करने वाला, विश्व में विदित मुझ परमात्मा के भक्त की जन्मभूमि तथा भरत के आदर्श में विरत वयोवृद्ध ग्रामीणों द्वारा गाए हुए मुझ राम के गीतों से पूर्ण तथा जो ब्रह्मा जी की सृष्टि से विलक्षण और जो मानो पृथ्वी का सिमटा हुआ सुकृत ही ग्राम रूप में दृष्टि गोचर हो रहा है।

नन्दिग्रामोऽप्यहह रहितो ग्राम्यगीतैररामो
रामा रामोऽप्यथ विरहितो रामरामो विरामः।
श्यामाश्यामोऽप्यसित सहितः कामकामोऽप्यकामो
धामाधामो भरतमहितो रामरामाभिरामः।।१४७।।

गुञ्जन–अहो! कितना विलक्षण है नन्दिग्राम! जो अरामः अर्थात् मुझ राम के विद्यमान न होने के कारण इस समय उत्सवों में प्रयुक्त होने वाले ग्राम्यगीतों से भी रहित हो गया है। यद्यपि इसमें मुझ राम के आराम अर्थात् बगीचे बहुत हैं, यह पूर्व में राम–रामः अर्थात् मुझ राम को आनन्द देता था। परन्तु वर्तमान में विराम अर्थात् मुझ राम के विपिनवासी होने के कारण विरहितः अर्थात् वि माने पक्षियों से भी रहित हो गया है। यहाँ कोई पक्षी भी नहीं आता। यह शस्य श्यामल पृथ्वी के कारण ही श्याम नहीं रहा (श्यामा अश्यामः) क्योंकि यहाँ की सारी फसलें सूख गई हैं फिर भी असित सहित अर्थात् महिलाओं के काजल से मिश्रित आँसुओं से परिपूर्ण हो गया है। अकाम यद्यपि यहाँ किसी के मन में काम वासना नहीं है फिर भी यह कामकाम है। क्योंकि क अर्थात् ब्रह्मा अ अर्थात् विष्णु म अर्थात् महेश्वर ये

तीनों ही नन्दिग्राम में निवास की कामना करते हैं। यह भरत से पूजित है। इसमें धाम अर्थात् सूर्य चन्द्र और अग्नि का भी तेज निष्क्रिय रहता है। (धाम अधामः) क्योंकि नन्दिग्राम मुझ राम को तथा सीता को भी अभिरामः आनन्द देता है।

पश्य भ्रातर्भ्रमर भरतेनानुजेनाभिषिक्ते
मत्पादाङ्के कनककलिते तत्र सिंहासनस्थे।
न्यासे न्यस्ते किल विवसतः पादुके मे प्रजानाम्
प्राणाँस्त्रातुं विरहयमतो यामिकीकृत्य नूनम्।।१४८।।

गुञ्जन-हे भैया भौरे! उस नन्दिग्राम में सिंहासन पर विराजमान, मेरे छोटे भाई भरत जी द्वारा अभिषिक्त स्वर्ण निर्मित, मेरे चरणों के चिन्हों से सुशोभित दण्डकारण्य के प्रवास से पूर्व निश्चय करके विरहरूप यमराज से प्राणों की रक्षाकरने के लिए दो प्रहरी बनाकर धरोहर के रूप में भरत को सौंपी हुई मेरी दोनों पादुकाओं को निहार लेना।

प्रेमप्राज्यं विरहविलसद् दीपकं पर्णशाला
सुप्रासादं भरत सचिवं पादुकायुग्मभूपम्।
सेवाधर्माश्रितपुरजनं दैन्यसैन्यं मदीशं
नन्दिग्रामे प्रभवति किमप्यद्भुतं राज्यचक्रम्।।१४९।।

गुञ्जन-हे मित्र! देखो तो, इस नन्दिग्राम में कैसा अद्भुत राज्यचक्र समर्थ हो रहा है। जहाँ प्रेम ही धन है। मेरा विरह ही सुन्दर दीपक है। जहाँ सुन्दर पर्णशाला ही सुन्दर राजमहल है। जहाँ भैया भरत ही मन्त्री हैं और जहाँ दो पादुकाएँ ही राजा हैं। जहाँ के पुरजन सेवारूप धर्म के आश्रित हैं। जहाँ दैन्य ही सेना है तथा जिसका मैं राम ही एक मात्र ईश्वर हूँ।

यत्रासन्द्यां ननु रघुपतेः पादुका रुक्मयुग्मम्
यत्रामात्यो भवति भरतः प्रेममूर्तिर्विरागी।

भक्तिर्भोज्यं मदनुसरणं यस्य जीवातु भूतं
नन्दिग्रामे त्वमनुभविता नूतनं राजतन्त्रम्।।१५०।।

गुञ्जन-मित्र! जहाँ मुख्य राज्यासन पर मुझ रघुपति की दो स्वर्णपादुकाएँ हैं, जहाँ प्रेम की मूर्ति विरागी भरत ही अमात्य (मन्त्री) हैं। जहाँ भक्ति ही भोजन और मेरी शरणागति ही औषधि है। उस नन्दिग्राम में तुम नए राजतन्त्र का अनुभव करने वाले हो।

विभ्रच्चीरं कृशतमतनुं मूर्ध्नि पिङ्गाजटा वै
नेत्रे नीरं मम विरहजं ग्लानि तापं च चित्ते।
बुद्धौ भक्तिं ननु मनसि मां कर्म कायेप्यकामं
द्व्यर्णं वाण्यां तपति भरतो विग्रहीवार्य धर्मः।।१५१।।

गुञ्जन-हे मित्र! कटि में बल्कल वस्त्र, अत्यन्त दुर्बल शरीर, शिर पर पीली पीली जटाएँ, नेत्रों में मेरे विरह से उत्पन्न आँसू, चित्त में ग्लानि और पश्चात्ताप, बुद्धि में मेरी भक्ति, मन में स्वयं मुझको, शरीर में निष्काम कर्म को वाणी में दो अक्षरों वाले राम नाम को धारण करता हुआ मानों शरीरधारी वैदिक धर्म ही भरत के रूप में तपस्या कर रहा है।

जापं जापं स्वमनसि रुदन् राम रामेति जापं
ग्लायं ग्लायं व्यथित हृदयो भावयन् मातृवृत्तम्।
स्मारं स्मारं भुवि परिलुठन् मां सभार्यं वनस्थं
द्रष्टव्यस्ते मधुप भरतः पादुका राजमन्त्री।।१५२।।

गुञ्जन-हे मधुप! मन में राम राम जाप को जप-जपकर रोते हुए व्यथित हृदय से माता के इतिहास का चिन्तन करते हुए बारंबार ग्लानिपूर्ण होकर सीता के सहित मुझ वनवासी को स्मरण कर-करके पृथ्वी पर लोटते हुए पादुकारूप राजा के मन्त्री भरत के तुम दर्शन अवश्य करना।

क्रन्दिग्रामः किमु न करुणैः क्रन्दितै रामबन्धो
वन्दिग्रामः किमु न चरितैर्माण्डवीजानिगीतैः।

स्यन्दिग्रामो भरतनयनस्यन्दिभिः किं न नीरै-
र्नन्दिग्रामं प्रति विदधते चित्रमुत्प्रेक्षितानि।।१५३।।

गुञ्जन–श्रीराम के छोटे भाई भरत के करुण क्रन्दनों के कारण इसे क्यों न क्रन्दिग्राम कहा जाय! माण्डवी पति भरत जी द्वारा गाये हुए श्री रामचरितों के कारण इसे क्यों न वन्दिग्राम के नाम से जाना जाय। भरत जी के नयनों से निर्गलित आँसुओं से पूर्ण होने के कारण यह क्यों न स्यन्दिग्राम के नाम से पुकारा जाय। इस प्रकार ग्राम्यजन नन्दिग्राम के प्रति भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षाएँ कर रहे हैं।

नान्दिंग्रामं भरतविरहं कः क्षमो ना प्रमातुं
यन्नेत्राम्भोलवणितजलं ग्राम्यकौपं चकार।
यत्कं पीत्वा प्रकृतिरपि मे सत्यसन्धा शशंके
नैरामिष्यंव्रतमिव हतं मत्प्रवासे धृतं यत्।।१५४।।

गुञ्जन–नन्दिग्राम के भरत विरह को कौन प्राणी प्रमा का विषय बना सकता है। जिसमें रहने वालों के नेत्रों के जल ने गाँवों के सभी कुंओं के जल को खारा बना दिया है। जिस जल को पीकर सत्य प्रतिज्ञा वाली मेरी प्रजा भी मेरे प्रवास के समय अपने द्वारा धारण किए-हुए अलोने व्रत के प्रति सशंकित हो उठी। उसे लगा कि प्रभु के वनवास के समय जो अलोना व्रत धारण किया था वह टूट गया क्या?

यस्मिन् क्षीरं निशि शुगनल ज्वालपोष्णैः क्वथित्वा
पीत्वा श्वासैः स्वपिति जनता मां ससीतं स्मरन्ती।
हे रामेति प्रलपन परैस्ताम्रचूडैः प्रभाते
जागर्यन्ते जडितजनुषो यत्र लोकाः सशोकाः।।१५५।।

गुञ्जन–जिस नन्दिग्राम में रहने वाली जनता रात्रि में अपनी शोक की अग्निज्वाला से गरम हुए निःश्वासों द्वारा दूधको क्वाथ के समान उबाल कर पीकर सो जाते हैं। और जहाँ हा राम हा राम कहने वाले मुर्गों द्वारा प्रभातकाल

में जड़ चेतना वाले शोकाकुल लोग किसी प्रकार जगाए जाते हैं।

तं त्वं गत्वा भरतनयनप्रस्रवत्बाष्पधारा
धौताध्वानं मदनुशरणैः पक्षिभिः कीयमानम्।
नन्दिग्रामं प्रतिकणलसत्प्रेमपूराभिरामम्
मन्वानः स्वं सुखमनुभवेः पूर्णकामं प्रकामम्।।१५६।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! तुम भारत के नयनों से निर्झरित अश्रुधाराओं द्वारा धोए हुए मार्गों वाले मेरे शरणागत पक्षियों के कलरव से पूर्ण कण–कण में विराजमान मेरे प्रेम प्रवाह से रमणीय उस नन्दिग्राम में जाकर अपने को पूर्णकाम समझते हुए अत्यन्त सुख का अनुभव करना।

तत्रैकस्मिन्ननवनिविवरे छन्नमर्कं यथाभ्रे
विष्टं सृष्टं जलजजनुषा नैव धर्मं सदेहम्।
मत्प्रेमाणं धृततनुमिवास्मद्दिदृक्षैककामं
पश्यन्नेत्रे भरतभरतं संकृतार्थे कृषीष्ठाः।।१५७।।

गुञ्जन–उस नन्दिग्राम में एक खोदी हुई पृथ्वी की गुफा में बादल में छिपे हुए सूर्य की भाँति बैठे हुए कमल जन्मा ब्रह्मा के द्वारा न बनाए हुए मूर्तिमान् सनातन धर्म के समान शरीर धारी मेरे प्रेम के समान हमारे दर्शनों की इच्छा रूप एकमात्र कामना से युक्त ऐसे भजन, भक्ति, भक्त और भगवान में निरत भावते भरत को निहारते हुए तुम अपने नेत्रों को कृतार्थ कर लेना।

विशेष–जलजजनुषा न सृष्टं सदेहं धर्मम् इव इत्यन्वयः।

श्यामं श्यामा नयनविशिखैरक्षतं क्षीणदोषम्
दोषानाथोऽपमितवदनं वारिदृग् वारिजाभ्याम्।
वर्षन्तं तं सकरुणरसं सन्तमव्दायिताभ्याम्
मद्भक्तासि त्वं विरहवनधौ प्रेममूर्तिं विभाव्य।।१५८।।

गुञ्जन–अप्रसूता युवतियों के नेत्र बाणों से जो कभी नहीं बिंधा, जिसमें किसी प्रकार के दोष नहीं आए ऐसे चन्द्रमा के समान मुख वाले सावन–भादों के बादल बने हुए अपने कमल नेत्रों से करुण रस के साथ अश्रु की वर्षा करते हुए संत शिरोमणि मेरे सांवले मूर्ति भरत को चिन्तनपूर्वक निहारकर तुम भी विरह सागर में डूब जाओगे।

मा मा द्राक्षीत् प्रकृतिरनघा प्रातरुत्थाय काचि-
च्चैतच्चेतस्यऽहह कलयन् यामपूर्वं निशायाः।
स्नात्वा विग्नो विशति विवरे साधु सद्यः सरय्वाम्
प्रायश्चित्तं चरति भरतो हन्त कीदृङ् नवीनम्।।१५९।।

गुञ्जन–अहह! मुझे कोई प्रजा प्रातःकाल उठकर न देख ले। जिससे उसका पुण्य क्षीण हो जाय। ऐसा चित्त में विचार करते हुए हमारे भैया भरत रात्रि के एक प्रहर (३ घंटे) पूर्व ही विकल मन से सरयू जी में सम्यक् स्नान करके पृथ्वी में खोदे हुए गड्ढे में छिप जाते हैं। अरे! यह भरत किस प्रकार का नया प्रायश्चित कर रहा है।

स्वामी शेते मुनिपटधरः स्थण्डिले सानुज श्री-
स्त्यक्त्वा भोगान् विजनविपिने कन्दमूलाशनो मे।
इत्यालोच्य प्रदर शयनश्चीर वासाः फलाशी
भ्राता पश्यत्यवधिमनिशं खाड्गधार व्रतीशः।।१६०।।

गुञ्जन–मेरे स्वामी श्रीराम लक्ष्मण एवं सीता जी के साथ निर्जन वन में मुनिपट धारण कर कन्द मूल फल खाकर कुश की चटाई पर सोते हैं ऐसा विचार करके पृथ्वी में खोदी हुई गुफा में शयन करके वल्कलवस्त्रधारी, फलाहारी खड्गधारा व्रत करने वालों में श्रेष्ठ मेरे भ्राता भरत रात दिन मेरे आने की अवधि गिन रहे हैं।

तत्पार्श्वस्थं सजलनयनं मूकसेवैकसारम्
भृङ्गदृष्टास्यनघमनुजं लाक्ष्मणं मत्कनिष्ठम्।

भक्त्या भानुं भरतमिवतं वासरं चानुयान्तम्
शत्रुघ्नं भोः कलित भगवत् पारतन्त्रेष्टधर्मम्।।१६१।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! मेरे पार्श्व में स्थित अश्रुपूर्ण नयन मूकसेवा को ही एकमात्र सार सर्वस्व समझने वाले, लक्ष्मण के छोटे भाई और मेरे सबसे छोटे भाई शत्रुघ्न के तुम उसी प्रकार दर्शन करोगे। मानो भगवत्पारतन्त्र्य धर्म ने ही शरीर धारण कर लिया हो और उन्हें भरत का अनुगमन करते हुए उसी प्रकार देखोगे जैसे सूर्यनारायण का भक्तिपूर्वक दिन अनुगमन कर रहा हो।

यो मा गध्या दशरथ चरोरष्ट मांसात्प्रसूतोऽ-
संप्रज्ञातः सुकृतसुखतेर्विद्ययेवाद्य योगात्।
शूरः शूरप्रथितसुयशा गौरवर्णः सुशीलो
वाक्य स्फोटाच्छ्रुतिमुखधिया शाब्दिकस्येव बोधः।।१६२।।

गुञ्जन–मेरे पिता दशरथ जी के चरु के आठवें भाग से मगधराजकन्या सुमित्रा जी ने जिन सर्वांग सुन्दर शूर, शूरों द्वारा प्रशंसित यश वाले गौरवर्ण सुशील शत्रुघ्न को उसी प्रकार जन्म दिया जैसे वेदविद्या अष्टांग योग से असंप्रज्ञातसमाधि को जन्म देती है तथा जिस प्रकार वेदोन्मुखी बुद्धि वाक्य स्फोट से वैयाकरण के शाब्द बोध को जन्म देती है।

यद्वाग्देव्यश्वपतितनयां कुर्वती दुष्टबुद्धिम्
प्रादान् मह्यं स जनक सुता बन्धवेऽरण्यवासम्।
शंके जानन्मयि विमुखतां शारदाया रिपुघ्नो
नैवादीत्सत्यहह वदनं भारतीं दण्डयिष्यन्।।१६३।।

गुञ्जन–जिस सरस्वती देवी ने अश्वपति की पुत्री कैकेयी माँ को दूषित बुद्धि करके सीता–लक्ष्मण जी के साथ मुझे वनवास दे दिया था, मुझे शंका है कहीं शत्रुघ्न उसी से शारदा जी को मुझसे विमुख मानते हुए उन्हें अपने मुख पर आरूढ़ नहीं करना चाहते। क्योंकि वे सरस्वती को दण्डित कर रहे हैं।

सैरध्वज्या मम च भरतस्याङ्घ्रिरेणूँल्ललाटे
नित्यं भक्त्या किल तिलकयन्नूर्ध्वपुण्ड्रं दधानः।
मज्जन्तीं मद्विरहजलधौ पालयन् सानुबन्धाम्
कैवर्तोऽभूत् सभरतपुरीं सौम्य शत्रुघ्नलालः।।१६४।।

गुञ्जन-हे सौम्य! जो शत्रुघ्नलाल सीता जी की, मेरी तथा भरत की चरण धूलि को भक्तिपूर्वक अपने मस्तक पर निरन्तर तिलकित करते हुए, ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करके मेरे विरह सागर में डूबती हुई मेरी प्रजा एवं भरत द्वारा पालित अयोध्या पुरी को उबारते हुए कुशल केवट की भूमिका निभा रहे हैं।

वामे वामाम्भरतचरणावार्द्रयन्तीं दृगश्रैः
शोचं शोचं विपिनवसतीं ज्यायसीं राघवाभ्याम्।
पश्येः प्रेष्ठा स्ववननिरतां माण्डवीं मण्डिताभां
राहुग्रस्तं विधुमिव धवं रोहिणीं चानुयाताम्।।१६५।।

गुञ्जन-भरत के वाम भाग में बैठकर भी अनुकूल रहने वाली और भरत के चरणों को अपने नेत्र के आँसुओं से आर्द्र करती हुई श्रीरामलक्ष्मण के साथ अपनी बड़ी बहिन सीता के बनवास के प्रति बार-बार शोक करके अपने प्राणवल्लभ भरत के प्राणों की रक्षा करने वाली, ऐसी आभा को भी अलंकृत करने वाली माण्डवी के दर्शन अवश्य करना।

आशासाना मम च भरतोज्जीवनं शोकवह्ने-
राशावर्यामुषसि करुणं कीर्तनं कीर्तयन्ती।
सीता रामेत्यगदमसुपं माण्डवी पाययन्ती
पान्ती ग्रामं विरहविषतः सोमकादम्बिनीव।।१६६।।

गुञ्जन-मेरी शोकाग्नि से भरत के जी के जीवन की आशा करती हुई और प्रभात काल में आसावरी राग में राम तवास्मि इत्यादि करुण कीर्तन करती हुई सीता राम सीताराम इस प्रकार चार अक्षरों वाले अमृत तत्व को

प्राणबल्लभ भरत को पिलाती हुई माण्डवी नन्दिग्राम को विरह रूप विष से बचाती हुई अमृत की मेघ जैसी लग रही है।

अन्वायान्तीं भरतदयितां पृष्ठतः प्रेष्ठजीवां
द्रक्ष्यस्याराच्छ्रुतिगणलसत् कीर्तिमन्वर्थसंज्ञाम्।
ज्येष्ठा चिन्ताजडितहृदयां श्रावणीं मेघलेखाम्
सन्निन्दन्तीं निजतनुरुचा सौम्य शत्रुघ्नपत्नीम्।।१६७।।

गुञ्जन–हे सौम्य! बड़ी बहिन सीता जी की चिन्ता से जडित हृदय वाली, अपने शरीर की कान्ति से श्रावण की मेघ माला को भी लज्जित करने वाली, प्राण वल्लभ शत्रुघ्न को जीवन दान देने वाली भरत जी की प्राणप्रिया माण्डवी जी के पीछे-पीछे चलने वाली श्रुतिकीर्ति नामवाली, श्रुतिगणों में प्रसिद्ध कीर्तिवाली, शत्रुघ्न लाल की पत्नी को तुम अवश्य देखोगे।

छायाभूता द्विषदघ महाध्वान्तहृच्चण्ड रश्मेः
शत्रुघ्नस्याप्रतिहतरुचस्तैजसस्येव वश्या।
स्वप्नावस्था हरति भजतां स्वाप्नमेव प्रपञ्चम्
नित्यं स्वप्नान् किल भगवतो या यथार्थी करोति।।१६८।।

गुञ्जन–हे भृंग! शत्रु रूप महा अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्य के समान शत्रुघ्न लाल की जो छाया है तथा जो अबाधित कान्ति वाले तैजस् रूप शत्रुघ्न की वशवर्तिनी स्वप्नावस्था है, जो भजन करने वालों के स्वाप्नप्रपंच को नष्ट कर देती है और जो भगवत् संबंधी स्वप्नों को साकार कर देती है ऐसी शत्रुघ्नपत्नी श्रुतिकीर्ति के तुम अवश्य दर्शन करना।

मित्रैताभिस्तिसृभिरमला मैथिली मत्स्नुषाभिः
जाग्रत्स्वप्नप्रगुणशयना ख्याभिरीड्या दशाभिः।
युक्तेवासौ सनिजविभुभिः शोभते स्माध्ययोध्यम्
पूर्णानन्दा मदनुगमना सत्तुरीया तुरीया।।१६९।।

गुञ्जन–हे मित्र! विराट् तैजस् प्राज्ञरूप लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत के साथ, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, माण्डवी इन तीनों मेरी अनुजबधुओं के साथ सीता जी तुरीया अवस्था की ही भाँति मेरा अनुगमन करती हुई पूर्ण आनन्द से युक्त होकर श्री अवध में शोभित होती थीं। पर आज माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, उर्मिला अयोध्या में तड़फ रही होंगी और सीता जी शत्रु के हाथ में पड़ी हुई किस परिस्थिति में होंगी यह कहना अभी उचित नहीं।

हन्तस्मृत्वा मधुप मिथिलामण्डपं मंगलाढ्यम्
चेतश्चिन्ताचलितमिव मे जायतेऽद्यापि विग्नम्।
यत्रास्माभिः श्रुतिपरिमितैः रूढदारै रघूणाम्
राजा रेजे यतिरिवफलैः सत्क्रियैः पूर्णकामः।।१७०।।

गुञ्जन–अरे मधुप! आज भी मिथिलामण्डप का स्मरण करके मेरा उद्विग्न मन चिन्ता से चलायमान हो उठता है। जहाँ अपनी पत्नियों के सहित हम चारों भाइयों से युक्त महाराज दशरथ क्रियाओं के सहित चारों फलों से युक्त हुए पूर्ण काम यति की भाँति सुशोभित हो रहे थे।

नन्दिग्रामे निशि वस सखे क्षिप्रमुत्थाय भूयः
पश्येः प्रातर्भरतविहितं पादुकापूजनं मे।
बाष्पस्नानं विरहवसनं क्रन्दमन्त्रं स्मृतीष्ट-
ज्योतिर्दीपं पुलककुसुमं पञ्चपञ्चोपचारम्।।१७१।।

गुञ्जन–हे मित्र! नन्दिग्राम में एक रात निवास करना, फिर प्रातः उठकर भरत जी द्वारा किया हुआ मेरा पादुका पूजन देखना जहाँ आँसू ही जल स्नान, विरह ही वस्त्र, मेरी स्मृति ही ज्योतिमय दीपक, पुलकावली ही पुष्प, तथा भरत के पंचभूत ही गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य नामक पंचोपचार पूजन बन गए।

विशेष–गन्ध पृथ्वीतत्व, पुष्प आकाशतत्व, धूप वायुतत्व, दीप अग्नितत्व तथा नैवेद्य जलतत्व समझना चाहिए।

आनीतं मद् विभवलसितं सादरं चित्रकूटात्
प्रेमोद्रेकात् प्रकटितमदुद्भुत षाड्गुण्यमूर्तिम्।
भुञ्जन्तं स्वां प्रकृतिमनघं स्वर्णसिंहासनस्थं
नमस्यस्यद्धा कमपि नरपं पादुकायुग्मरूपम्।।१७२।।

गुञ्जन–हे मित्र! आदरपूर्वक चित्रकूट से आए हुए मेरे विभवों से सुशोभित भरत के प्रेम के उद्रेक के कारण मेरे प्रकट हुए उद्भूत छहों ऐश्वर्यों से युक्त स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान अपनी प्रजा का पालन करते हुए ऐसे किसी अपूर्व पादुकायुगल सम्राट् को तुम आश्चर्य से नमन करोगे।

पायं पायं सुमधुररसं सारसानामलीन्द्र-
श्रावं श्रावं मम गुणगणं गीतमायोध्यकेभ्यः।
भावं भावं सरससरयू कुञ्जकेलीः शुभा नौ
शीघ्रं लङ्कां ब्रजसुकृतिनो नो प्रमाद्यन्ति कृत्यात्।।१७३।।

गुञ्जन–हे भ्रमरों के राजा! अयोध्या के तडागों के कमलों का सुमधुर रस बार–बार पीकर अयोध्यावासियों के मुखों से गाए हुए मेरे गुणों को पुनः पुनः सुनकर हम दोनों अर्थात् सीताराम की मंगलकारिणी रसमयी सरयू तट की क्रीड़ाओं की बारंबार भावना करके शीघ्र लंका जाओ। क्योंकि सुकृतीजन अपने कर्तव्य से कभी प्रमाद नहीं करते।

किञ्चिन् मृत्स्नाकणमभिरणँश्चारु गृह्णन्नयोध्या
पुर्यास्तुर्यां त्वरितगमनो नो प्रमाद्यन्प्रयाहि।
नूनं देवीं मृदमृतमयी जन्मभूमेर्ममैषा
मृत्योस्त्रातुं प्रभवति चिरं राष्ट्रदेवा महान्तः।।१७४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! सीता जी के नूपुर जैसे गुञ्जार करते हुए अयोध्या पुरी की माटी के कुछ कण ग्रहणकरते हुए तुर्या अर्थात् ब्रह्मविद्या किंवा तुरीयावस्थारूपिणी सीता जी के पास त्वरित गति से बिना प्रमाद के जाओ।

निश्चित ही यह अमृतमयी माटी सीता जी को मृत्यु से बचाएगी। क्योंकि महाविभूतियाँ राष्ट्र को ही देव मानती हैं।

नन्दिग्रामा दववनरुहप्राप्तपाथेयपूजः
पूज्यैः कूजन् मधुरमधुरं पूजितो दक्षिणेन।
गत्वा क्रोशं कुशल तमसां वीचिरावच्छलेन
क्रोशन्तीं मामनुभव वनाद् वारिभिर्वारयन्तीम्।।१७५।।

गुञ्जन–हे मित्र! कमलों से मकरन्द रूप पाथेय पूजा प्राप्त कर पूजनीयों द्वारा पूजित होकर मधुर–मधुर गुंजार करते हुए नन्दिग्राम से दक्षिण की ओर एक कोस दूर जाकर तरंगों के स्वर के बहाने मेरे प्रति विलाप करती हुई और अपनी जलधारा से मुझे बल से रोकती हुई तमसा जी के दर्शन करना।

यस्यास्तीरे प्रथमदिवसे मत् प्रवासस्य मित्र
प्रीत्युद्रेकान्मदनुगमनान्पौरवर्गान् सनिद्रान्।
नैशीथेऽहं सह जनकजालक्ष्मणो वंचयित्वा
योगीवायां विपिनमममो मोहजालं विभज्य।।१७६।।

गुञ्जन–हे मित्र! मेरे प्रवास के प्रथम दिन प्रेम के उद्रेक से मेरा अनुगमन करने वाले, निद्रा में मग्न हुए पौरवर्गों को अर्धरात्रि में जिन तमसा के तट पर वञ्चित करके सीता एवं लक्ष्मण के साथ उसी प्रकार मैं वन आ गया जैसे ममतारहित योगी मोहजाल को तोड़कर भग जाता है।

यस्याः खेलत्सलिलपुलिने कौञ्चयोः क्रीडतोर्वै
ग्राम्यासक्तं हतवति नरं निर्दयेऽस्मिन् निषादे।
वाल्मीकेः श्रीवदनविगलद् भारती भव्यभावा
धाता दाता त्रिजगति सपद्यादिकाव्योपहारम्।।१७७।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिन तमसा के खेलते हुए जल से युक्त तटपर क्रीड़ा करते हुए क्रौञ्च मिथुन को देखकर ग्राम्य भोग में आसक्त नर क्रौञ्च को

मारे हुए विषाद की उपस्थिति में महर्षि बाल्मीकि के मुख से प्रकट होती हुई सरस्वती भव्यभावना से युक्त होकर अतिशीघ्र ही तीनों लोकों में नवीन काव्य का उपहार देंगी और उसे पोषित भी करेंगी।

तां त्वं भक्तया भज भगनिकां भावभूमिं कवीनाम्
भूम्नो भूत्यै तरुणतमसां मध्यचण्डांशुरेखाम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा मधुप तमसां मोदितासे कृतार्थो
भ्रातुश्श्रेयः किमु न कुरुते मङ्गलाशीः स्वसृणाम्।।१७८।।

गुञ्जन–हे मित्र! कवियों की भावभूमि मेरी अनुकम्पित बहिन का भक्तिपूर्वक भजन करो। इससे मुझ भूमा को विभूति ही मिलेगी। क्योंकि यही घोर अन्धकार के लिए मध्याह्न सूर्य की रेखा हैं। हे भ्रमर! तमसा जी के दर्शन करके उनमें आचमन करके तुम कृतार्थ हो जाओगे। क्योंकि बहनों का मंगलाशीर्वाद भ्राता का कौन सा कल्याण नहीं कर देता।

पेयं पीत्वा तरुणतमसा तामरस्यं सुरस्यं
दर्शं दर्शं पथि पथि जनान् मद्वियोगाग्निदग्धान्।
पश्येर्गोभिस्स्वदितसलिलां गोमतीं गामिवाद्याम्
वासिष्ठीं त्वं परमपयसा पावयन्तीमुदीचीम्।।१७९।।

गुञ्जन–हे मित्र! रसयुक्त तमसा तट पर विराजे हुए कमल का रस पी–पीकर मार्ग–मार्ग में मेरे वियोग से जले हुए लोगों को देख–देखकर जिस प्रकार वेदवाणी ने सर्वप्रथम अपनी वाक्यावलियों से उत्तरापथ को पवित्र किया था, उसी प्रकार परमपूजित जल से उत्तरकोसल को पवित्र करनेवाली स्वादयुक्त जलवाली वसिष्ठनन्दिनी गोमती के दर्शन करना।

धायं धायं परिमलमलं गोमतीकर्कटीनाम्
स्नायं स्नायं शिशिरसलिले धेनुमत्या विमत्तः।
पश्येः प्रीतस्तदनु शुभगं दक्षिणं तीरमस्याः
यस्मिन् भ्रातर्यहहतिलसो वारिताभूत् स्वसा मे।।१८०।।

गुञ्जन–हे भाई भ्रमर! गोमती में उत्पन्न हुई ककड़ियों के सुन्दर सुगंध को बार–बार जी भरके सूंघकर एवं गोमती के शीतल जल में पुनः पुनः स्नान करके उन्मत्त मन से प्रसन्नतापूर्वक गोमती के उस दक्षिण तट को अवश्य निहारना। अहो! जहाँ पर बहन गोमती बनवास जाते समय मुझ भ्राता पर तिल–तिल वार गई थीं इसीलिए उस घाट का नाम तिलबारी पड़ गया।

भूयो गत्वा मुदितमनसा दक्षिणस्यां सखेत्वं
पश्य प्रीत्या सरितममलां स्यन्दिकां स्यन्दितात्मा।
या मां दृष्ट्वा सजनकसुतालक्ष्मणं वन्यवेषम्
सस्यन्देऽम्भोभरजवमिषात्कारूणिक्यो हि साध्व्यः।।१८१।।

गुञ्जन–हे मित्र! फिर प्रसन्न मन से दक्षिण दिशा में जाकर तुम प्रेमपूर्वक पिघले हुए अन्तःकरण से स्यन्दिका नामक निर्मल नदी को देखोगे (जिसे आजकल सई कहते हैं) जो स्यन्दिका नदी सीता लक्ष्मण सहित मुझको वन्यवेश में देखकर जलधारा के वेग के बहाने स्यन्दित अर्थात् पिघल गई थीं। क्योंकि साध्वी माताएँ करुणाप्रधान हृदयवाली होती ही हैं।

तत्र स्नात्वा शुचि पिब पयः षट्पदस्यन्दिकाया
विश्रान्तःस्या उटजकुसुमे स्वादृतो धीवरीभ्यः।
आश्रृण्वंस्त्वं जगदघहरीर्गीत सीताः सुगाथा
विश्वश्रान्तिं हरति हि नृणामुत्तमश्लोकवादः।।१८२।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम वहाँ स्नान करके स्यन्दिका नदी का पवित्र जल पी लेना और सीता जी के सम्बन्ध में गायी हुई संसार के पाप हरण करने वाली गाथाएँ सुनते हुए धीवरियों द्वारा सम्मानित होकर कुटज के पुष्पों पर विश्राम कर लेना। उत्तम श्लोकजनों की वार्ता मनुष्यों की सभी थकान को दूर कर देती है।

यैया यास्यन् कलकलशभूवर्त्मना वार्जबन्धो
द्रक्ष्यस्यारादमलकमलं राघवाख्यं सरस्तत्।

यत्कञ्जानां सुरभिवशगा नान्दनामोदनिन्दम्
भृङ्गा भूमिं समभिपतिता गुण्यगृह्या हि सन्तः।।१८३।।

गुञ्जन–हे कमलों के बन्धु भ्रमर! सुन्दर दक्षिण मार्ग से जाते हुए स्यन्दिका नदी से कुछ दूर पर निर्मल कमलों वाले राघव सरोवर को देखोगे। जिसके कमलों की सुगंधि के वशीभूत होकर स्वर्ग के भ्रमर नन्दन वन की सुगन्धि की निन्दा करते हुए पृथ्वी पर आ जाते हैं। क्योंकि संत जन गुणों पर ही पक्षपात करते हैं।

सीतातर्षं शमयितुमलं यत्पुरारण्यमार्गे
कृत्वा कोट्या मम सुधनुषो लक्ष्मणेनानुजेन।
पारम्पर्यं परमनुसृतं सागराणां सुकृत्या
नूनं वृत्तं न जहति बुधाः पूर्वजानां कदापि।।१८४।।

गुञ्जन–जो प्रथम वनवास के मार्ग में सीता जी की प्यास बुझाने के लिए मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के द्वारा अपने धनुष की कोटि से बनाकर सगर पुत्रों की परम्परा का अनुसरण किया गया था। अर्थात् यदि सगर पुत्रों ने पृथ्वी खोदकर सागर बनाया तो उन्हीं के वंशज लक्ष्मण ने धनुष से पृथ्वी खोदकर राघन तालाब बना दिया। प्रायशः बुधजन पूर्वजों का इतिहास नहीं छोड़ते हैं। उसे कभी न कभी दोहराते ही हैं।

अद्याप्येतल्लसति समया स्यन्दिकां स्यन्दमानं
फुल्लाम्भोजोन्नटितमधुपं राघवं मे तडागम्।
धन्वाकारं नरवरनतं नाकिभिर्नम्यमानं
केतीभूतं कथयदिव भो लाघवं लक्ष्मणस्य।।१८५।।

गुञ्जन–जिसके विकसित कमलों पर भौंरे मँडरा रहे हैं, ऐसा धनुष के आकार वाला श्रेष्ठ मनुष्यों से वन्दित स्वर्ग के देवताओं द्वारा नमस्कार का विषय बनाया हुआ लक्ष्मण जी के हस्तलाघव को कहता हुआ सा उनकी कीर्ति की पताका बना हुआ स्यन्दिका नदी के पास बहता हुआ मेरा यह राघव सरोवर आज भी सुशोभित है।

विज्ञाय त्वामवनिजनुषे सन्दि दिक्षुं सिसृक्षुं
हर्षोत्कर्षं रघुवरपुरी कौशलान्तैरुदन्तैः।
गुञ्जद्भृङ्गा नवलनलिनी स्वैरनिन्द्यैर्मरन्दैः
रिष्टातिथ्यं किल घटयिता सज्जना नो कृतघ्नाः।।१८६।।

गुञ्जन–तुमको सीता जी के लिए संदेश देने का इच्छुक तथा अयोध्या पुरी के कुशल समाचारों से उनके हर्ष के उत्कर्ष को उत्पन्न करने का इच्छुक जानकर कोश पर मंडराते हुए भौंरो वाली राघव सरोवर की नवीन कमलिनी अपने अनिन्दित मकरन्दों द्वारा तुम्हारा अनुकूल आतिथ्य करेगी। क्योंकि सज्जन लोग कृतघ्न नहीं होते। वे उपकार करने वाले कं प्रति कृतज्ञ होते हैं।

तत्रस्थस्त्वं विमलसरसो राघवस्यालिवर्यैः
सार्धं मित्रं विहर कतिचिद् वासराण्यात्तसंधिः।
विश्रान्तस्सन् व्रज पुनरहो दीर्घमध्वानमाप्तुं
विश्रामो हि प्रथयति गुणानध्वनीनस्य भूत्यै।।१८७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस सरोवर के तट पर रहकर निर्मल राघव सरोवर के भ्रमरों से संधि करके उनका मित्र बनकर कुछ दिन विहार करना। फिर बड़े मार्ग को प्राप्त करने के लिए-वहाँ विश्राम करके आगे बढ़ना। क्योंकि समय-समय पर किया हुआ विश्राम पथिक की विभूति के लिए गुणों की ही व्याख्या करता है।

घ्रायं घ्रायं सुरभिमनघं सान्द्रमूर्वारुकानाम्
पायं पायं रसमधिसुधं साहकारं प्रकामम्।
श्रावं श्रावं मधुरमवधीगीतकान्याम्रपाल्याम्
मा भू रक्तो नहि सुकृतिनः कर्मतः स्वात् प्रमत्ताः।।१८८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! वहाँ खरबूजे की निष्पाप सुन्दर सुगंधि सूंघ सूंघकर अमृत के समान आम्ररस को आकण्ठ पी पीकर अमराइयों में ग्रामीणों द्वारा

गाए हुए अवधी गीतों को सुन-सुनकर वहाँ अनुरक्त मत हो जाना। क्योंकि सुकृती जन अपने कर्तव्य से प्रमाद नहीं करते।

पश्यन् स्फीतान् हरितहरितान् कोसलान्शस्यकोषा-
निक्ष्वाकूणां पुरवधिमितः पृष्ठतोभूय भूयः।
वन्देथास्त्वं प्रणतशिरसा मामकीनामयोध्याम्
श्रेयस्यौ हि भ्रमर जननीजन्मभूमी द्युलोकात्।।१८९।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! तुम धन धान्य सम्पन्न हरे भरे फसलों के खजाने जैसे कोसल जनपद को निहारते हुए इक्ष्वाकुवंश के कुल की अवधि अर्थात् सीमा शृंगवेरपुर को प्राप्त कर पीछे मुड़कर विनम्र मस्तक से मेरी अयोध्या को नमन कर लेना। क्योंकि माता और जन्मभूमि तो स्वर्ग से भी श्रेष्ठ होती है।

भूयः प्राप्स्यस्यनलसगते शृंगवेरं पुरं तत्
यज्जामातुः किल मम पितुर्नामतः ख्यातपूर्वम्।
यस्मिन् सार्धं निवसति मुनिः शान्तया मद्भगिन्या
सावित्र्येव प्रगुणिततपाः सत्यवान् पूर्णकामः।।१९०।।

गुञ्जन-हे मित्र! आलस्य रहित गति से जाते हुए तुम फिर तो उस शृंगवेरपुर को प्राप्त करोगे जो मेरे पिता के जामाता ऋष्यशृङ्ग के नाम से प्रसिद्ध है। जिसमें मेरी बहन शान्ता के साथ महर्षि ऋष्यभृंग उसी प्रकार निवास करते हैं जैसे परमतपस्वी सत्यवान् सावित्री जी के साथ।

शान्तां पश्येर्मम सुभगिनीं मय्यनुक्रोशशीलाम्
ज्येष्ठां ज्येष्ठा रहित मनसं तापसीं विप्रपत्नीम्।
यां मत्पूर्वं जगदघहृतेऽसूतसाध्वी सुमित्रा
प्राचीवाभामुषसि विशदां भृंगभानूदयात्प्राक्।।१९१।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! उस शृंङ्गवेरपुर में मुझ पर स्वभाव से कृपा करने वाली दारिद्र्य से रहित मनवाली तपस्विनी ब्राह्मणपत्नी मेरी बड़ी बहन

शान्ता के दर्शन करना। जिनको मुझसे पूर्व संसार का पाप दूर करने के लिए साध्वी सुमित्रा जी ने उसी प्रकार जन्म दिया था जैसे उषःकाल में सूर्योदय के पहले श्वेत आभा को पूर्व दिशा जन्म दे देती है।

तां मद्वाचा प्रणम भगिनीं वन्दितां नश्चतुर्णाम्
मेकामेकामिव गुणवतां प्राणवीं छन्दसां वै।
भर्तुप्रीतिं समनुदधती साधु सीता ननान्दा
ग्रामस्थापि प्रणवति यथा या सुकन्येतिहासम्।।१९२।

गुञ्जन–हे भ्रमर! चारों वेदों में प्रणवश्रुति की भाँति ही अद्वितीय हम चारों भाइयों में एक मात्र वन्दनीय वहन शान्ता को मेरी वाणी से प्रणाम कर देना। जो सीता जी की ननद, ग्राम में रहकर भी अपने स्वामी की प्रसन्नता बढ़ाती हुई मानों सुकन्या के इतिहास को नया कर रही है।

तातादेशान्निगडिततया श्रृंगवेरे पुरेऽपि
द्रष्टुं नायां कमलचरणौ सानुजश्रीर्यदार्ये।
प्रायश्चित्तं तदहमधुना क्षामये कर्तुकामः
शान्तां शान्तप्रकृतिकलुषां न स्वतन्त्रा हि सेवा।।१९३।।

गुञ्जन–पिता के आदेश के बन्धन में होने के कारण लक्ष्मण सीता के सहित शृंगवेरपुर में आकर भी मैं आपश्री के चरण कमलों के दर्शन नहीं कर सका। आर्ये! इस समय वही प्रयश्चित्त करने के लिए प्रकृति जनित विकारों को शान्त करने वाले शान्तानाम वाली आप बहना से क्षमा करने की प्रार्थना कर रहा हूँ। क्योंकि सेवा में अपना तन्त्र नहीं होता। अर्थात् सेवक पराधीन होता है।

प्रत्यायाता कुणपभवनात् सानुगे पङ्क्तिमौलौ
मद्बाणौघैस्तमसि च यथा भानुभिश्चन्द्रभानोः।
नष्टे हृष्टे त्रिदशनिकरे शम्भुनेत्रे तथाब्दे
सीता दाता विजयमहितां दक्षिणां स्वां ननान्द्रे।।१९४।।

गुञ्जन–प्रचण्ड किरणों वाले सूर्य की किरणों से अन्धकार की भाँति मेरे बाण समूहों से सपरिवार रावण को नष्ट कर दिये जाने पर, देवसमूह के प्रसन्न हो जाने पर शम्भुनेत्र अर्थात् वनवास के चौदह वर्ष व्यतीत कर, पन्द्रहवें वर्ष में राक्षस भवन से अयोध्या लौटती हुई सीता जी अपनी ननद जी को विजय से पूजित दक्षिणा देंगी।

गङ्गामङ्ग प्रणम परमोतुङ्गरिङ्गत्तरङ्गाम्
मत्पादाम्भोरुहरसतनुं तान्ततापापसङ्गाम्।
धात्रे पात्रे विहितवसतिं धूर्जटेर्जूटरङ्गम्
मुक्ता सङ्गां सलिलवसुधा सत्सुधां पापभङ्गाम्।।१९५।।

गुञ्जन–हे मित्र! इसके अनन्तर तुम उन गंगा जी को प्रणाम करना जिनकी तरंगे पूजनीय विशाल एवं चञ्चल हैं। मेरे चरणकमल का मकरंद ही जिनका शरीर है। जहाँ जाकर तीनों प्रकार के ताप और असत् संग तान्त अर्थात् दुर्बल हो जाते हैं। जिन्होंने ब्रह्मा जी के कमण्डल में सर्वप्रथम निवास किया। शंकर भगवान का जटाजूट ही जिनकी क्रीडारङ्गस्थली है। जो आसक्ति से रहित हैं तथा जिनका जल ही वसुधा की श्रेष्ठ सुधा है जो समस्त पापों को नष्ट कर देती हैं।

त्रातुं जीवान् प्रकृति कुटिलान् घोरसंसारसिन्धो–
र्या कौटिल्यं श्रयति गमनेप्यङ्गगङ्गन्तिगाञ्च।
डित्सामर्थ्यात्भमभिदधती प्रत्ययं नानुबन्धम्
गङ्गेत्याख्या नुगुणचरिता जुष्टपार्षोदरादिः।।१९६।।

गुञ्जन–स्वभाव से कुटिल जीवों को संसार सागर से तारने के लिंए जो अपने गमन में कुटिलता का आश्रय करती हैं और जो पृथ्वी पर भी टेढ़ी गति से आती हैं। डित्व के सामर्थ्य से भ संज्ञा के बिना भी अनुबन्ध का लोप हो जाता है इसलिए पृषोदरादिगण के कारण गंगा जी का चरित्र भी गंगा इस आख्या के अनुरूप हो जाता है। व्याख्या में पृषोदरादिगण और चरित्र में

पृषोदर आदि हिंसक जन्तु भी गंगा के तट पर रहकर मुक्त हो जाते हैं।

गाहस्वैताममृतसलिलां भव्यभागीरथीं त्वं
पीत्वा पाथः प्रशमितभवं पापसंतापहारि।
विश्रान्तस्सन् मिल गुहमले मामकीनं सखायं
यात्रां प्राहुः सुफलनिगमां साधुसत्संगपूर्वाम्।।१९७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम इस अमृत जलवाली भव्य भागीरथी में अवगाहन कर लेना। भवभय को नष्ट करने वाले, पाप सन्ताप को हरण करने वाले गंगाजल का पान करके विश्राम करके मेरे मित्र गुह से मिल लेना। क्योंकि सत्संगपूर्वक यात्रा को सन्तजन सिद्ध लक्ष्यों वाली बताते हैं।

यो मां दृष्ट्वा जनकसुतया स्थण्डिले लब्धनिद्रं
शोकोद्रेकात् पुलकित तनुः क्षालयन्नास्यमश्रैः।
क्रोशं क्रोशं कुररिचरितो मध्यमाम्बां विनिन्दन्
राजद्रोहे व्यवसितमतिर्वारितो लक्ष्मणेन।।१९८।।

गुञ्जन–जिन निषादराज ने सीता के सहित मुझे कुश की चटाई पर सोते देख शोक के आधिक्य से रोमाञ्चित होकर अपने मुँह को आँसुओं से धोते हुए कुररी के समान बार–बार रोकर मझली माँ कैकेयी की निंदा करते हुए राजद्रोह के लिए बुद्धि से निश्चय कर लिया था परन्तु उन्हें लक्ष्मण ने रोक दिया।

पश्यन्नीहत् विटपपयसा सन्दधानं जटाके
गंगातीरे तरणिमसकृत् दाशकं याचमानम्।
यः कारुण्याच्छिशुरिव शिरस्ताडमुच्चै रुरोद
प्रायश्चित्तं भवति हि सतां लाक्षिका तुल्यशीलम्।।१९९।।

गुञ्जन–कामदेव की लक्ष्मी को हरण करने वाले शिव जी के वृक्ष अर्थात् वट वृक्ष के दूध से मस्तक पर जटा बनाते हुए तथा गंगा जी के तट

पर अपने ही सेवक केवट से बार-बार नाव माँगते हुए मुझ राम को देखकर जो करुणा के कारण बालक की भाँति शिर पीट-पीटकर रो पड़े थे। प्रायः सन्तों का चित्त लाख के समान होता है। जो अग्नि पाते ही पिघल जाता है।

विशेष-पश्यन् ईहृत् इति पदच्छेदः। विग्रहस्तु-अः वासुदेवः तस्य अपत्यं पुमान् इह कामदेवः। एः कामस्य ई लक्ष्मीः इति ईः कामदेव लक्ष्मीः तां हरति इति ईहृत्शिवः तस्य विटपः वटवृक्षः। तस्य पयः तेन।

दृष्ट्वा यान्तं धरणितनया लक्ष्मणाभ्यां युतं माम्
घोरारण्यं मुनिपटधरं मद्वियोगासहिष्णोः।
दृग्भ्यां यस्या निशमभिपतद्रक्तमव्याप्तियुक्त-
मक्ष्णोश्चक्रे मम च सुहृदो लक्षणं बाष्पवत्वम्।।२००।।

गुञ्जन-सीता लक्ष्मण के साथ मुनिवस्त्र धारण किए हुए मुझे घोर बन में जाते हुए देखकर मेरे वियोग को न सहने के कारण जिस मेरे मित्र गुह निषाद की दोनों आँखों से रात दिन गिरते हुए रक्त ने नेत्र के बाष्पत्व लक्षण को अव्याप्ति दोष से ग्रस्त कर दिया। अर्थात् गुह के नेत्र रूप लक्ष्यैक देश में रक्त होने के कारण बाष्पवत्व की अवृत्ति से अव्याप्ति दोष आ गया।

तन्मन्मित्रं गुहमभिवदानामयं मामकीनम्
कञ्चित्कालं निवस रमयन् रामवार्ताभिधानैः।
नूनं नृणां व्यसनवनधौ मज्जतामातुराणाम्
पोतायन्ते मम शुचिकथाः साधुभिर्गीयमानाः।।२०१।।

गुञ्जन-इसलिए तुम मेरे मित्र गुह से मेरा अनामय (कुशल) कह देना और कुछ कालपर्यन्त मुझ राम की सुन्दर गाथाओं के व्याख्यानों से गुहराज को आनन्द देते हुए उन्हीं के पास निवास कर लेना। निश्चित ही साधु पुरुषों द्वारा नित्य गाई जाती हुई मेरी पवित्र कथाएँ विपत्ति के सागर में डूबते हुए भयातुर प्राणियों की जलपोत बन जाती हैं। अर्थात् जीव को संसार सागर से तार देती हैं।

ग्रामो रामो गत इत अतो ग्राम नामा सुधामा
ग्रामो राम प्रतिमवपुषा श्यामशस्येन रामः।
ग्रामो रामामित गुणगणो गीयतेऽस्मिस्ततोऽयम्
ग्रामो रामो रम इह मतो विग्रहैर्वेदसंज्ञैः।।२०२।।

गुञ्जन–यह ग्राम मुझ राम के संबंध से चार विग्रहों द्वारा निष्पन्न होता है। मैं राम ग्राम से बन गया। इसलिए सुन्दर तीरवाला यह स्थल ग्राम कहलाया। यह मुझ राम के समान नीले–नीले शस्यों से सुन्दर है। इसलिए यह ग्राम है और रामः इति ग्रामः पृषोदरादित्वात् अकार लोपः। जिसमें मुझ राम के अमित गुणगण गाए जाते हैं। इसलिए यह ग्राम है। गीयते रामः यस्मिन् स ग्रामः। मैं राम इसी ग्राम में रमता हूँ गि रमते इति ग्रामः। इस प्रकार चार विग्रहों के आधार पर ग्राम शब्द की निष्पत्ति होती है।

निर्दोषाणां विगतभृकुटी विभ्रमप्रेक्षणीनाम्
कन्थाभ्राजां कुमुददयितस्मेरमञ्ज्वाननानाम्।
कैवर्तीनां श्रवणसुखदं गीतसीताभिरामं
शृण्वन् रात्रौ वनजवसते रंस्यसे रामकीर्तौ।।२०३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! दोष रहित और भौहों की चटक–मटक से दूर शुद्ध चितवन वाली गुदड़ी में ही रहने वाली, चन्द्रमा के समान मुस्कान से युक्त सुन्दर मुखों वाली केवटायिनों के द्वारा गाए हुए श्रवण सुखद मुझ सीताभिराम का गीत सुनते हुए रात्रि में कमल के कोश में रहने वाले होकर भी तुम मुझ राम की कीर्ति से चमत्कृत गुह के ग्राम में भी रम जाओगे।

अन्वागच्छन् गुहमलिपते शिंशुपाभिः परीतम्
द्रष्टासि त्वं त्वमिववसुधा सर्गतो मत्पदाङ्कम्।
नैषादीनां नयन सलिलैर्मार्जमानं ह्यजस्रम्
त्रातं यत्नात् तरणिपभृता चत्वरं रामपूर्वम्।।२०४।।

गुञ्जन–हे भ्रमरेन्द्र! गुह के पीछे–पीछे आते हुए शिंशुपा (शीशम)

वृक्षों से ढके हुए, पृथ्वी की सृष्टि से विलक्षण, मेरे चरण चिह्नों से युक्त, केवटानियों के आँसुओं से निरन्तर मार्जित किए जाते हुए, निषादराज गुह द्वारा बहुत यत्न से सुरक्षित किए हुए मेरे राम चबूतरे के दर्शन अवश्य करना।

तस्मिन् नित्यं गुहपरिकरैस्त्रायमाणं यथास्वं
लब्ध्वालभ्यं भजनरसिकैः पंचमं वा पुमर्थम्।
शालग्रामं कनकखचिते सम्पुटे खे यथार्कं
कावास्तीर्णं च्युतमिव दिवो विष्टरं दार्भिकं नौ।।२०५।।

गुञ्जन–उस राम चबूतरे पर अपने धन के समान ही गुहराज के परिकरों द्वारा यत्न पूर्वक सुरक्षित किए जा रहे भजन रसिकों द्वारा प्राप्त किए हुए अलभ्य पंचम पुरुषार्थ की भाँति स्वर्ण के सम्मुट में विराजमान शालग्राम की भाँति आकाश में सूर्य के समान स्वर्ग से च्युत अपूर्व तेज की भाँति पृथ्वी पर बिछाए हुए हम दोनों अर्थात् सीताराम के कुश चटाई के बिस्तर को देखना।

सीताशाटीकनकविगलद्विन्दुभिर्भूष्यमाणम्
द्रक्षस्यद्याप्यहह सुहृदा प्राणवत् त्रायमाणम्।
स्वर्गारामप्रसव कुसुमैर्वित्यमाकीर्यमाणम्
पुञ्जीभूतं शुभमिवनृणां पुंभिरास्मर्यमाणम्।।२०६।।

गुञ्जन–सीता जी की साड़ी से पिघले हुए स्वर्ण बिन्दुओं से सुशोभित हो रहे अहो! आज भी मेरे मित्र गुह द्वारा प्राण के समान बचाकर रखे जा रहे नन्दन के पुष्पों द्वारा निरन्तर आकीर्ण किए जा रहे, इकट्ठे हुए प्राणियों के पुण्य के समान लोगों द्वारा स्मरण किए जा रहे मेरे उस कुश के बिस्तर को अवश्य देखना।

तस्माद् गत्वा पवनगतिमन् दक्षिणेनाध्वना त्वम्
द्रक्षस्याराद् भवभयहरं तीर्थराजं प्रयागम्।

मध्ये गङ्गा तपनसुतयोः पश्य गां तोयभूताम्
ब्राह्मीं विद्यामिवधृततनुं मञ्जुमीमांसयोर्वै।।२०७।।

गुञ्जन–हे पवन के समान गतिवाले मनोभृङ्ग! उस शृंगवेरपुर से दक्षिण मार्ग से जाकर तुम निकट ही भवभयहारी तीर्थराजप्रयाग के दर्शन करोगे। जहाँ गंगा एवं सूर्यपुत्री यमुना के बीच में जल शरीरवाली सरस्वती उसी प्रकार विराजमान हो रही हैं जैसे पूर्वमीमांसा एवं उत्तरमीमांसा के बीच शरीरधारिणी ब्रह्मविद्या हो।

प्रेम्णा पश्याक्षयवटमले मामिवाक्षैय्यदेहम्
सर्गध्वंसेऽप्युदधिसलिले यो न मग्नो वभूव।
पर्णे यस्य स्वविभवविभा व्रीडितोद्यतसुपर्णे
सृष्टेरादौ धृतशिशुतनुः सानुरागः शये स्म।।२०८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मेरे ही समान अविनाशी शरीर वाले अक्षयवट को तुम प्रेम से निहारो। सृष्टि का प्रलय होने पर भी जो समुद्र में नहीं डूबा। अपनी आभा से उदीयमान गरुड़ को भी लज्जित करने वाले जिसके नीले पत्ते पर सृष्टि के प्रारंभ में बालरूप धारण करके मैने अनुराग पूर्वक शयन किया था।

यस्यच्छायां मरकतमयीं सेवमाना मुनीन्द्राः
संसारार्कज्वलनभयतो न व्यथन्ते कदाचित्।
क्षत्रीयभूय प्रतिपदमहो तीर्थकानां प्रयागं
राजानं यः कलयति चिरं छत्रलक्ष्मा हि भूपः।।२०९।।

गुञ्जन–जिसकी मरकतमणि के समान नीली छाया का सेवन करते हुए मुनिगण संसार रूप सूर्य के भय से कभी व्यथित नहीं होते और जो निरन्तर छत्र बनकर प्रयाग को तीर्थों के राजा के रूप में प्रतिष्ठापित करता रहता है। क्योंकि राजा का चिह्न छत्र ही होता है।

यस्मिन् यागैः श्रुतिनिगदितैः स्मर्यमाणैरसंख्यै-
र्यज्ञं यष्टुं परिणतधियो देववर्या यतन्ते।
तस्मात् ख्यातो दिवि भुवि सखे तीर्थराजः प्रयागो
यत्र त्यक्त्वा तनुमममधीर्नाश्नुते देहबन्धम्।।२१०।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस में देवतागण वैदिक और स्मार्त अनेक यागों द्वारा यज्ञ भगवान् का यजन करने के लिए यत्न करते रहते हैं। इसीलिए यह तीर्थराज प्रयाग स्वर्ग तथा पृथ्वी पर प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ शरीर त्याग करके सांसारिक ममता से शून्य बुद्धि वाला साधक देह बन्धन नहीं प्राप्त करता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

स्पृष्ट्वामङ्क्त्वा मुदितमनसा पूतदेहस्त्रिवेण्यां
पश्य प्रीतः प्रियवर भरद्वाजमात्मस्थचित्तम्।
सप्तर्षीणां लसति गगने यस्तृतीयास्पदं वै
बिभ्रद् वीर्यात्स्वरिवनिगमे व्याहृतीनां तृतीयाम्।।२११।।

गुञ्जन–हे मित्र! तीर्थराज प्रयाग में स्नान आचमन करके पुनः त्रिवेणी में पवित्र शरीर होकर प्रसन्न मन से परमात्मा में स्थिर चित्तवाले महर्षि भरद्वाज के दर्शन करना। जो आकाश में सप्तर्षियों के बीच उसी प्रकार अपना तृतीय स्थान धारण करते हैं जैसे वेदों में स्वः तृतीय व्याहृति को धारण करता है।

तस्मादित्वा प्रथिततपसश्चाश्रमात्त्वं महर्षेः
पश्यावाच्यां यमन यमुनां मच्छरीराभनीराम्।
धारा सारैरभिहरिसुतां गन्तुकामां त्रियामाम्
स्वात्मद्योतैरिव हरिदिशि ब्रह्मवेलां सुवेलाम्।।२१२।।

गुञ्जन–हे संयमियों में श्रेष्ठ! परम तपस्वी महर्षि भरद्वाज के उस आश्रम से दक्षिण की ओर जाकर मेरे शरीर के समान श्यामजलवाली यमुना जी के दर्शन करना। जो अपनी अगणित धाराओं से गंगा जी से मिलने की

इच्छुक होती हुई उसी प्रकार सुशोभित हो रही हैं। जिस प्रकार पूर्व दिशा में सुन्दर समय वाली प्रभात वेला से रात्रि मिल रही हो।

नावा तीर्त्वा तरणितनयां ज्ञानवान् गां गवेव
प्रह्वः पूज्यां दिनकरसुतां प्रस्थितश्चित्रकूटम्।
प्रायः पुंसां दुरितदलनं प्राहुरीड्यव्रतानाम्
श्रद्धेयानामपचितिविधिं श्रद्धया सृज्यमानम्।।२१३।।

गुञ्जन–हे मित्र! परा विद्या द्वारा अपरा विद्या की भाँति यद्वा उत्तरमीमांसा द्वारा पूर्वमीमांसा की भाँति नाव से यमुना को पार करके चित्रकूट प्रस्थान करते समय सूर्यपुत्री यमुना जी के प्रति विनम्र हो जाना। क्योंकि प्रायशः पवित्र व्रत वाले श्रद्धेय एवं पूज्य लोगों के प्रति श्रद्धा पूर्वक प्रस्तुत की जा रही पूजा विधि को सुधीजन पापनाशक कहते हैं।

तां वन्दित्वा वनजकुलपो जातिकां जातहर्षः
श्रीकालिन्दीं मम कुलभवां भावयन् भावितात्मा।
लब्ध्वानुज्ञां व्रज मधुपराड् दक्षिणं दक्षिणास्यो
नानाशीर्भिः कलयितुमलं चित्रकूटं त्रिकूटात्।।२१४।।

गुञ्जन–हे भ्रमरों के राजा! तुम आत्मचिन्तन करते हुए कमल कुल के पोषक सूर्यनारायण की पुत्री मेरे कुल में उत्पन्न श्री कालिन्दी जी को वन्दन करके उन्हें प्रसन्न करते हुए प्रसन्नता पूर्वक उनसे आज्ञा लेकर दक्षिण ओर मुख करके दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करना। क्योंकि आशीर्वादों के बिना प्राणी त्रिकूट से चित्रकूट नहीं जा सकता।

गुञ्जं गुञ्जं पथि पथि पिबन् पुण्यपाथोजपेयं
मेलं मेलं निजमुखरितं झिल्लिकानां विरावैः।
क्रामं क्रामं क्रमुकवपुषा वृक्षशैलापगास्त्वम्
मोघीकुर्वन् कलुषमचिराल्लप्स्यसे चित्रकूटम्।।२१५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम गूँज–गूँजकर मार्ग में पवित्र कमल रस का पान करते हुए एवं झिल्ली के स्वरों के साथ अपने स्वर को मिला मिलाकर अपने सुपारी जैसे शरीर से वृक्ष, पर्वतों और नदियों को लांघ लांघकर मार्ग की श्रमजनित कलुषता को समाप्त करते हुए शीघ्र ही चित्रकूट को प्राप्त कर लोगे।

त्वामायान्तं विपिनवनिता वीक्ष्य विश्वाभिरामम्
रामारामं रमितरसिकं रस्यगृह्यं गृहार्हम्।
प्रेमाद्रेकप्रसरपुलका नेत्रपद्मा सवार्घ्यै-
रञ्चिष्यन्ति प्रमुदित हृदः स्वागतज्ञा हि सन्तः।।२१६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! विश्व को आनंद देने वाले भगवती सीता जी के लिए भी आनन्दस्वरूप, रमण के रसिक, रसिकों के पक्षपाती, गृहों में भ्रमण करने योग्य तुझ भ्रमर को आते हुए देखकर वनदेवियाँ प्रेमोद्रेक के प्रभाव से प्रमुदित मन वाली होकर अपने नेत्रकमल के अश्रुअर्घ्यों से तुम्हारी पूजा करेंगी। क्योंकि सन्तजन आगन्तुक का स्वागत करना जानते हैं।

मार्गे पश्यन् वन विटपिनः सौरभाकृष्टदेवा-
रण्यालीन्द्रान्यथिक जनता चित्त पद्मैकसद्मन्।
प्रेम्णा पीत्वा मधुप मधुरां मञ्जुमाधूपमाध्वीं
योगीवैष्यस्यनुपमगतिं सुस्थलीं चित्रकूटीम्।।२१७।।

गुञ्जन–हे अध्यात्म पथ के पथिक, जनता के हृदय कमल में निवास करने वाले भ्रमर! अपनी सुगन्धि से नन्दन वन के भ्रमरों को भी आकृष्ट करने वाले! अनेक वृक्षों को मार्ग में निहारते हुए प्रेम से महुआ के मधुर रस को पीकर अनुपम गति प्राप्त करने वाले योगी की भाँति तुम भी चित्रकूट की सुन्दर स्थली को प्राप्त कर लोगे।

सिंहव्याघ्रै करटिभिरलं सेवितं सेवितार्यम्
नित्यं जुष्टं मुनिभिरनघैः सानुरागैर्विरागैः।

सिक्तं तोयैस्तुहिनशिशिरैर्निर्झराणामजस्त्रम्
नेवैताखं सुखमुपगतश्चित्रकूटं त्रिकूटात्।।२१८।।

गुञ्जन–त्रिकूट से उपरत ब्रह्म को प्राप्त किए हुए साधक नर की भाँति तुम भी सिंह, बाघ और हाथियों द्वारा सेवित श्रेष्ठ जनों की सेवा करने वाले प्रीति पूर्वक मुनिजनों द्वारा विराजित और निष्पाप अनुरागी विरागी जनों द्वारा समलंकृत झरनों के बर्फ के समान शीतल निर्मल जलों से सींचें गए चित्रकूट को प्राप्त कर अनुपम सुख का अनुभव करोगे।

वाल्मीकेस्त्वं प्रविश मधुप स्वाश्रमं शान्तवैरम्
पूर्वं पूर्वानुचरितचरं चित्रकूटप्रवेशात्।
सौमङ्गल्यं भवति हि सतां दर्शनं पुण्यभाजां
श्रेयस्सिद्धौ प्रयतमनसां सत्यशीलव्रतानाम्।।२१९।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! चित्रकूट प्रवेश के प्रथम पूर्वपुरुषों द्वारा पूर्व में ही सेवित शान्त वैर वाले महर्षि वाल्मीकि के सुन्दर आश्रम में प्रवेश करना। क्योंकि कल्याण की सिद्धि में प्रयत्न शील मन वाले सत्य तथा शील के व्रत में परिनिष्ठत लोगों के लिए पुण्यवान् सन्तों के दर्शन सौमंगल्य अर्थात् मंगलप्रद ही होते हैं।

वाल्मीकिं त्वं प्रणममधुरं वार्तमावर्तयन्मे
तत्पादाम्भोरुहरसमहो भृङ्ग पीत्वानवद्यम्।
तस्यानुज्ञां शिरसि निदधत् धामधुर्यं सतुर्यं
सच्चातुर्यं त्वरित गतिमान् गच्छ चिच्चित्रकूटम्।।२२०।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम मेरा मधुर कुशल कहते हुए महर्षि वाल्मीकि को प्रणाम करना। फिर उनके अनिन्दित चरण कमल रस को पीकर उन्हीं की आज्ञा को शिर पर धारण करते हुए मुझ परब्रह्म के निवास से पवित्र विभक्ति चातुरी से युक्त सभी धामों में श्रेष्ठ चिन्मय चित्रकूट के लिए शीघ्र गति से प्रस्थान करना।

धातुस्सर्गं　समतिशयितो　भग्नभक्तत्रिकूटः
स्निग्ध स्नेहामृत कणरस प्लालावित स्वर्णकूटः।
मत् पादाङ्कोच्छलित महिमोदाम माणिक्यकूटो
द्रष्ट　व्यस्ते　सुभग　सुभगश्चिन्मयश्चित्रकूटः।।२२१।।

गुञ्जन–ब्रह्मा जी की सृष्टि को भी अतिक्रान्त करने वाले, भक्तों के त्रिकूट को नष्ट करने वाले, सुन्दर तथा मेरे प्रेमामृत के कणों के रस से सिञ्चित स्वर्णकूटों वाले मेरे चरण चिह्नों से उच्छलित महिमामण्डित भौतिक प्रतिबन्धों से रहित माणिक्य कूटों वाले सुन्दरातिसुन्दर चिन्मय चित्रकूट को तुम अवश्य देखना।

मन्दाकिन्या　विमलपयसा　पाविताशेषकूटे
नित्यं　क्रन्दद्भरतनयनोद्बाष्पसंक्लिन्नकूटे।
शृङ्गोत्सेधप्रमथितपयसिन्धुमन्थाद्रिकूटे
रन्तव्यं　तेऽप्यवहितगतेश्चित्रकूटेऽत्रिकूटे।।२२२।।

गुञ्जन–हे मित्र! मंदाकिनी जी के विमल जल से जिसके सभी शिखर पवित्र किए गए हैं और निरन्तर क्रन्दन करते हुए भरत के नेत्रों से निर्झरित आंसुओं से जिसके शिखर गीले हो गए हैं, अपने शिखरों की ऊंचाई से जिसने समुद्र मंथन करने वाले मंदराचल के शिखरों को भी मात दे दी। ऐसे त्रिकूट से रहित चित्रकूट में व्यवधान रहित गति से तुम रमण कर लेना।

यस्मिन् सीता विहरति सुखं मद्भुजां भोज हारा
शोभा ब्रीडयद्रति शत रुचिश्चारु चन्द्रांशुहासा।
शष्पश्यामो मुनिजननुतो नम्रशाखोऽनुशाखो-
विस्मर्तव्यो न खलु भवता चिद्घनश्चित्रकूटः।।२२३।।

गुञ्जन–हे मित्र! अपनी शोभा से करोड़ों रतियों की शोभा को लजाने वाली, सुन्दर चन्द्र किरण के समान हास वाली सीता जी जिस चित्रकूट में मेरे भुज कमल को अपना कण्ठहार बनाकर निरन्तर विहार करती रहती हैं

ऐसी सुन्दर घासों से श्यामल, मुनि जनों से प्रणत, विनम्र वृक्ष की शाखाओं से युक्त तथा अनुकूल अपनी-अपनी वैदिक शाखाओं के मन्त्रपाठों से झंकृत चिद्घन चित्रकूट को तुम कभी मत भूलना।

यस्मिन् नित्यं मुनिनृपतयो योगिवर्या यतीन्द्रा-
स्तप्यन्ते वै परमथतपः साधवः श्वासरोधम्।
उत्तिष्ठन्तो वनविटपिनो वर्षवातातपानि
क्षामं क्षामं क्षपयितुमलं विश्वरोगान् यतन्ते।।२२४।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! जिस चित्रकूट में निरन्तर श्रेष्ठ मुनिजन तथा योगीजन, संन्यासीवर्य एवं साधुजन अपने श्वास को रोककर उग्रतप करते रहते हैं। जिसमें खड़े हुए वन वृक्ष भी शीतवायु और धूप सह सहकर सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने का प्रयास करते रहते हैं।

यस्मिन्नृणां कलुषशमनायात्रिभार्यानसूया
स्वर्गाद्गङ्गां मदगदपदाम्भोजभूतां प्रवर्त्य।
अन्वायान्ती विशदतपसा वर्त्मभागीरथं वै
व्यर्थं चक्रे प्रथितमबला नाम नारीजनस्य।।२२५।।

गुञ्जन-जिस चित्रकूट में महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया ने मेरे अमृतमय चरणकमल से उत्पन्न गंगा जी को स्वर्ग से लाकर अपने निर्मल तप से भगीरथ के मार्ग का अनुसरण करती हुई, नारीजन के प्रसिद्ध अबला नाम को व्यर्थ अर्थात् अर्थहीन अथवा विशिष्ट अर्थ वाला कर दिया।

विशेष-भगीरथ पुरुष होकर गंगा जी को ले आए और अनसूया जी नारी शरीर से गंगा जी को ले आईं। यदि अबला शब्द न बलं यस्याम् जिसके पास बल नहीं वह अबला है इसी अर्थ का द्योतक हो तो अनसूया ने इसे अर्थहीन कर दिया, क्योंकि जिस गंगा को लाने में भगीरथ के पूर्वजों ने नाकों चने चबाए उन्हीं को अनसूया ने सहजता से ला दिया। यदि वे अबला अर्थात् बलहीन होतीं तो कैसे ले आती। अतः उन्होंने इस नाम को विशिष्ट

अर्थ वाला बना दिया। अकारो रामचन्द्रः बलं यस्याः सा अबला। भगवान् राम जिसके बल है वही अबला है इसी अर्थ के आधार पर अनसूया जी ने भगीरथ की अपेक्षा अत्यन्त अल्प प्रयास में ही गंगा जी को चित्रकूट में ला दिया।

क्राम्यन् क्राम्यन् गिरिवन भयं पान्थपन्थानमध्व-
न्यत्युत्साहाद्विगणिततृषा क्षुत्प्रकोपः प्रकामम्।
मन्दाकिन्यां श्रमविहतये स्नाहि शीतोदकायाम्
यात्रा क्लान्तिं हरति हि नृणां स्वच्छपाथोऽवगाहः।।२२६।।

गुञ्जन–हे मित्र! मार्ग में अत्यन्त उत्साह के कारण प्यास और भूख के प्रकोप को विगणित अर्थात् उपेक्षित कर दिया था। इसलिए पथरीले और कंटकित मार्ग को लांघते लांघते तुम थक गए होगे। अतः इस श्रम को समाप्त करने के लिए मंदाकिनी जी के शीतल जल में नहा लेना। क्योंकि स्वच्छ जल का अवगाहन प्राणियों की यात्रा की थकान को दूर कर देता है।

तत्रोदीच्यां दिशि पुनरले पृष्ठतो भूयपश्ये-
र्धन्वाकारं नदमथ नदीं सर्वतो ब्राह्मकुण्डीम्।
चापीभूतं लसति यदहो चित्रकूटस्य साक्षात्
सैनापत्यं समधिभजतः पापशूरैर्युयुत्सोः।।२२७।।

गुञ्जन–हे मित्र! वहाँ पीछे मुड़कर फिर उत्तर दिशा में देखना ब्रह्मकुण्ड से प्रकट होने वाली पयस्विनी जी के चारों ओर एक धनुष के आकार का नाला है। जो पाप रूप वीरों से युद्ध करने के लिए इच्छुक चित्रकूट रूप सेनापति का मानो बाण ही सुशोभित हो रहा है।

तत्रेक्षेथास्त्रिदशतिलकैः कोलकैरातवेशैः
क्लृप्तां पर्णैस्तृणदलसुमैर्मामिकां पर्णशालाम्।
यस्यां सीतामुखविधुविशत्चारुचक्षुश्चकोरो
नामन्येऽहं सुरपतिपुरीं लब्धहर्षस्तृणाय।।२२८।।

गुञ्जन–पयस्विनी के उसी उत्तर तट पर कोल किरात के वेश में आए हुए देवताओं द्वारा पत्तों, तृणों दलों और पुष्पों से बनाई हुई मेरी उस पर्णशाला को देखना जिसमें सीता जी के मुखचंद्र का नेत्र चकोर मैं प्रसन्न होकर इन्द्र की पुरी को भी तिनके के समान नहीं मानता था।

गाहेथा स्त्वं मधुकर पयस्विन्यमोघार्थनाम्नीम्
नित्यं द्व्यर्थोल्लसित पयसं सन्नदीशां नदीष्णः।
वर्षे वर्षे मयि शिशुतनौ वत्सलत्वाद्यया भोः
मात्रे वाद्याप्यहह विशदा स्नूयते दुग्धधारा।।२२९।।

गुञ्जन–हे नदी स्नान में निपुण भ्रमर! तुम श्रेष्ठ नदियों की ईश्वरी द्व्यर्थक अर्थात् जल और दूध अर्थवाली पय से सुशोभित अमोघार्थ नाम वाली पयस्विनी नदी में अवश्य अवगाहन करना। जो पय अर्थात् जलमय होकर भी प्रत्येक वर्ष मुझे बालक स्वरूप में देखकर मुझमें वात्सल्य का अतिरेक होने के कारण माँ की भाँति आज भी पय अर्थात् दूध की धारा बहा देती है। अतः पयस्विनी में प्रयुक्त पयस् शब्द के दूध और जल ये दोनों अर्थ सत्य हो गए हैं।

प्रीत्या पश्ये रथवर तटे पर्णशाला द्वयं मे
कोलाकारै रचितममरैरुत्तरे दुग्धधुन्याः।
यस्मिन् सीता मगधतनयासूनुसद्ध्र्यङ्सलासो
लब्धावासः शतशतमहं शक्रनाम्नां विजिग्ये।।२३०।।

गुञ्जन–हे मित्र! तुम एक बार फिर प्रीतिपूर्वक पयस्विनी जी के श्रेष्ठ उत्तर तट पर कोल भिल्ल के रूप में आए हुए देवताओं द्वारा रचित मेरी दोनों पर्णशालाएँ देख लेना। जिनमें निवास पाकर सीता जी एवं लक्ष्मण के साथ उल्लसित हुए मैंने करोड़ों–करोड़ों इन्द्रों को प्रसन्नता से जीत लिया था। अर्थात् जो सुख करोड़ों इन्द्रों को नहीं मिल सकता वह सुख मुझे सीता लक्ष्मण के साथ पर्णशाला में मिल गया।

पश्य भ्राम्यन् भ्रमर भगवद् भ्रामरी भ्राममुच्चैः
शालामेकां सुललितलघुं ब्रह्मविद्यामिवाद्याम्।
यस्यामावां सृतचिदचितौ कार्यहेतू विशिष्टा-
द्वैतात्मानौ ससुखमुषितौ दम्पती ब्रह्मभूतौ।।२३१।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! वैष्णवी माया को भी अत्यन्त भ्रमाते हुए तुम स्वयं भ्रमण करते करते वेदविहित ब्रह्मविद्या की भाँति मेरी अद्वितीय अत्यन्त छोटी पर्णशाला को देखना। जिसमें चित् जीव और अचित् माया को विशेषण के रूप में स्वीकारते हुए सुखपूर्वक निवास करते हुए हम दोनों दम्पती सीता और राम विशिष्टाद्वैत स्वरूप से कार्यकारण ब्रह्मरूप में अनादिकाल से विराजमान हो रहे हैं। अर्थात् सीताजी कार्य ब्रह्म है और मैं कारण ब्रह्म हूँ। दोनों ही चित् जीव, अचित् प्रकृति इन दोनों विशेषणों से विशिष्ट हैं। अतः हम दोनों चिदचिद् विशिष्ट सीतारामरूप कार्यकारण ब्रह्म का अद्वैत हैं। यही है विशिष्टाद्वैत।

तत्रैवान्यां सकिसलतृणां पर्णशालां विशालां
पश्यत्त्रय्याः प्रतिकृतिमिव प्रत्तदीर्घावकाशाम्।
यस्यां सीता स्वनुजसहितं मां मुनीन्द्रा इवेन्द्रं
स्वासीस्तोयैः ससुतदयितं नित्यमेवाभ्यसिञ्चन्।।२३२।।

गुञ्जन–वही पयस्विनी के उत्तरी तट पर पल्लवों और तृणों से युक्त मेरी विशाल वेदत्रयी प्रतिकृति जैसी दीर्घ अवकाश से युक्त पर्णशाला देखोगे। जिसमें सीता जी एवं श्रेष्ठ अनुज लक्ष्मण के साथ आसीन मुझ राम को मुनिगण शची और जयन्त के समान वर्तमान, इन्द्र के समान अपने आशीर्वादपूर्णजलों से नित्य अभिषिक्त किया करते थे।

तस्या आराद् बहिरथ सखे दृश्यतां यज्ञवेदी
भौमी भास्वद् विभवरचिता प्रोज्ज्वलज्जातवेदाः।

यस्यां सीरध्वजकुलजया वामभागस्थयाहं
नित्यं प्रातर्विधिवदनघं वह्निहोत्रं स्म जुह्वे।।२३३।।

गुञ्जन-हे मित्र! मेरी उस कुटी के बाहर निकट ही भूमिनन्दिनी सीता जी के देदीप्यमान विभव से रची हुई जाज्वल्यमान अग्निदेव से युक्त यज्ञवेदी के दर्शन करना। जिसमें मैं प्रतिदिन वामभाग में स्थित सीता जी के साथ निष्पाप अग्निहोत्र हवन किया करता था।

भूयस्तत्राघटितघटने रम्यतां रामघट्टे
मन्दाकिन्या कटक इव यो नित्यमाभाति भासा।
यत्रा सीनान्मधुप तुलसीदासतोऽहं ग्रहीता-
स्म्याविर्भूयावनिपतिशिशुश्चन्दनं प्रेमगृह्य:।।२३४।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! फिर तुम अघटित घटना वाले राम घाट पर ही रम जाना। जो अपने प्रकाश से मन्दाकिनी जी के कंकण की भाँति निरन्तर सुशोभित रहता है। जिस राम घाट पर बैठे हुए आगामी कलिकाल में तुलसीदास नामक संत से राजकुमार रूप में प्रगट होकर मैं चन्दन ग्रहण करूँगा। क्योंकि मैं प्रेम का पक्षधर हूँ।

तस्मिन् क्लान्त: कुधरगहने वर्त्मनि त्वं षडङ्घ्रे
गच्छन्पूर्वं त्वरितगतिको रामघट्टादपूर्वम्।
पीयस्वाप: शिशिरसुधिता: पार्वतेऽपां प्रपाते
सद्वातित्वात् सपदि हनुमद्धारया ख्यास्यतेय:।।२३५।।

गुञ्जन-हे षट्पद! पर्वतों के कारण गहन उस वन्यमार्ग में थक जाने के कारण रामघाट से पूर्व की ओर अपूर्वपथ में शीघ्रगति से जाते हुए तुम एक पर्वतीय प्रपात में शीतल और अमृत जैसा जल पी लेना। जो भविष्य में वायुपुत्र हनुमान जी की स्थिति के कारण शीघ्र ही हनुमद्धारा नाम से विख्यात हो जाएगा।

तस्मात् प्रत्यङ् सुभग तुलसीपीठमेवेहि धीमन्
मन्दं मन्दं मलयमरुता मामदो माद्यमानः।
मन्दाकिन्या विमलपुलिने लब्धनित्यप्रतिष्ठं
आस्माकीनाप्रतिमप्रतिमामाधुरीधुर्यनिष्ठम् ।।२३६।।

गुञ्जन–वहाँ हनुमद्धारा से पश्चिम की ओर मन्दाकिनी जी के विमल तट पर नित्यप्रतिष्ठा प्राप्त हमारी अर्थात् श्रीराम लक्ष्मण सीता जी की अद्वितीय तीन प्रतिमाओं की माधुरीधुरीण वैभव में निष्ठा रखने वाले तुलसीपीठ में मकरन्द लक्ष्मी से उन्मत्त हुए तुम बुद्धिमान् भ्रमर! धीरे–धीरे मलयज समीर से प्रसादित होते हुए अवश्य जाना।

यस्मिन् सीता विविधतुलसीवृक्षकाँश्चित्रकूटे
संरोप्यार्द्रत् सुरसरिदृणैर्हार्दकुम्भाधिवासैः।
प्रीत्या पुष्णात्स्वतनयसमान् दिव्यवात्सल्यवर्षा
तेनख्यातस्त्रिभुवि तुलसीपीठनाम्नायमद्रिः।।२३७।।

गुञ्जन–जिस चित्रकूट में दिव्य वात्सल्य की वर्षा करने वाली श्रीसीता जी ने अनेक तुलसी बिरबों को लगाकर अपने वक्षोरुह जैसे घड़ों में लाए हुए मंदाकिनी के जलों से पुत्रों के समान सींचा था। इसी कारण यह पर्वत तीनों लोकों में तुलसीपीठ नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पित्रादेशं वहति शिरसा लक्ष्मण श्रीसमेते
मय्यायाते मुनिपटधरे काननं चैत्रकूटम्।
अत्रैवाभून्मदवनिसुता मातृसंवित्प्रकर्षो
यन्नाद्यापि त्यजति करुणां हृद्विहीनो न लोकः।।२३८।।

गुञ्जन–पिता जी के आदेश को शिर पर धारण करके, लक्ष्मण एवं सीता के साथ वल्कलधारी मुझ राम के चित्रकूट के वन में आ जाने पर इसी तुलसीपीठ के परिसर में मेरी माँ कौसल्या एवं सुमित्रा तथा सीताजी की

माँ सुनयना का लोकोत्तर संवाद प्रस्तुत हुआ था। यह परिसर आज तक उस करुणा को नहीं छोड़ पाया। क्योंकि यह मनुष्यलोक हृदयहीन नहीं है।

दोषाद्यापि प्रशमित रवे श्रूयते श्रीसुमित्रा-
सूनोश्चापध्वनि रविरतो व्योमगङ्गातटेषु।
हिक्का शब्दो भरत वदनान्निसृतोऽद्यापि नृणां
शान्त स्वान्तं त्वमिव तरुजं यत्सपत्राकरोति।।२३९।।

गुञ्जन-हे मित्र! आज भी रात्रि में कोलाहल शान्त होने जाने पर मंदाकिनी के तटों पर सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण के धनुष का टंकार निरन्तर सुना जाता है और इस समय भी एकान्त में भरत के मुख से निकला हुआ सिसकी भरा क्रन्दन मनुष्यों के शान्त मन को उसी प्रकार विरह के बाणों से बींध देता है जैसे तुम लकड़ी को बींध देते हो।

शोषं नेतान्यहह भरत व्याकुलाक्ष्युद्भवानि
क्रन्दोद्वेगोद्धतगतितया निर्झराण्यद्रिमौलौ।
स्मारं स्मारं मदनुजशुगुद्भूत वैक्लव्यभावं
रन्ध्रव्याजाद् दलितहृदया क्रन्दति क्ष्मेव साक्षात्।।२४०।।

गुञ्जन-अहह! क्रन्दन के वेश से उद्धत होने के कारण आज भी हमारे भैया भरत के व्याकुल नेत्रों से उत्पन्न चित्रकूट पर्वत के शिखर पर आँसू के झरने नहीं सूखे हैं। और मेरे अनुज के शोक से उत्पन्न व्याकुली भाव को स्मरण कर-करके साक्षात् पृथ्वी दरारों के बहाने अपने हृदय को फाड़ फाड़कर मानों क्रन्दन कर रही है।

तत्रावाच्यां दिशि विलसितां जानकीपादपद्म-
स्वङ्कस्वाङ्कामवनिमवनिं पद्मरागावलीनाम्।
पश्यन् प्रीतः किल शुचिसुता कौतुकाद्यां महीं तां
माभूर्भ्रान्तः स्थलकमलिनी प्रत्यले पादमपेयः।।२४१।।

गुञ्जन–उस तुलसीपीठ से दक्षिण दिशा में जानकी जी के चरण कमलों के सुन्दर चिह्नों से सुष्ठुरूपेण चिह्नित पद्मराग समूहों की जन्मभूमि जैसी पवित्र बेटी सीता जी के मंगल से युक्त जगत् की रक्षा करने वाली उस पृथ्वी को देखकर प्रसन्न हुए तुम कमल रस को पीने का अभ्यासी होने के कारण कहीं स्थल कमलिनी की भ्रान्ति मत कर बैठना।

भ्राम्यन् भूयो भ्रमर पवितो जानकीकुण्ड नाम्नीं
मन्दाकिन्या विमलसलिलैः क्षालितां सुस्थलीं ताम्।
पश्यन्नानात्वमिव जननी क्रोडकेलिं प्रियाया
मा शंकिष्ठा हरण विषये नो मृदुस्तर्क चुञ्चुः।।२४२।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जानकीकुण्ड नामक मन्दाकिनी के विमल जल से क्षालित उस सुन्दर स्थली के चारों ओर भ्रमण करते हुए प्राणप्रिया सीता जी की माँ पृथ्वी की गोद में क्रीड़ा जैसा दृश्य देखकर कहीं उनके हरण के विषय में संदेह मत कर बैठना क्योंकि कोमल प्रकृति का व्यक्ति तर्क नहीं कर पाता। तुम सोच सकते हो, जब सीता जी के इतने चरण चिह्न चित्रकूट में हैं तो वे कदाचित् राघव को छोड़कर यहाँ छुप गई होंगीं पर ऐसा नहीं है।

पश्यन् प्रेम्णोदधि रिपुपथे नोत्पतन्पद्म सद्मन्
मध्ये क्लृप्तां स्फटिक शिलया मद् विहारैकभूमिम्।
यत्राकार्षञ्च नवनवतिं रासमुद्यद्विलासम्
सार्धं सार्धं जनकसुतयैवैकपत्नीव्रतोऽहम्।।२४३।।

गुञ्जन–हे कमलनिवासी! प्रेम से चित्रकूट के दर्शन करते हुए और समुद्रशत्रु अगस्त्य ज़ी के मार्ग अर्थात् दक्षिण से उड़कर जाते हुए स्फटिक शिला द्वारा बनाई हुई मध्य में मेरी विहारलीला की एक मात्र भूमि के दर्शन करोगे। जहाँ एक नारीव्रत मैंने केवल जनकनन्दिनीसीता के साथ अनेक प्रकार के प्रकट विलासों से युक्त साढ़े निन्यानवे महारास किये थे।

यत्र स्थित्वा स्फटिकशिलया सुप्रतिच्छायितायाः
स्वस्या दृष्ट्वा प्रतिकृतिशतं जातसापत्न्यशंका।
सासूयंमामहनवनिजा वामचक्षुस्सरौघैः
प्राप्या स्वस्तोटजमगदराट् प्रत्ययो मानिनीनाम्।।२४४।।

गुञ्जन–जहाँ स्थित होकर स्फटिक शिला द्वारा अपनी सैंकड़ों प्रतिकृतियाँ देखकर सौतों की आशंका करती हुई भूमिनन्दिनी सीता जी ने आक्षेपपूर्वक मुझ पर वामनयन के अनेक बाणों से प्रहार किया था। फिर कुटी में आकर मेरे साथ स्वयं को अकेली पाकर आश्वस्त हो गई थीं। क्योंकि विश्वास ही माननियों की बहुत बड़ी औषधि है।

यत्रासीनो रसिकरमणश्चारु शृंगारचुञ्चु-
र्नाना पुष्पैर्निजकरचितैर्भूषयन् भूमिपुत्रीम्।
ऐन्द्रं सीताचरणदरणं दण्डयन् ब्रह्म शीर्ष्णा
लोके नारीजनविगणना पापपाकं समाख्यम्।।२४५।।

गुञ्जन–स्फटिक शिला पर बैठकर सुन्दर शृंगार में निपुण रसिकरमण मैंने अपने हाथ से चुने हुए नाना प्रकार के पुष्पों से भूमिनन्दिनी सीता जी को सजाते हुए सीता जी के चरण को विदीर्ण करने वाले इन्द्रपुत्र जयन्त को ब्रह्मास्त्र से दण्डित करते हुए लोक में नारी जन के अपमान के पापपरिणाम की पूर्ण व्याख्या की थी।

गत्वा गत्या विजितमरुता पर्वतः कामदोषौ
नत्वा मूर्ध्ना मधुकर परिक्रम्य तामर्थसिध्यै।
कामानिष्टान् किल निजरजस्सेवकेभ्यो ददानो
जैत्रो जाग्रन् मणिरिव गिरिर्भारते भाति दैवः।।२४६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! वायु को जीतने वाली अपनी गति से जाकर शिर से प्रणाम करके अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए कामदपर्वत (कामतानाथ)

की परिक्रमा कर लेना। अपनी धूलि का सेवन करने वालों को अभीष्ट कामफल देता हुआ यह विजयी पर्वत चिन्तामणि के समान भारतवर्ष में जाग्रतरूप में सुशोभित हो रहा है।

कं ब्रह्माणं मधुमथनमं मं महेशं नियच्छन्
यच्छन् नृभ्यो मदमलपदाम्भोजसेवैककामम्।
घ्नन्वैकामं शुभगुणहरं शात्रवं सज्जनानाम्
भूतार्थे नोल्लसति ललितः कामदः कामदेन।।२४७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! अब कामद शब्द के तीन व्युत्पत्यर्थों को सुनो। क अर्थात् ब्रह्मा, अ अर्थात् विष्णु, म अर्थात् महेश। इन तीनों का नियन्त्रण करते हुए साधकों को मेरे चरणकमल की सेवा अभिलाषा रूप कामना प्रदान करते हुए शुभ गुणों को हरने वाले, सज्जनों के शत्रु काम को नष्ट करते हुए यह ललित कामदेश्वर पर्वत वास्तविक पूर्वोक्त तीन अर्थों के साथ विराजमान हो रहा है।

शैलाधीशं धृतमति परिक्रामतो दक्षहस्ते
स्थानं द्रक्ष्यस्यघघनरविं पर्वतोपत्यकायाम्।
यत्राश्लिष्टः स्वपुरिभरतश्चित्रकूटाद् यियासु-
र्मामप्यश्रैः सगिरिरुदितैर्द्रावयामास भूमिम्।।२४८।।

गुञ्जन–स्थिर बुद्धि से कामदेश्वर की परिक्रमा करते हुए दाहिने हाथ पर पर्वत की उपत्यका में पापान्धकार के लिए सूर्य के समान तुम वह स्थान देखोगे जहाँ अयोध्या जाते हुए भरत ने मुझसे अलग होते हुए अपने रुदन के आँसुओं से पर्वतसहित मुझको और उस पाषाण भूमि को भी पिघला दिया था।

किञ्चिद् दूरं दुरितशमनं लाक्ष्मणं पर्वतं त्वम्
गत्वा पश्य प्रकटितमले पुण्यपूगञ्च पुंसाम्।
यस्मिस्तिष्ठन्मणिमिवफणीबद्धवीराऽऽसनो माम्
बन्धुर्बन्धुं निशिधृतधनुर्त्रायतेस्मापनिद्रः।।२४९।।

गुञ्जन–हे भ्रमर ! भरत मिलाप स्थान से कुछ दूर और जाकर प्राणियों के प्रकट हुए पुण्य पुञ्ज की भाँति उस लक्ष्मण पहाड़ी को देखना जिस पर वीरासन से विराजकर रात्रि में धनुर्धारी मेरे भइया लक्ष्मण निद्रा छोड़कर उसी प्रकार मेरी रक्षा करते थे जैसे सर्प मणि की रक्षा करता है।

मुख्यद्वारं तदनुभवता छन्दतश्छन्दगामिन्
गत्वा पूर्वं गिरिवरमणिः पूज्यतामिष्टसिध्यै।
शालग्रामान् त्वमधिवदनं कामदस्यार्च पञ्च
श्रेयः सूते ध्रुवमथ कृता श्रद्धया पूज्यपूजा।।२५०।।

गुञ्जन–हे स्वेच्छागामी मनोभृङ्ग ! लक्ष्मण पहाड़ी के पश्चात् तुम अपनी इच्छा से कामतानाथ के पूर्वी मुखारविन्द वाले मुख्यद्वार जाकर अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए कामदेश्वर भगवान् की पूजा करना। इसके अनन्तर कामदभगवान् के पूर्व दिशा में वर्तमान मुख्य मुखारविन्द में विराज रही पाँच शालग्राम शिलाओं की अवश्य पूजा करना। क्योंकि श्रद्धापूर्वक की हुई पूज्यों की पूजा उपनिषद् प्रसिद्ध श्रेयस को जन्म देती है।

भ्राम्यन् भ्रातः सरससरयूधारया सिच्यमानो
दृष्ट्वा शम्भुं गजमदहरं गुप्तगोदावरीं च।
वाञ्छन् द्रष्टुं जनकतनयां चानसूयोऽनसूयां
नत्वागस्त्याचरितहरितांपूर्वभृङ्ग प्रयाहि।।२५१।।

गुञ्जन–हे भैया! अपूर्व भृंग अर्थात् अलौकिक भ्रमर या पूर्वभृंग सर्वप्रथम मेरे मन रूप भ्रमर! भृंगदूतम् ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध के प्रतिपाद्य पूर्वभृंग! इस प्रकार भ्रमण करते हुए रसमय सरयूधारा के जल से सिञ्चित होते हुए गजमदहर गजासुर के मद को नष्ट करने वाले पौराणिक शिवलिङ्ग मत्तगजेन्द्रनाथ (मदगञ्जननाथ) भगवान् शंकर के तथा गुप्तगोदावरी गुफा के दर्शन करके सीता जी के दर्शनों के लिए इच्छुक, निन्दारहितभाव वाले तुम सतीशिरोमणि

माताअनसूया को प्रणाम करके पुनः महर्षि अगस्त्य द्वारा आदरपूर्वक सेवित दक्षिणदिशा के मार्ग से लंका की ओर जाना।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामिश्रीरामभद्राचार्यप्रणीत भृंगदूतम् नामक दूतकाव्य में पूर्वभृंग नामक प्रथम विभाग की जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी द्वारा हिन्दी में की हुई 'गुञ्जन' नामक व्याख्या सम्पन्न हुई।

दूतकाव्य अतिनव्य रच्यो श्रित संस्कृत भाषा।
मन्दाक्रान्ता वृत्त भक्ति रघुवर परिभाषा।।
भृंगदूत अभिराम खण्ड प्रथमहिं मन भाई।
गुंजन टीका राष्ट्रगिरा करि जतन बनाई।।
निजविरचित रघुपतिकृपा भृंगदूत व्याख्या विशद।
रामभद्र आचार्य कृत होइहिं पंडितजन सुखद।।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

भृङ्गदूतं का पूर्वभाग पूर्ण हुआ।

अथ भृङ्गदूते उत्तरभृङ्गः

सीताशोकतृषिखजलदं वेगसंविग्नवातं
रातं रात्रा निखिलजगतां शान्तये संवृणेऽहम्।
रामो रामामवितुमरितो जीवजीवातुवाक्यैः
संदेशार्थैः पुनरपि मनोभृङ्ग दूतोत्तरे त्वाम्।।१।।

गुञ्जन–उत्तर भृंग का प्रारंभ करते हुए प्रभु श्रीराम अपने मनोभृंग से कह रहे हैं कि हे मनोभृंग! सम्पूर्ण लोकों की शान्ति के लिए, सबको सब कुछ देने वाले मुझ परमात्मा राम द्वारा मनरहित होकर भी लीलारंग मंच पर मनोमय भ्रमर के रूप में प्रस्तुत किए हुए, अपने वेग से वायु को भी उद्विग्न करने वाले, सीता जी के शोकरूप अग्नि को बुझाने के लिए बादल के समान तुमको जीवों की औषधिरूप दिव्यसंदेश के अर्थों से युक्त, तुम्हारे माध्यम से कहे जाने वाले अपने वाक्यों से मरणासन्न रमणी सीता जी को शत्रु से रक्षित करने के लिए मैं राम फिर से भृंगदूत के उत्तरभृंग में दूत की भूमिका हेतु सम्यक् वर्णन कर रहा हूँ।

जानानस्त्वां परिचितचरं भूमिकन्यामुखाब्ज-
स्वामोदेन प्रगुणमधुना सीधुना षड्पदेशम्।
दातुं लाभं पुनरपि च तं प्रेषये तात तस्यै
निर्विण्णः को भवति रसिकः सोमतः पीतपूर्वात्।।२।।

गुञ्जन–हे तात! प्रचुरमधु एवं पराग युक्त आसव तथा आसव से सम्बद्ध भूमिनन्दिनी सीता जी के मुख कमल की सुंदर सुरभि से पूर्व परिचित जानते हुए फिर से वही लाभ देने के लिए तुम्हें सीता जी के पास भेज रहा हूँ। क्योंकि कौन ऐसा रसिक होगा जो प्रथम पान किए हुए अमृत से विरक्त हो जाएगा।

आमन्त्र्यात्रिं त्रिसुरजनकं प्रस्थितश्चित्रकूटान्
माभूर्विग्नः पथि पथिकराट् संस्मरन् पूर्वसंगान्।
सेवाकर्मण्यनिशमनैघाः स्वामिभिस्संन्नियुक्ताः
संदृश्यन्ते नहिस्सुकृतिनः कृत्यतः स्वात् प्रमत्ताः।।३।।

गुञ्जन–हे पथिकों के राजा भ्रमर! ब्रह्मा विष्णु शंकर के पिता अत्रि से अनुज्ञा लेकर चित्रकूट से दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हुए मार्ग में पूर्व प्रेम संबंधों का स्मरण करते हुए उद्‌विग्न मत हो जाना। क्योंकि स्वामियों द्वारा विशिष्ट सेवाकर्म में रात–दिन के लिए नियुक्त किए हुए सुकृतिजन अपने कर्तव्य से प्रमाद करते हुए नहीं देखे जाते।

दृष्ट्वा गर्तं भवनिधिमिव ध्वान्तसद्मात्यगाधम्
घोराकारं पथिक विजने मागमो भीतिमुच्चैः।
सोऽयं सीताव्यसनकरणं क्षेप्तुमार्तं विराधम्
मद्बाणौघैर्व्रणितवपुषं लक्ष्मणेन व्यखानि।।४।।

गुञ्जन–हे पथिक! विजन वन में घोर भ्रवसागर की भाँति अंधकार के भवन स्वरूप घोर आकार वाले विशाल गर्त को देखकर तुम अत्यन्त भयभीत मत होना। यह वही गर्त है जिसको दण्डक वन जाते समय सीता जी को भयभीत करने वाले मेरे बाणसमूहों से घायल शरीर वाले आर्त विराधनामक राक्षसं को नीचे गाड़ने के लिए लक्ष्मण ने खोदा था।

यो वै गर्तं खनति कुटिलः कोऽपि पापी परार्थम्
तस्मै धात्रा वहमति भयं खन्यते पूर्वमेव।
तत्सिद्धान्तादखिलजगदाजट्यनिर्माणकारी
स्वभ्रे हत्वा विशिखनिकरैः पातितो मे विराधः।।५।।

गुञ्जन–जो कोई कुटिल पापी दूसरे के लिए गड्ढा खोदता है उसके लिए भगवान् पहले ही विशाल गड्ढा खोदे रहते हैं। इसी सिद्धान्त से सारे

संसार के लिए गड्ढे का निर्माण करने वाला विराध राक्षस भयंकर बाणों से मारकर मेरे द्वारा गड्ढे में डाल दिया गया है।

तस्माद् गच्छञ्छमनहरिता स्वाश्रमं शारभङ्गम्
द्रष्टासि त्वं धृततनुतपस्तापसानां क्षितीन्द्रम्।
भङ्गोऽत्राभून् मधुपतिसखप्रेषितानां शराणाम्
तेन ख्यातो मुनिरथ शरप्रोक्तिपूर्वो हि भङ्गः।।६।।

गुञ्जन–उस विराध कुण्ड से यम की दिशा अर्थात् दक्षिण की ओर जाते हुए तुम शारभंग आश्रम में शरीर धारण किए हुए तप को ही तपस्वियों के राजा शरभंग के रूप में देखोगे। वसन्त के मित्र कामदेव द्वारा फेंके हुए बाणों का यहाँ भंग हो गया था। अर्थात् महर्षि पर कामदेव के बाण निष्प्रभावी हो गए थे। इसीलिए वे शरभंग नाम से विख्यात हो गए।

विशेष–१. शमनो=यमराजः। तस्य हरित् दिशा तया इति शमनहरिता

२. शराणां भङ्गः यस्मिन् स शरभङ्गः।

जित्वा पुण्यैर्जटिलतपसैवोर्जितं ब्रह्मलोकं
यान्यानेन प्रथितमुखतो रम्यरामायणे यः।
श्रुत्वा यान्तं वनमभि च मां भूमिमेवापपात
स्वर्गं त्यक्त्वा सगुणरसिकः श्रेयसे मत्प्रतीक्षा।।७।।

गुञ्जन–जो महर्षि शरभंग अपने पुण्यों एवं जटिल तप से तेजोमय ब्रह्मलोक को जीतकर वहाँ विमान से जाते हुए सिद्धजनों के मुख से सुन्दर रामायणी कथा में मुझे वन में आता हुआ सुनकर तुरंत भूमि पर कूद पड़े थे। सगुणरसिक होने के कारण स्वर्गलोक छोड़कर उन्होंने ऐसा किया। क्योंकि मेरी प्रतीक्षा कल्याणकारिणी होती है।

तत्र स्नायास्त्वमपि तृणकैराविलेशारभङ्गे
मायावादैरिव सबलिते नित्यकल्याणधाम्नि।

ब्रह्मण्यन्त स्फुरति सुगुणे निर्मले निर्विकारे
गङ्गामुख्या यदथसरितः शुद्धभक्त्या नमन्ति।।८।।

गुञ्जन–हे मित्र! मायावाद के द्वारा सामान्य रूप से सबलित कहे जाने वाले परन्तु वस्तुतः अत्यन्त निर्मल निर्विकार नित्य कल्याणधाम अन्तर में स्फुरित हुए निरस्त समस्तहेयगुणप्रत्यनीक कल्याणगुणगणनिलय सगुण ब्रह्म की भाँति सामान्यतः घास और धूलि से मलिन दिखने वाले परन्तु अन्दर प्रवेश करने पर अत्यन्त निर्मल शरभंग कुण्ड पर अवश्य स्नान करना। जिसको गंगा आदि दिव्य नदियाँ भी भक्ति पूर्वक प्रणाम करती हैं।

विशेष–कहा भी जाता है 'न सौ गंगा न एक शरभङ्गा'।

तस्मादित्वा कलशजपथेनास्थिकूटं मुनीनाम्
श्रद्धापूर्वं सरसिजरसैस्तर्पयेथाः षडङ्घ्रे।
यद् दृष्ट्वाहं प्रशमजलधिः प्रोच्छलद्रुद्तरंगः
कर्तुं भूमिं क्षपितकुणपां प्रत्त जाने जनौघे।।९।।

गुञ्जन–हे छः चरणों वाले भ्रमर! शरभंग आश्रम से दक्षिण के मार्ग से जाकर मुनियों की हड्डियों का पर्वत देखोगे। जिन्हें पहले राक्षसों ने खा डाला है। और तुम भी कमल के मकरन्द से उस अस्थि कूट का तर्पण कर लेना। जिसे निहारकर शान्ति का सागर होकर भी मैं क्रोध की तरंगों से उच्छलित हो उठा था और मुनिजनों के बीच पृथ्वी को निशाचरविहीन करने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

क्रन्दन्तीनां निशिचरकरैर्भक्षितप्राणपानाम्
लुण्ठन्तीनां ब्रजभुवि सखे ब्राह्मणीनां समक्षम्।
त्वं वन्दित्वा श्रवणपुटयोर्वाचिकं वाचयेर्मे
स्वाश्वासोऽपि प्रभवति नृणां प्राणरोधाय कामम्।।१०।।

गुञ्जन–राक्षसों द्वारा जिनके प्राणपतियों का भक्षण कर लिया गया है

ऐसी चिल्लाती हुई एवं गोशालाओं में लोटती हुई ब्राह्मणियों के समक्ष वन्दन करते हुए तुम उनके कानों में मेरा संदेश कह देना। क्योंकि आसन्न मरण व्यक्ति की प्राणरक्षा के लिए सुन्दर आश्वासन ही समर्थ होता है।

बाणार्कोस्त्रैर्निशिचरतमस्तोममाजौ निरस्यन्
व्यस्यन्व्याप्त प्रतिभय भवाभावभावाप्त दोषान्।
रामो दोषाचरपतिशिरश्श्रेणिभिर्भूतनाथ-
स्त्रग्व्यापार प्रथितकलया निर्वृतो वन्दितावः।।११।।

गुञ्जन-हे ब्राह्मणविधवाओ! बाणरूप सूर्यों की किरणों से राक्षस रूप अन्धकार समूह को युद्ध में निरस्त करते हुए तथा भय से व्याप्त संसार के अभाव को एवं भावों में आए हुए दोषों को नष्ट करते हुए राक्षसराज रावण के शिरों की श्रेणियों से भगवान् शंकर की मुण्डमाला के रचना व्यापार की कला से प्रसन्न हुआ दशरथपुत्र राम शीघ्र ही आपको वन्दन करेगा।

द्रष्टासि द्राङ् मुनिकुलपतिं ब्रह्मचर्यैकनिष्ठं
तेजीयांसं तपनतपसा तीक्ष्णतीक्ष्णं सुतीक्ष्णम्।
यत्संश्लेषात्पुलकिततनुः प्रेमपाथोधिमग्न-
स्तापिच्छीयां सकनककलां काञ्चिदाभां भजेस्म।।१२।।

गुञ्जन-इसके पश्चात् तुम शीघ्र ही मुनियों के कुलपति, ब्रह्मचर्य में एक मात्र निष्ठा रखने वाले, परमतेजस्वी एवं सूर्य जैसे तप से अत्यन्त तीक्ष्ण स्वभाव वाले महर्षि सुतीक्ष्ण के दर्शन करोगे। जिनके आलिंगन से पुलकित हुआ मैं प्रेम सागर में मग्न होकर स्वर्ण की कला के साथ तमाल की एक अपूर्व शोभा को प्राप्त हो गया था।

भूयोऽगस्त्यं प्रणम परमं दैवतं वै धराया-
स्तेजोराशिं तपनतपसं जग्धवातापिवीर्यम्।

यश्चादित्यं विपुलशिखरैश्छादयन्तञ्च विन्ध्यम्
योगीवोच्चैरयतमनशं वृत्तिजातं रुरोध।।१३।।

गुञ्जन–फिर तुम पृथ्वी के परम देवता, तेजों की राशि, सूर्य के समान तप वाले, वातापि के पराक्रम को भक्षण करने वाले महर्षि अगस्त्य जी को प्रणाम करना। जिन्होंने विशाल शिखरों से सूर्यनारायण को ढकते हुए, बढ़ते हुए विन्ध्याचल को उसी प्रकार रोक दिया था जिस प्रकार मन को असंयत करने वाली मनोवृत्तियों को योगी रोक देता है।

यः पाथोधेः सलिलमखिलं पक्षिकारुण्यकोपात्
पातुं पाताकृत कुतकतो हस्तगोकर्णतीर्थे।
लेखाधीशैस्तुत इजमदं यश्च धूलीचकार
श्रेयो लोकः कथमनुभवेत् सत्तिरस्कारकारी।।१४।।

गुञ्जन–सामान्य टिट्टिभ पक्षी पर करुणा और समुद्र पर उमड़े क्रोध के कारण सबकी रक्षा करने वाले जिन अगस्त्य जी ने अपने हाथ के गोकर्ण तीर्थ में सम्पूर्ण सागर के जल को खेल–खेल में भर लिया और पी गए। सभी देवताओं ने जिसकी स्तुति की और कामसंबंधी अहंकार को जिन्होंने धूलि में मिला दिया। क्योंकि सन्तों का तिरस्कार करके जीवलोक कभी सुखी कैसे रह सकता है ?

येन प्रत्तं समहतगुणं शार्ङ्गमाजौ धनुर्मे
बाणोऽमोघो वनजजहितोऽक्षय्यतूणी च खड्गः।
चञ्चच्चर्मा खलवधकृते यौगपद्यं दिदृक्षुः
काले राष्ट्रव्यसनहृदये संगमं क्रान्तिशान्त्योः।।१५।।

गुञ्जन–जिन अगस्त्य जी के द्वारा मेरा युद्ध में अमोघ प्रत्यञ्चावाला शार्ङ्ग धनुष एवं ब्रह्माजी द्वारा प्रेषित अमोघ बाण एवं अक्षय दो तूणीर तथा राक्षसों के बध के लिए लपलपाती हुई ढाल से युक्त तलवार इसलिए दिए गए कि वे राष्ट्र की विपत्ति को दूर करने के लिए क्रान्ति तथा शान्ति इन दोनों

का समन्वय देखना चाहते थे।

आशीर्वादान्मुनिवरमुखात् पाद्मपाथेयपायम्
लब्ध्वा जग्ध्वा शुचिफलरसं स्वस्थचेताः प्रगच्छन्।
स्थानं द्रष्टास्यथ सुमहितं ग्रैध्रराजं जटायो-
र्यस्यायुर्मे लसदधिजटं तेन सार्थो जटायुः।।१६।।

गुञ्जन–हे मित्र! महर्षि के मुख से आशीर्वाद लेकर कमल का रस पीकर तथा अगस्त्य जी के यहाँ प्राप्त हुए सुन्दर फलों के रस का भक्षण करके स्वस्थचित्त होकर आगे बढ़ते हुए तुम मेरे पिता के मित्र गीधराज जटायु के स्थान के दर्शन करोगे। जिनकी आयु मेरी जटा में विराजमान हुई इसीलिए जटायु नाम सार्थक हो गया।

विशेष–जटायां आयुः यस्य स जटायुः।

तत् त्वं गत्वा मम तत सखाध्यासितं स्थानमीड्यं
श्रद्धातोयं वितर मधुलिड् स्वर्गिणे मेऽथ पित्रे।
यो मन्नेत्राम्बुरुहविगलद्बाष्पधाराभिषिक्तो
यातो लोकं हरिहरनुतं दुर्लभं त्यागिनः किम्।।१७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मेरे पिता के मित्र जटायु द्वारा पूर्व में निवास किए हुए उस दिव्य स्थान पर जाकर स्वर्गीय मेरे पिता को श्रद्धाञ्जलि अवश्य दे देना। जो मेरे नेत्र कमल से निकलती हुई अश्रुधारा में नहाकर, विष्णु और शंकर से भी प्रणम्य मेरे लोक को पधार गए। त्यागशील व्यक्ति के लिए इस संसार में क्या दुर्लभ है ?

गोदावर्या हिमघनवने स्नाहि विश्रामहेतो-
र्भूनन्दिन्या नलिनचरणस्पर्शतः पावितायाः।
सीतावक्षोरुहविघटना भग्नवीचिस्स्त्रजोवै
ब्रह्माणीश्रीकुधरतनया पूजिताया हितायाः।।१८।।

गुञ्जन–अनन्तर विश्राम के लिए भूमिनन्दिनी सीताजी के चरणकमल के स्पर्श से पवित्र तथा सीता जी के वक्षोरुहों के प्रहार से टूटी हुई तरंगमाला वाली, ब्रह्माणी लक्ष्मी एवं पार्वती जी से पूजित परम हितैषिणी गोदावरी जी के शीतल जल में स्नान करना।

गौतम्यास्त्वं पुलिननलिनीं भिक्षये भिक्षुरूपी
भैक्ष्यं पेयं मधुरमधुरं सारघं चार्घ्यहेतोः।
सीता भिक्षाक्षणपरिचिता शंकतां मा दशास्यं
त्वामप्येषा मधुपमबला प्रायशः संशयालुः।।१९।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! तुम भिक्षुक के रूप में गोदावरी की तटवर्तिनी कमलिनी से अर्घ्य के लिए और पीने के लिए भी मकरन्द की भिक्षा मांग लेना परन्तु सीताजी के पास रावण द्वारा माँगी गई भिक्षा के क्षणों से परिचित वह कमलिनी कहीं तुम्हारे प्रति रावण की शंका न कर बैठे। क्योंकि प्रायः नारी का स्वभाव संशयालु होता ही है।

स्नात्वा जप्त्वा दिवसमणये सारघार्घ्यं प्रदाय
प्रीतः प्रेयाः किल मम कुटीं संस्थितां पञ्चवट्याम्।
यस्यां सीता वदनवनजे सादरस्त्वत् सधर्मा
सन्ध्याकालं नसमगणयं पक्षिभिर्बोधितोऽपि।।२०।।

गुञ्जन–गोदावरी में स्नान करके ब्रह्मगायत्री का जप करके सूर्य नारायण को कमल रसका अर्घ्य देकर तुम प्रसन्नता पूर्वक पंचवटी में स्थित मेरी कुटी में जाना। जिसमें सीता जी के मुख कमल पर तुम्हारे ही समान लुब्ध हुआ तथा पक्षियों द्वारा बोधित हुआ भी मैं संन्ध्याकाल भी नहीं समझ पाया था।

निर्गच्छँस्त्वं बहिरथ सखे स्थानमालोकयेस्तत्
यस्मिँस्तिष्ठन्नवनितनया सल्लसद् वामभागः।

बिभ्रच्चापं निशितविशिखं दिव्य तूणीर युग्मम्
तापस्येप्य प्रतिमविभया कामकोटीर्विजिग्ये।।२१।।

गुञ्जन-हे मित्र! उस कुटी से बाहर निकलते हुए तुम वह स्थान देखना जिसमें निवास करते हुए सीता जी के द्वारा विभूषित वामभाग वाले मैंने धनुष, तीखेबाण और दो तरकस धारण करते हुए तपस्वी भाव में भी अद्वितीय कान्ति से करोड़ों कामों को जीत लिया था।

यस्मिन् व्रीड्यद्रतिशतरुचिं विश्व विश्वैकनारीम्
नारायण्या अपि बहुमतां सीरकेतोः सुपुत्रीम्।
जग्धुं सीतामिव विधुवधूं राहवी चाभियाता
मायायोषा कुणपभगिनी लक्ष्मणेन व्यरूपि।।२२।।

गुञ्जन-जिस स्थान में अनेक रतियों की शोभा को लज्जित करने वाली सम्पूर्ण विश्व की अद्वितीय नारी लक्ष्मी जी की भी पूज्या ऐसी जनकराज जी की पुत्री सीताजी को रोहिणी को राहु शक्ति की भाँति खाने दौड़ी हुई मायामयी युवती रावण की बहन शूर्पणखा को मैंने लक्ष्मण के द्वारा विरूपित कराया था।

सन्ध्याकाले मधुप वसतिं कञ्जमन्वेष्टुकामः
पश्येः काञ्चिद् गिरिवर गुहां पद्मिनी सद्ममञ्जुम्।
यस्यां रक्षः समर समये सौम्य सौमित्रि साह्या
सीता गुप्तोपनिषदि यथा ब्रह्मविद्या सबोधा।।२३।।

गुञ्जन-हे भ्रमर! सन्ध्याकाल में अपने निवास के लिए कमल की खोज करते हुए तुम कमलिनी के निवास से सुन्दर एक अद्भुत पर्वत गुफा देखना जिसमें चौदह हजार राक्षसों से युद्ध करते समय मेरे द्वारा उपनिषद् में छिपी हुई ज्ञान के सहित ब्रह्मविद्या की भाँति लक्ष्मण जी के सहित सीता जी गोपीनयतापूर्वक स्थापित कर दी गई थीं।

विश्रम्याले निशिवनरुहे प्रातरेव प्रबुद्धः
पश्येः प्रीतः पुनरपि कुटीं प्रेक्षणीयां मदीयाम्।
यस्या द्वारे जनकसुतया लालितायास्तुलस्याः
दिव्यामोदे जहति मधुपा नन्दनं गन्धगृह्याः।।२४।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस कमल में रात्रि विश्राम करके प्रातःकाल उठकर पुनः उसी मेरी दर्शनीय कुटी को देखना। जिसके द्वार पर सीता जी द्वारा लगाई हुई तुलसी की अलौकिक सुगंधि के निमित्त स्वर्ग के भ्रमर नन्दनवन को भी छोड़ देते हैं, क्योंकि वे सुगन्ध के पक्षपाती होते हैं।

पश्येः पार्णे हरिमनशनं पिञ्जरे बद्धमौनम्
कीरं धीरं शयितमिव तं विह्वलं नेत्रनीरम्।
यं श्रीर्नित्यं निजमिवसुतं दाडिमी बीजराजी-
भोजं भोजं मदनघगुणान् पाठयामास पाठ्यान्।।२५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मेरी कुटी में लटके हुए पत्ते के पिंजड़े में वर्तमान हरे वर्ण वाले कुछ भी भोजन न किए हुए चुपचाप सोए हुए से कीर एवं आँखों में आँसू भरे हुए उस तोते को देखना जिसको सीता जी अपने पुत्र की ही भाँति अनार के दाने खिला–खिलाकर नित्य ही प्राणिमात्र के पढ़ने योग्य मेरे निष्पाप गुणों को पढ़ाया करती थीं।

नो विस्मार्या क्वचिदपि चलच्चेतसा मित्रभार्या
श्रद्धाकार्या क्षणमपि सखे सारिका सन्निवार्या।
स्नेहाकार्या शुकपति सखी साम्प्रतं मूकभावं
पश्चात्तापं जड इव गता दुस्सहः सद्वियोगः।।२६।।

गुञ्जन–हे मित्र! मेरे मित्र की भार्या श्रद्धा से धारण करने योग्य एक क्षण भी जिसे चुप नहीं कराया जा सकता था, जो स्नेह से ही बुलाने योग्य है ऐसी श्रेष्ठ तोता की सखी सारिका (मैना) को कभी भी मत भुलाना। जो

इस समय पश्चात्ताप के कारण चुप होकर जड बन गई है। क्योंकि सज्जनों का वियोग दुःसह होता है।

पश्येः स्वर्द्रूद्भव सुमनसां वाटिकां वाटिकाप्ता
सीता यत्र प्रशमित रुजा पुष्प चायं चरन्ती।
लुब्धामाया कनकहरिणे प्राहिणोन्मां तमाप्तुम्
नूनं नारीं नयति निरयं नैर्ऋतिं भूरि लोभः।।२७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! इसके पश्चात् मेरे आश्रम में लगी हुई स्वर्गीय वृक्षों से उद्भूत पुष्पों वाली उस वाटिका को देखना जिस वाटिका में प्राप्त हुई पुष्प चुनती हुई सीता जी ने मायामय स्वर्णमृग पर आकर्षित होकर उसे प्राप्त करने के लिए मुझे भेज दिया था। वस्तुतः सीमा से अधिक लोभ नारी को नरक और मृत्यु के भी दर्शन करा देता है।

यं नो शम्भुर्न च वनजभूर्नर्षयो नैव सिद्धाः
शेकुर्द्रष्टुं क्षणमपि सखे निर्विकल्पे समाधौ।
सोऽहं मायामृगमनुसरन्धावमानःस्म खिद्ये
किं किं कृच्छ्रं ननु न लभते कामिनीचाटुकारः।।२८।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस मुझ परमात्मा राम को निर्विकल्प समाधि में भी एक क्षण भर भी शिव ब्रह्मा ऋषिगण और सिद्ध गण नहीं देख पाए थे वहीं मैं मायामृग का अनुसरण करते हुए दौड़–दौड़कर थक गया। वास्तव में इच्छाप्रधान नारी का चाटुकार पुरुष कौन–कौन सा कष्ट नहीं प्राप्त करता।

रेखां पश्येस्तदनुधनुषा निर्मितां लक्ष्मणेन
त्रातुं कृच्छ्राद् धरणिजनुषं शास्त्रवाद् गामिवार्षीम्।
यां लंघित्वा कपटयतिना संकटं प्राप सीता
मर्यादां हा किमिह सुखिनी स्याद् व्यतिक्रम्य नारी।।२९।।

गुञ्जन–इसके अनन्तर वेदवाणी की भाँति, शत्रु के कष्ट से पृथ्वी पुत्री सीता जी की रक्षा करने के लिए धनुष से लक्ष्मण द्वारा खींची हुई उस रेखा को देखना जिसको लांघकर कपटी संन्यासी रावण के द्वारा सीताजी संकट में डाल दी गईं। हाय! क्या कोई नारी वैदिक मर्यादा का उल्लंघन करके सुखी रह सकती है?

मय्यादातुं कनकहरिणं दूरगे धन्विधुर्ये
मामन्वेते मगधतनयानन्दने शून्यमेत्य।
जह्रे सीता कुणपपतिना हव्यधारा शुनेव
स्त्रीमप्यार्यां तुदति नितरां क्वापि लोभोऽतिशायी।।३०।।

गुञ्जन–कपट मृग को पकड़ने के लिए धनुर्धरश्रेष्ठ मुझ राम के सुदूर चले जाने पर पुनः मगधराज पुत्री सुमित्रा जी के पुत्र लक्ष्मण जी के भी मेरे पीछे–पीछे चले जाने पर सूनी कुटी पाकर कुत्ते द्वारा हव्य धारा की भाँति राक्षसराज रावण द्वारा सीता जी का हरण किया गया। वास्तव में कहीं कहीं सीमा से अतिशय लोभ पतिव्रता स्त्री को भी बहुत कष्ट दे देता है।

जिघ्रन् नाना कुसुमसुरभिं वन्यवृक्षाननेका-
नारोहँस्त्वं कुलखगकुलैः काण्डसंक्लृप्त नीडान्।
पश्यन् पर्णैरनिलपतितैः काननं चावकीर्णम्
मन्दं मन्दं व्रज जनकजा जीवनाशो यमाशाम्।।३१।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! अनेक पुष्पों की सुगंधि लेते हुए श्रेष्ठ पक्षियों द्वारा घोसलों से युक्त डालों वाले अनेक वृक्षों पर चढ़ते हुए वायु के द्वारा गिराए हुए पत्तों से ढके हुए वन को निहारते हुए सीता जी के जीवन की आशा से युक्त तुम यमाशा अर्थात् दक्षिण दिशा में धीरे–धीरे जाना।

त्वं त्वं पश्येस्तम इव लसद् विग्रहं विग्रहाढ्यम्
भग्ने श्वासं त्रुटितविशिखं रक्तसंव्याप्यरण्यम्।

यस्मिन् देव्यै दिगिभ शिरसा युद्धयमानो जटायुः
स्वायुः स्वाहा कृतपरहितप्राणवन्तो हि सन्तः।।३२।।

गुञ्जन–हे मित्र! इसके अनन्तर तुम एक दूसरा बन देखोगे जो शरीरवान् अन्धकार जैसा और भयंकर विग्रह अर्थात् कलह से युक्त है जिसमें टूटे हुए धनुष के टुकड़े और बाणों के खण्ड पड़े हैं। जो रक्त से सराबोर है जिसमें सीता जी के लिए दिग्गजों के समान संख्याक सिरवाले रावण से युद्ध करते हुए जटायु जी ने अपनी आयु को ही स्वाहा कर दिया था। क्योंकि सन्त परहित के लिए ही प्राण धारण करते हैं।

यस्मिन् रक्षो निशितविशिखैराहतं तं जटायुम्
क्रोडे कृत्वा नयनसलिलैर्लूनपक्षं व्यसिञ्चम्।
मय्यभ्यरणं स्थितवति जहज्जीविते जीवितेशाद्
यो मत्प्रापत्परमसुकृती भुक्तिमुक्ती स भक्ती।।३३।।

गुञ्जन–जिस वन में रावण के तीखे बाणों से घायल जटायु को गोद में लेकर मैंने उनके पंख कट जाने पर उन्हें अपने नेत्रों के आंसुओं से सींचा था। उनके अन्तकाल में मुझ परमात्मा के निकट स्थित रहने पर मुझ प्राणेश्वर से अपने जीवन को छोड़ते हुए जटायु जी ने भक्ति सहित भुक्ति और मुक्ति दोनों पाईं।

यत्रारोप्य स्वकरनिचितां सच्चितां गृध्रराजम्
राजद्राजीवनयनजलोऽदाम्मुखाग्निं स्वपित्रे।
श्रद्धेयाद् वै किल दशरथाद् भक्तिमस्मिन् विधाय
श्राद्धं चक्रे ननु दशगुणां सज्जना नो कृतघ्नाः।।३४।।

गुञ्जन–हे मित्र! जिस वन में अपने हाथ से बनाई हुई चिता पर गृध्रराज को विराजमान करके अपने कमलनयनों में आँसू भरकर मैंने अपने पिता को मुखाग्नि दी थी। श्रद्धेय पिता दशरथ जी से भी दशगुनी भक्ति रखकर मैंने पिता जटायु का श्राद्ध किया। क्योंकि सज्जन कृतघ्न नहीं होते।

यस्यास्त्वं वै भसितकणिकां भूतयेभूभूवो भोः
गच्छागस्त्याचरितहरितं बिभ्रदाकाशगामी।
यो वै सीतामिव सुतवधूं त्रातुमात्मानमीशं
नारेर्मत्वा सुगनल महाज्वालया स्वं ददाह।।३५।।

गुञ्जन-हे मित्र! भूनन्दिनी सीताजी के कल्याण के लिए जटायु के भस्म की एक कणिका धारण करते हुए आकाश मार्ग से दक्षिण दिशा की ओर जाना। जिन्होंने अपनी पुत्रवधू की भाँति सीता जी की शत्रु से रक्षा करने में समर्थ न होते हुए स्वयं को शोक महाज्वाला से दग्ध कर लिया।

भूयः पश्येर्यमदिशि सखे जाङ्गलं घोररूपम्
काबन्धं त्वं धृततनुमहाविश्वबन्धं यथार्तम्।
यत्राबद्धो भवभयजगद्बन्धुकृच्चापि दोर्भ्यां
रक्षोबाहू मुनिरिव जगच्छोकमोहौ न्यकृन्तम्।।३६।।

गुञ्जन-हे मित्र! दक्षिण दिशा में ही फिर देखना। भयंकर रूपवाला एक जंगल और वहीं शरीर धारण किए हुए महान् विश्वबन्धरूप कबन्ध को। जिस जंगल में जगत् के बन्धनों को काटने वाला मैं भी कबन्ध राक्षस की दोनों भुजाओं में बद्ध हो गया था जिस प्रकार मननशील मुनि शोक और मोह को काट देता है उसी प्रकार मैंने भी राक्षस कबन्ध की दोनों भुजाएँ काट दी थीं।

मार्गश्रान्तिं शमयितुमलं श्रामणं स्वाश्रमं भो
गच्छाभीष्टं परमतपसा पावितं यच्छवर्याः।
यत्पादाब्जस्पृगनघमभूत् पूर्वमासृग्वशादं
पम्पानीरं सुरधुनि महस्तीर्थपादा हि सन्तः।।३७।।

गुञ्जन-हे मित्र! मार्ग की थकान दूर करने के लिए परम अभीष्ट श्रमणा जी के सुंदर आश्रम को जाना। जो शबरी जी के पूजनीय तप से

पवित्र हो चुका है। जिन शबरी माँ के चरणकमल का स्पर्श करके पहले रक्त एवं मज्जा को प्रदान करने वाला पम्पा सरोवर का जल सम्प्रति गंगा जी के तेज से युक्त और निष्पाप हो चुका है। क्योंकि सन्तों के चरण स्वयं तीर्थ होते हैं और संतों के चरणों में सभी तीर्थ रहते हैं।

नाहं तृप्तः शतहयमखैरिज्यमानो मघोना
नैवर्ङ्मन्त्रै ऋषिनिगदितैः सामभिर्नो यजुर्भिः।
यावन्मा तर्पयत शबरी सत्फलै स्वादुमूलै
कौसल्यातोऽप्यति बहुमता भाववस्योहमीदृक्।।३८।।

गुञ्जन–जो मैं इन्द्र के द्वारा सौ अश्वमेध यज्ञों से पूजित होता हुआ भी नहीं तृप्त हुआ। ऋषिप्रोक्त ऋग्वेद के मन्त्रों से, सामवेद से तथा यजुर्वेद के मन्त्रों से भी उतना तृप्त नहीं हुआ जितना कि माँ शबरी ने मुझे सुन्दर फलों एवं स्वाद युक्त मूलों से तृप्त कर दिया। वे मेरे लिए कौसल्या जी की अपेक्षा भी अधिक सम्माननीया हैं, क्योंकि मैं इसी प्रकार भावों के वश में रहता हूँ।

यद्यप्येषा शबरतनया मन्मुखाम्भोजभृंङ्ग
नेत्राक्षेत्रं शवररचितं संपरित्यज्य याता।
मत् साकेतं सुरमुनिनुतं मातृका मे तथापि
त्वं तद्धूलिं धर शिरसि भो श्रेयसे सन्नमस्या ।।३९।।

गुञ्जन–हे भृंग! यद्यपि यह श्रमणा शबर की पुत्री थी। फिर भी अपने नेत्रों को मेरे मुख कमल का भ्रमर बनाकर शबर द्वारा रचित शरीर क्षेत्र को छोड़कर मेरी कृपा पात्र माँ बनकर देवमुनियों से नमस्कृत मेरे साकेत लोक को पधार गयीं। फिर भी उनकी धूलि अपने शिर पर धारण कर लेना। क्योंकि सन्तों के चरणों में किया गया नमस्कार जीव के भवभय को समाप्त कर देता है।

तत्रत्यां त्वं वद बदरिकां मूर्ध्नि मूर्धाभिसिक्तो
दूतेशानां विरहशमनादीक्षया दीक्षितानाम्।

एवं पश्यन् विपुलविपिनं पाथसा पूतपापां
पश्येः पम्पां घनवनधनां द्यामिवापां सशम्प्याम्।।४०।।

गुञ्जन–हे भृंग! विरह के नाश की दीक्षा से दीक्षित श्रेष्ठ रूपों में भी मूर्धाभिषिक्त अर्थात् सर्वश्रेष्ठदूत तुम शबरी जी के आश्रम के बेर के कुछ कण अपने शिर पर धारण कर लेना। इस प्रकार अनेक वनों को देखते हुए नक्षत्र मण्डल रूप बिजली तथा आकाश गंगा के जल से युक्त स्वर्ग वीथी की भाँति सुन्दर वन एवं सुन्दर जलरूप घनवाली पम्पा को निहारना।

तस्याः गच्छेर्हरिहरिति भो दुर्गमं भूविभाग-
मुच्चावच्चं कठिन कठिनं तीक्ष्णपाषाणजुष्टम्।
घोराकारं कुटिल तृणकं कण्टकानां शितानां
जन्मस्थानं दुरितदमिवाविष्कृतं शर्कराभिः।।४१।।

गुञ्जन–हे मित्र! उस पम्पा से दक्षिण दिशा में उस कंकरीले, पथरीले दुर्गम भूमि भाग में जाना। जो ऊँचा नीचा अत्यन्त कठिन नुकीले पत्थरों से युक्त भयंकर आकार वाला, टेढ़ीसूखी चुभने वाली घासों से भरा हुआ तीखी बालुओं से मानों निर्मित तथा नुकीले काँटों का मानो जन्म स्थान ही है।

तत्रालोक्यो लुलितमृदुतः पर्वतस्तीक्ष्णितास्मा
यस्मिनृष्या ऋषिगणतपो मूकिता ऋष्यमूकः।
यस्याधस्तात्धृतवटुवपुर्गौतमेयो प्रमेयो
भिक्षाव्याजादवनिमवितो वामनो वा लुलोके।।४२।।

गुञ्जन–हे भृंग! वहाँ तुम वह ऋष्य मूक पर्वत देखोगे जिसमें ऋषि गणों के तप के कारण ऋष्य अर्थात् मृग भी मूक हो गए हैं। अर्थात् ऋषियों के तप में विघ्न के डर से हरिण भी वहाँ शांत रहते हैं। जिसके निचले भाग में मुझे अतुल बलवाले गौतमी (अञ्जना) पुत्र हनुमान् जी के भिक्षा के बहाने पृथ्वी पर आये हुए वटु वेषधारी भगवान् वामन के समान दर्शन हुए थे।

विशेष-यहाँ वा शब्द इवार्थक है।

यत्र भ्राम्यद् भ्रमितमनसा वासुधेयी वियोग-
भीमाम्भोधौ तरणिसदृशो मज्जतासानुजेन।
विप्राकारः पुरहरतनुर्जातरूपाचलाभो
दृष्टो दृष्टेः फलमिव मया गौतमीगर्भजन्मा।।४३।।

गुञ्जन-हे भृङ्ग! जिस ऋष्यमूक पर्वत की तलहटी में इधर-उधर भटकते हुए भ्रमित मनवाले वसुधानन्दिनी सीता जी के वियोग सागर में डूबते हुए अनुज लक्ष्मण के साथ मुझ राम के द्वारा, नौका के समान रुद्रावतार सुमेरु पर्वत के समान शोभा वाले, ब्राह्मण वेशधारी गौतमी अर्थात् अंजना जी के गर्भ से जन्म लेने वाले हनुमान जी दृष्टि के फल के समान देखे गए थे।

बिभ्रद् विप्रःशुभचरणयोः पादुके पादचारं
कुर्वन्नुर्व्यां धृततनु शिवं गौरवर्णःस वर्णी।
मन्दं मन्दं भुवमवतरन् पर्वतादृष्यमूकात्
कश्चित्कान्त्याविरिव ददृशे दक्षिणस्यां मयार्भः।।४४।।

गुञ्जन-अपने सुंदर चरणों में पादुका धारण करते हुए पृथ्वी पर पादचार (पैदल चलते) करते हुए शरीरधारी कल्याण के समान ऋष्यमूक पर्वत से धीरे-धीरे उतरते हुए वे गौरवर्ण अपूर्व ब्रह्मचारी हनुमान् जी मुझे दक्षिण दिशा में भी अपनी कान्ति से बालसूर्य के समान दिख रहे थे।

विशेष-यहाँ चतुर्थचरण में कान्त्या अविः इव विच्छेद समझना चाहिए।

सुग्रीवं मद्विरहितभयं कर्तुकामो हनूमान्
भिक्षूद्योगो हरिरिव बलिं भिक्षयन्मां सबन्धुम्।
यत्रागच्छद् दशमुखवृहद्वाटिकाधूमकेतु-
र्हेतुर्भीतेर्निशिचरपतेः कीर्तिकेतू रघूणाम्।।४५।।

गुञ्जन–जिस ऋष्यमूक की तलहटी में सुग्रीव को मुझसे निर्भय करने के लिए रावण की विशाल अशोक वाटिका के धूमकेतु अर्थात् अग्नि, राक्षसराज के भय के मूल कारण रघुवंशियों की कीर्तिकी पताका हनुमान् जी अनुज लक्ष्मण सहित मुझसे सुग्रीव के अभयदान की भिक्षा लेने उसी प्रकार पधारे थे। जैसे महाराज बलि के पास भिक्षुक के उद्योग की भूमिका से सम्पन्न भगवान् वामन उपस्थित हुए थे।

यत्रालोक्यावगणितनवाम्भोदशुभ्राम्बुजातौ
तातावावां सधनुरिषुभृद् व्यग्रनाराचखड्गौ।
पृष्ट्वा सृष्ट्वा वचनरचनां तोषयन्मां मरुद्भूः
पृष्ठे धृत्वा हरियुगयुतो पुप्लुवे द्यामिवेभः।।४६।।

गुञ्जन–जहाँ पर अपनी प्रभा से नीले बादल और श्वेत कमल की निन्दा करने वाले धनुष, तरकश तथा व्यग्रबाण एवं खड्ग धारण करने वाले हम दोनों भाई राम–लक्ष्मण को निहारकर मुझसे कुशल प्रश्न करके वचन रचना की सृष्टि कर मुझे सन्तुष्ट करते हुए वायुपुत्र हनुमान् जी हम दोनों को पीठ पर बिठाकर दो सिंहों को लिए हुए हाथी की भाँति आकाश में उछले थे।

तत्रावश्यं त्वमुपरि सखे ऋष्यमूकस्य गत्वा
पश्यद् ध्वान्तैर्निविडनिविडां साधु शैलीं गुहां ताम्।
यस्यां सख्यं दिनकरभुवा साग्निसाक्ष्यं समं मे
ज्ञाने मात्रा गुरुरिव हरेः कारयामास मर्कः।।४७।।

गुञ्जन–हे मित्र! वहाँ पर तुम ऋष्यमूक पर्वत के ऊपर जाकर अन्धकारों के कारण अत्यन्त गम्भीर पर्वत की उस गुफा को ठीक–ठीक देखना जिसमें हनुमान् जी ने अग्नि को साक्षी मानकर सूर्यपुत्र सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता उसी प्रकार कराई जैसे सद्गुरु देव सेवक से भाव सम्बन्ध ज्ञान की उपस्थिति में मात्रा अर्थात् प्रमाता जीव के साथ ईश्वर की मित्रता करा देते हैं।

विशेष–मात्रा=जीवेन।

इक्षेथास्त्वं मधुप मधुपव्याप्त पर्णप्रसूना-
माधां वल्लीमिव सुरतरोर्नागपुष्पीं प्रफुल्लाम्।
त्रातुं भोरान्मघवतनया द्यां सुकण्ठस्य कण्ठे-
देष्टा मृत्योर्मनसि यतितुर्मन्त्रविद्यामिवाद्याम्।।४८।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! जिसके पत्तों एवं पुष्पों पर भ्रमर व्याप्त हैं और जो कल्पवृक्ष की लता के समान है। ऐसी विकसित नागपुष्पीलता के तुम अवश्य दर्शन करना। जिसको मैंने भयंकर इन्द्र पुत्र बालि से रक्षा करने के लिए सुग्रीव के कण्ठ में उसी प्रकार डाल दिया था जैसे मंत्रोपदेशक श्रीवैष्णव आचार्य मृत्यु से डरे हुए यत्नशील साधक के मन में आद्यमन्त्रविद्या श्रीराममन्त्र आदि का आधान कर देता है।

तां त्वा देवासुररणलसद्रंगभूमिं यथाद्यां
ज्ञानाज्ञाना प्रमथिततलां शान्तिसीमां यथा गाम्।
वीरोत्साह प्रकटितगुणां सुस्थलीं दर्शयामि
क्रुध्यन् हारं न्यहनमिषुणा यत्र सुग्रीवमित्रः।।४९।।

गुञ्जन–हे मित्र! मैं तुम्हें वह स्थली दिखा रहा हूँ जो देवताओं और असुरों के युद्ध से सुशोभित रङ्गभूमि वाली द्यौ अर्थात् स्वर्ग के समान है। जो ज्ञान और अज्ञान से रौंदी हुई तलहटी वाली शान्ति की सीमा पृथ्वी के समान है और जिसमें सुग्रीव के मित्र मैंने एक ही वाण से क्रुद्ध होकर इन्द्रपुत्र बालि का वध किया था।

एवं भ्रान्त्वा भरतधरणीं धारणेयीं दिदृक्षुः
संदेशान्मे मनसि कलयन् वक्ष्यमाणान्प्रियायै।
रामादेशात् दिशि ऋषिपतेः कुम्भजस्य प्रयाहि
स्वस्ति ब्रूमो भवतु सुखदो भृङ्ग पन्थाः शिवस्ते।।५०।।

गुञ्जन–हे भृङ्ग! इस प्रकार सम्पूर्ण भारत भूमि का भ्रमण करके मेरे द्वारा कहे जाने वाले संदेशों के गूढ़ अर्थों को मन में धारण करते हुए पृथ्वी पुत्री सीता जी के दर्शनों के लिए इच्छुक तुम ऋषिपति अगस्त्य की दिशा में प्रयाण करना। हम तुम्हारे लिए स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। तुम्हारा मार्ग सुखद एवं कल्याणमय हो।

किष्किन्धातो व्रज पुनरले वाचिकं मे गृहीत्वा
पीत्वा पेयं मधुबनतरूद्भूतपुष्पासवं त्वम्।
सर्वेषां सन्मनसि महतामुत्सवंवर्धयन्वै
वैदेहीक्षाप्रजवितगतिर्दक्षिणो दक्षिणाशाम्।।५१।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मधुबन में उत्तम वृक्षों के पुष्प रस को पीकर, मेरा संदेश लेकर सभी महात्माओं के श्रेष्ठ मन में उत्सव बढ़ाते हुए सीताजी के दर्शनों की इच्छा से द्रुतगति वाले तुम किष्किन्धा से दक्षिण दिशा के लिए पुनः स्थान करना।

त्वां गुञ्जन्तं सरसिजगतं वल्लकीमित्ररावं
भावं भावं भवभवकरं माधवं मन्मथेष्टम्।
मोदं मोदं मुदितवदना भारता भारतीशा
सौमङ्गल्यं सुसृजति सरस्वत्यवश्यं शुभाय।।५२।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मार्ग में विश्राम करते हुए कमल कोश में छिपे हुए, संसार का कल्याण करने वाले, मधुवसन्त के मित्र, सीता जी के प्रति उद्भूत मेरे मन के मन्मथ अर्थात् काम के लिए अनुकूल तुम जैसे मेरे मनोभृंग को अपनी वीणा के समान स्वर वाला समझ कर भगवदीय ज्ञान में लगी हुई वाणी की ईश्वरी प्रसन्नवदना सरस्वती प्रसन्न हो होकर तुम्हारे शुभ के लिए शीघ्र ही सौमंगल्य की सर्जना करेगी। अर्थात् तुम्हारा अमंगल नहीं होगा।

त्वां गायन्तं मधुरमधुरं मञ्जुमारन्दमत्तम्
शीघ्रं सीतामरिगृहगृतां जीवयन्तं स्वगीर्भिः।
नूनं श्रान्तं पथिपथिकपं शान्तरावं सभावं
सत्कर्ता वै सुरसुमरसैः शारदाहंस उच्चैः।।५३।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! मधुर मकरन्द पीने से उन्मत्त मधुर मधुर गाते हुए लम्बी यात्रा के कारण थके हुए अतः गुंजार को शान्त किए हुए किन्तु शीघ्र ही शत्रु के गृह में विराजमान सीता जी को मेरे संदेश से युक्त अपनी वाणियों से जिलाने के लिए यत्नशील तुम जैसे श्रेष्ठ पथिक को सरस्वती जी का हंस नन्दनवन के पुष्प मकरन्दों से उत्कृष्टभाव पूर्वक सम्मानित करेगा।

एवं याता सपदि भवता शृण्वता दक्षिणाशां
गीतं श्राव्यं सुमधुरतमं कम्रकार्णाटकीनाम्।
पश्चादित्वा मुरहरपुरीं विष्णुकाञ्चीं षडङ्घ्रे
साक्षात्कार्यः किलवरदराड् श्रेयसे जागरूकः।।५४।।

गुञ्जन–इस प्रकार कार्णाटक ललनाओं के सुनने योग्य सुमधुर गीत सुनते हुए शीघ्रता से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हुए हे भ्रमर! आपके द्वारा, पश्चात् मुर के शत्रु विष्णु की नगरी विष्णुकाञ्ची में आकर श्रीवैष्णवों को श्रेयस प्रदान करने के लिए जागरूक वरदराज भगवान् के दर्शन करने चाहिए।

तस्यागच्छेर्गगनगतिको भौम वैकुण्ठनाम
श्रीकावेर्यास्तटमधिलसत् पुण्यपुञ्जप्रतिष्ठम्।
यस्मिन् पश्चान् मदनुसरणः पंक्तिमौलेः कनिष्ठो
रङ्गं लंकानभिमतगतिं स्थापयिष्यत्यनन्तम्।।५५।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! उस विष्णुकाञ्ची से तुम आकाश मार्ग द्वारा भौमवैकुण्ठ के नाम से प्रसिद्ध श्रीकावेरी जी के तटपर सुशोभित पुण्यपुञ्ज के रूप में प्रतिष्ठित श्रीरङ्गजी के स्थान अवश्य जाना। जिसमें आगे चलकर मेरा अनुसरण

करने वाले रावण के छोटे भाई विभीषण, लंका में जाने के लिए अनिच्छुक भगवान् रंगनाथ की स्थापना करेंगे।

आन्ध्रान्मद्रानुदधि तटगान्केरलांश्चैव रम्यान्
पश्यन् भ्राम्य भ्रमर मुदितः कम्रकन्याकुमारीम्।
यस्यां काचिद् विमलतपसा राजकन्येड्यवेशा
श्रद्धेवोमामृडयत मृडं प्रत्ययं शास्त्रजन्यम्।।५६।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! इस प्रकार आन्ध्र, मद्र, समुद्रतटवर्ती केरल आदि दाक्षिणात्य प्रदेशों को देखते हुए प्रसन्नतापूर्वक कन्याकुमारी का भ्रमण करना। जहाँ सुन्दर राजकन्या का वेशधारण करके भगवती पार्वती जी ने अपने निर्मल तप से शिव जी को उसी प्रकार संतुष्ट कर लिया था जैसे श्रद्धा अर्थात् आस्तिक बुद्धि वेदादिशास्त्र जन्य विश्वास को प्रसन्न कर लेती है।

गच्छेः प्रीतः पुनरपि ततस्तीरमब्धेरुदत् त्वं
वैदूर्याणामिव सुपयसां वीचि विक्लिन्नशष्पम्।
यस्मिन् सुप्तोत्थित इव कपिर्जाम्बवद् बोधितः सन्
योगीवाब्धिं भवनिधिमसौ लङ्घिता वायुसनुः।।५७।।

गुञ्जन–हे भ्रमर! यद्यपि तुम कई बार जा चुके हो फिर भी प्रसन्नतापूर्वक समुद्र के उस उत्तरी तट पर जाओ जिसकी घास वैदूर्यमणि जैसे नीले जल की तरंग से गीली हो चुकी है। जिस तट पर जाम्वबान् जी द्वारा उत्साहित करने पर सोकर उठे हुए की भाँति भूले हुए बल का स्मरण करके वायुपुत्र हनुमान् जी उसी प्रकार अनायास सागर को लांघ जाऐंगे। जैसे भक्तियोगी संसार सागर को लांघ जाता है।

यत्रस्थोऽहं जलधिममदं कार्मुके कर्तुकामः
सन्धातास्मि प्रबलमनलज्वालकं ब्राह्ममस्त्रम्।
कुप्यन् सिन्धुं जडमिव पशुं दण्डयन् दण्डितारिः
संरक्ताक्षो मगधतनुजासूनुना छन्दयिष्ये।।५८।।

गुञ्जन–समुद्र के जिस उत्तरी तट पर स्थित होकर मैं मदमत्त सागर को मदहीन करने की इच्छा से धनुष पर अग्निज्वालासम्पन्न ब्रह्मास्त्र का सन्धान करूँगा और पश्चात् शत्रुओं को दण्ड देनेवाला मैं पशु के समान सागर को दण्डित करते हुए क्रोध से रक्त नेत्र होकर भी सुमित्रापुत्र लक्ष्मण जी के द्वारा अनुनय पूर्वक शान्त कर दिया जाऊँगा।

यत्र स्थित्वा जनकतनया विप्रयोगाब्धिमग्नो
बिभ्रद् वल्कं कपिपतिसखः पञ्चमं भक्तमश्नन्।
आगच्छन्तं शरणमनुजं रावणस्याभिसिञ्चन्
लंकां राज्ये प्रथमविरुदं सम्प्रपत्स्ये प्रपत्तेः।।५९।।

गुञ्जन–समुद्र के जिस उत्तरी तट पर स्थित होकर सीता जी के वियोग सागर में डूबा हुआ वल्कलधारी, सुग्रीव का मित्र मैं राम पाँचवें उपवास की पारणा में कुछ कन्दमूल फल पाने का उपक्रम करता हुआ शरण में आते हुए रावण के छोटे भाई विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त करके प्रपत्ति सिद्धान्त के प्रथम यश को प्राप्त करूँगा और विभीषण–शरणागति से ही प्रपत्ति सिद्धान्त का श्रीगणेश होगा।

तं लङ्घित्वा मम कुलगुरुं निष्प्रमाणाम्बुवाहम्
लंकायां त्वं प्रमदवनिकासंस्थितां मित्रपत्नीम्।
साक्षात् कर्तास्यमलनयनां खिद्यमानां निमग्नां
शोकाम्भोधावतरिमिव तां वेपमानां विनाथाम्।।६०।।

गुञ्जन–अपरिमित जल वाले मेरे कुल श्रेष्ठ उस सागर को लांघकर तुम रावण की लंका में प्रमदवनिका में स्थित निर्मल नेत्रवाली अत्यन्त दुखी हो रही शोक सागर में डूबी हुई बिना नाव के काँपती हुई सी पति से बिछुड़ी हुई अपने मित्र की पत्नी सीता जी के दर्शन करोगे।

श्यामां क्षामां क्षपितहृदिभू कुंकुमामश्रुधारा
सारैर्नित्यं नमितवदनांभोरुहां रुग्णचित्ताम्।

सूर्येन्दुभ्यानिव विरहितां कौहवीं सान्ध्यवेलाम्
सीतां भीतामिव हरिणिकां द्रक्ष्यसि त्वं शुनीषु।।६१।।

गुञ्जन–हे मित्र! सीता जी श्यामा अर्थात् सोलह वर्षीय अवस्था में दिखती हुई भी इस समय अत्यन्त दुर्बल हो चुकी हैं। वे निरन्तर नयनों को झुकाए रहती हैं। सीता जी की अविरल अश्रुधारा के प्रवाहों से उनके वक्ष पर लगा हुआ कुंकुम धुल चुका है उनका चित्त रुग्ण हो चुका है। तुम सीता जी को सूर्य और चन्द्रमा से रहित अमावस्या की सन्ध्या की भाँति तथा कुतियों के पास ले जायी गई भयभीत हरिणकन्या के समान देखोगे।

स्मारं स्मारं मम गुणगणान् जातमूर्च्छां शुभाङ्गीम्
पातं पातं भुवि च मणिभिर्भोगिभार्यां विमुक्ताम्।
ताडं ताडं स्वमुर उदिते पार्वणे शर्वरीशे
विश्लेषार्तां निजदयिततश्चक्रवाकीमिवेयाः।।६२।।

गुञ्जन–हे मित्र! शुभ अंगों वाली सीताजी को तुम मेरे गुणगणों का स्मरण कर करके मूर्च्छित हुई और पृथ्वी पर बार-बार गिरकर, मणि से विहीन सर्पिणी की भाँति छटपटाती हुई, पूर्ण चन्द्रमा के उदित होने पर अपने प्रियतम से बिछुड़ी हुई, बार-बार अपनी छाती पीटकर वियोग विकल आर्त चक्रवाकी के समान अनुभव करोगे।

त्यक्ताहारां मलिनवसना मुज्झितस्नानचर्चां
नीरन्ध्राक्षिप्रपतितजलां सौम्यसाध्वीमचर्चाम्।
स्थिवा शोकेऽप्यहह विषमे शोकसिन्धौ निमग्नाम्
सीतां पश्य प्रतिपदि कलां शौक्लपक्ष्यामिवेन्दोः।।६३।।

गुञ्जन–हे सौम्य! हरण के दिन से ही बिना अन्न जल के जीवन व्यतीत करने वाली, मलिन वस्त्रधारण की हुई, स्नान और विलेपन को छोड़ी हुई अपने नीरन्ध्रनेत्रों से सतत आँसू बहाती हुई और अशोक वृक्ष के नीचे स्थित होकर भी शोकसागर में निमग्न सतीशिरोमणि सीताजी को

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा की चन्द्रलेखा के समान देखोगे।

अस्वस्थासुर्विगतचतुरा   चातुरीशून्यचित्ता
संस्काराज्ञास्मरणविकला मौढ्यमूर्च्छत्षडंगा।
भग्नोत्साहा जडितहृदया मौनवाणी विवाणी
भौमी भाति प्रतिपदि विपद् विप्रविद्येव विग्ना।।६४।।

गुञ्जन–हे मित्र भृङ्ग! इस समय भूमिनन्दिनी मेरी सीताजी प्रतिपदा के दिन अभ्यास की हुई ब्राह्मण वटु की विद्या की भाँति विपदग्रस्त होकर उद्विग्न हो उठी हैं। दोनों ही अस्वस्थासु अर्थात् अस्वस्थ प्राणवाली हो चुकी हैं। सीता के प्राण अस्वस्थ हैं और प्रतिपदि विद्या के भी। अल्पप्राण और महाप्राण अस्वस्थ अर्थात् अभ्यास करने वाले से दूर हो गए हैं। वर्तमान में सीता जी विगतचतुरा अर्थात् तीनों देवर एवं भगवान् श्रीराम से अलग हो गई हैं और प्रतिपद् की विद्या भी आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता और दण्डनीति इन चारों सिद्धान्तों से दूर हो गयी हैं। सीताजी चातुरी शून्य चित्त अर्थात् किंकर्तव्यविमूढ हो गई हैं। उसी प्रकार प्रतिपद् की विद्या ने भी विद्यार्थी को चातुरी से दूर कर दिया है। सीता जी संस्काराज्ञा अर्थात् स्नान आदि संस्कारों को नहीं जान पा रही हैं। इसी प्रकार प्रतिपद् की विद्या भी संस्कार से अज्ञ अर्थात् विद्यार्थी को शास्त्रीय संस्कारों से अनभिज्ञ कर चुकी है। सीता जी स्मरणविकला तात्पर्यतः भगवान् श्रीराम के स्मरण से विकल हैं और प्रतिपद् विद्या भी स्मरण शक्ति से विकल अर्थात् रहित कर देती हैं। सीता ज़ी के किंकर्तव्यविमूढ़ होने से छःहों अंग पांचों इन्द्रियाँ और मन मूर्च्छित हैं इधर प्रतिपद् विद्या विद्यार्थियों के भी मूर्छा से छहों अंगों अर्थात् व्याकारणादि अंगों को मूर्छित कर चुकी है। सीता जी का उत्साह नष्ट है, हृदय जड़ है, वाणी मौन है और कभी–कभी विकल भी हो जाती हैं। इसी प्रकार प्रतिवद् विद्या भ़ी उस दिन पढ़नेवाले के उत्साह को नष्ट कर देती हैं, हृदय को जड़ बना देती है, वाणी को मौन और विकल बना देती है। इस

प्रकार सीता जी में प्रतिपदा तिथि को पढ़ने वाले विद्यार्थी की विद्या के सारे गुण आ गए हैं।

न स्नानं नो वसन ममलं मार्जनं नो न लेपं
नैवाभ्यङ्गं न कुसुमकृतिं साधनं नो कचानाम्।
न क्षुत्तर्षं न खलु शयनं न प्रबोधं प्रिया मे
जानीते भो खलगृहगता योगिनीवा समाधौ।।६५।।

गुञ्जन–हे मित्र! मेरी प्रिया समाधि योग में विरत योगिनी की भाँति इस समय राक्षस गृह में रहकर स्नान, वस्त्र, मार्जन, लेप, अभ्यंग, पुष्पशृंगार, केशप्रसाधन, भूख, प्यास, शयन, जागरण कुछ भी नहीं जान पा रही हैं।

संस्थाशोकाभिधतरुतलच्छायईशेन नीता
सीता शून्यान्कुपिशितभुजा हव्यपात्री शुनेव।
घोरारण्ये कुटिलहरिणा गौर्वृता क्रन्दतीव
व्यग्रात्मासौ निशिचरपुरे नात्मनाथं विदन्ती।।६६।।

गुञ्जन–हे मित्र! राक्षस नगर में रहकर भी व्यग्र मन वाली अपने प्राणवल्लभ को न प्राप्त करती हुई, शून्य से कुत्ते के द्वारा लाई हुई हव्यपात्री की भाँति राक्षसराज द्वारा दण्डक वन से ले आई हुई सीता अशोकवृक्ष के नीचे स्थित होकर भी दुष्ट सिंह द्वारा घोर जंगल में दबोची हुई गौ की भाँति चिल्ला रही है।

स्वाहाकारात् परिचितचरी सुन्दरी सोदरीसा
सद्वृक्षाणाममृतलहरीवाप्रियामामकीना ।
हाहाकारं करुणकुररीवालपन्ती शपन्ती
स्वं दौर्भाग्यं किमु न कुरुते व्याकुलः शोककाले।।६७।।

गुञ्जन–हे मित्र! श्रेष्ठ वृक्षों की सगी बहन, अमृतलहरी के समान सुन्दरी, स्वाहाकार से पूर्व परिचित मेरी प्राणप्रिया सीता जी इस समय दीन

कुररी की भाँति हाहाकार करती हुई अपने दुर्भाग्य को ही कोस रही हैं। क्योंकि शोककाल में व्याकुल व्यक्ति क्या नहीं करता?

रात्रौ मत्वा विधुमपि रविं पूजयत्यर्घदायं
प्रातर्भानुं शपति बहुशः कल्पयित्वा शशांकम्।
अग्निं कृत्वा शिशिरसलिलं स्नातुकामा निषिद्धा
सख्या रामा ननु सरमया किं वियोगिन्यवद्यम्।।६८।।

गुञ्जन–हे मित्र! सीता जी की ऐसी विक्षिप्तावस्था हो गई है कि वे रात्रि में ही चन्द्रमा को सूर्य मानकर अर्घ्य देकर पूजा करने लगती हैं और प्रातःकालीन सूर्य को चन्द्रमा मानकर उन्हें गालियाँ देती हैं, अग्नि को शीतल जल मानकर उससे स्नान की इच्छा करती हुई उनकी अपनी सखी विभीषण की पत्नी सरमा द्वारा किसी प्रकार रोकी जाती हैं। वियोगिनी के लिए क्या अवद्य है?

दृष्ट्वा नूनं विरहदहनज्वालया ज्वाल्यमानं
तूलाकारं वपुरपि निजं जानकी जातशोका।
दृग्भ्यां शीघ्रं सलिलमनघा संश्रयन्ती सपत्नात्
पाति स्वासून्मम किल कृते गेहिनी न स्वकार्था।।६९।।

गुञ्जन–निश्चित ही विरहाग्नि की ज्वाला से जलाए जाते हुए अपने रूई जैसे शरीर को देखकर शोकाकुल जानकी जी अपने नेत्रों से आँसू गिराती हुई उस शत्रु से मेरे ही अपने प्राणों को बचा लेती हैं, क्योंकि भारतीय गृहिणी स्वार्थिनी नहीं होती। अर्थात् अपने लिए कुछ नहीं करती।

तस्या देव्या श्रवणपुटयोर्मञ्जु गुञ्जन्नलीन्द्र
मत्संदेशं वदवदनतो वावदूकाग्रगामिन्।
इच्छन्निच्छामय विरहिणी जीवितं जीविताईम्
दूरेशायाः परममगदं वाचिकं भर्तुराहुः।।७०।।

गुञ्जन–हे वावदूकों में सर्वश्रेष्ठ भ्रमरराज! उन सीता देवी के दोनों श्रवणपुटों के सामने मधुर–मधुर गुंजार करते हुए जीने के लिए योग्य, इच्छामय विरहिणी सीताजी के लिए जीवन लीला क्रम की इच्छा करते हुए अपने मुख से ही सीता जी को मेरा संदेश सुनाना। क्योंकि प्रियतम से दूर हुई प्रियतमा के लिए पति का संदेश ही परम औषधि है।

सीते सीतेविभवविभवे संस्कृतिश्रौतरूपे,
भास्वद्वंशत्प्रशवमहिषि प्रेष्ठरूपस्वरूपे।
मच्चित्तालिप्रवर विलसद् वक्त्रपंकेरुहेहे
न स्वर्गोऽपि प्रणयिनि शुभे रोचते मे विना त्वाम्।।७१।।

गुञ्जन–अब भगवान् श्रीराम का भृंग के माध्यम से कहा जाने वाला संदेश प्रारंभ हो रहा है।

हे सीते! अर्थात् हल पद्धति की लक्ष्मी पृथ्वी का विभव ही जिनका विशिष्ट जन्मस्थान है तथा वैदिक संस्कृति ही जिनका स्वरूप है, परम प्रियतम मुझ राम के रूप में ही जिनका अन्तरंग छिपा हुआ है मेरे चित्तरूप श्रेष्ठ भ्रमर के लिए जिनका सुशोभित मुख ही कमल है। ऐसी हे मुझ सूर्यवंशोत्पन्न राम की पट्टमहिषी प्रणयिनी कल्याणमयी सीते! तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग अर्थात् साकेत भी नहीं भा रहा है।

स्वश्रूणां या नलिननयनोदार तारायमाणा
पुत्रीचक्रे सततमथ यां मत्पिता चक्रवर्ती।
लंकायां सा त्वमहह सखि प्रोज्झितप्राणनाथा
कोकीवार्ता निशि गतसुखा खिद्यमाना न भासि।।७२।।

गुञ्जन–हे सखि! जो तुम अपने सासुओं के कमलनयन की पुतली बनी थीं, जिन तुमको चक्रवर्ती मेरे पिताश्री ने निरन्तर पुत्री करके माना था अहह! वही तुम मुझ प्राणनाथ से बिछुड़कर लंका में रात्रि में पति से बिछुड़ी हुई अत्यन्त दुःखी चकवी की भाँति खिन्न होती हुई शोभित नहीं हो रही हो।

प्रत्यावृत्तं श्रमितमुटजं नित्यमाखेटतो माम्
याभ्यागच्छः ससलिलकरा स्मेरपंकेरुहास्या।
तन्मेदानीं तव विरहजं चण्डदावाग्निमार्तम्
रोद्धुं नेच्छस्यहह किमुतं प्रेक्षमाणा दहन्तम्।।७३।।

गुञ्जन–जो तुम निरन्तर मृगया विहार करके थककर, आश्रम में लौटे हुए मुझे देखकर विकसित मुखकमल वाली हाथ में जलपात्र लेकर अगवानी करती थीं वही तुम इस समय अपनी विरह की कठोर अग्नि से मुझे जलते हुए देखती हुई भी उसे रोकने की इच्छा क्यों नहीं करती हो। अहो इतनी उपेक्षा क्यों?

विशेष–श्रमं इतः श्रमितः शकन्ध्वादित्वात् पररूपम्।

या मां द्रष्टुं ननु न सहसे स्माप्तखेदं तृषार्तं
तूर्णं बाष्पाम्बुरुहनयना बीजयन्त्यञ्चलेन।
सोऽहं देव्या विरहदहनेनेह दन्दह्यमानः
पीत्वाश्रूणि प्रकृतरजनीहीननिद्रो नयामि।।७४।।

गुञ्जन–हे सीते! जो तुम मुझको थका हुआ और प्यास से व्याकुल कभी देख नहीं सकती थीं, तुरंत ही नेत्र में आँसू भरकर आँचल से बयार करने लगती थीं। वही मैं तुम्हारे ही विरहाग्नि के द्वारा अत्यन्त जलाया जाता हुआ मात्र आँसू पीकर बिना निद्रा के इन रात्रियों को बिता रहा हूँ।

झिल्लीरावे तव सखि रणन् नूपुरं कल्पयित्वा
रात्रौ धावन् तमसि तरुतो घूर्णितो घट्यमानः।
सीते सीते प्रलपितमिति व्याहरन्मत्यचेष्टः
कारुण्येनोच्छ्वसितमिव ते देवरं देवयामि।।७५।।

गुञ्जन–हे सखि सीते! रात्रि में झिल्ली के स्वरों में तुम्हारे छमछमाते हुए नूपुर की कल्पना करके सीते–सीते चिल्लाता हुआ अंधकार में दौड़ता

हुआ, वृक्ष से टकराकर चक्कर लगाते हुए, करुणा से ऊँची श्वास लेते हुए तुम्हारे देवर लक्ष्मण को भी दुःखी कर देता हूँ।

नैशीथेऽहं गगनगदिते त्वत्स्वरं भावयित्वा
धावे धर्तुं निविड गहने गोपितां त्वामिवार्तः।
श्लिष्टो वल्या तवभुजलता तुल्यया तुल्यशीलो
भ्रात्रा रुद्ध्ये प्रपतनभियैवैकपत्नीव्रतस्य।।७६।।

गुञ्जन-हे सीते! मध्य रात्रि में सन् सन् करते हुए आकाश के स्वर में तुम्हारे स्वर की भावना करके गहन वन में छिपी हुई जानकर आर्त होकर मैं तुम्हें पकड़ने के लिए दौड़ता हूँ। तुम्हारी भुजा के समान लता से आलिंगित हुआ, समान शील वाला मैं एक पत्नीव्रत के पतन के भय से लक्ष्मण द्वारा रोक दिया जाता हूँ कि ये भाभी माँ नहीं वह तो एक लता है।

पश्यन्त्यो मां कनकहरिणप्रेप्सया हारयित्वा
मौढ्याद्देवीं प्रतिवनमथो सानुजं मार्गमाणम्।
सा शंकान्स्वान् त्वरितगतिकान् वारयन्तो हरिण्यः
मा भैष्टेति प्रतिभयमहो क्वास्ति हेमैणहन्तुः।।७७।।

गुञ्जन-स्वर्ण के हरिण की प्राप्ति की इच्छा से मूर्खतावश लक्ष्मण के साथ वन-वन में सीता जी को खोजते हुए मुझे देखकर आशंकापूर्वक भागते हुए अपने पति हरिणों को रोककर हरिणियाँ कहती हैं मत डरो। स्वर्णमृग मारने वाले से तुम्हें भय क्यों हो रहा है? ये तो स्वर्णमृग मारने आये है तुम्हें नहीं।

या वै सीते विलिखितकपिं वीक्ष्य चित्रेऽनुजेन
त्रस्यन्नेत्रा रुदितवदना मातुरङ्कं जगन्थ।
सा त्वं लंकापतिवनगता रक्षिता राक्षसीभि-
र्भीमाक्षीभिः कथमथ भवेर्निष्ठुरो हा विधाता।।७८।।

गुञ्जन-हे सीते! जो तुम लक्ष्मण द्वारा चित्र में लिखे वानर को

देखकर भी भयभीत नेत्रवाली होकर रोती-रोती माँ कौसल्या की गोद में गिर पड़ी थीं। वही तुम अब रावण के घर में भयंकर आँखोंवाली राक्षसियों की सुरक्षा में कैसे रह रही होगी। हाय, विधाता कैसा निष्ठुर है।

या वै मात्रा कनकभवने वर्तिकां दीपकस्य
प्रत्याख्याता प्रचलहृदया कर्तुकामा प्रिया मे।
सा लंकाया विजनविपिने शोक शाखातले त्वम्
किं स्या रक्षो विकटवपुरालोकिनी धिग्विधे त्वाम्।।७९।।

गुञ्जन-हे सीते! जो तुम कनकभवन में चलायमान हृदय से दीपक की बत्ती व्यवस्थित करने के लिए चेष्टा करती हुई माँ कौसल्या द्वारा रोक दी गई थीं वही तुम आज लंका के निर्जन वन में अशोक वृक्ष की शाखा के नीचे, भयंकर मुख वाले राक्षसों को देखने को विवश हो रही होगी। हे विधाता तुम्हें धिक्कार है।

कौसल्या यां मधुरपयसा मिश्रितं कामधेनो-
र्भक्तं भक्त्या सुखमिव सुतां भोजयामास देवीम्।
सात्वं नीता निशिचरपुरीं त्रायमाणा स्वशीलं
त्यक्ताहारा कथमिव भवेर्हा विधे क्रूरकर्मन्।।८०।।

गुञ्जन-जिसको कौसल्या जी अपनी बेटी के ही समान वात्सल्य भक्तिपूर्वक कामधेनु के दुग्ध से मिलाकर सुन्दर भात अपने हाथ से खिलाया करती थीं वही तुम राक्षस के पुर में ले जाई गई अपने शील की रक्षा करती हुई आहार छोड़कर कैसे जी रही होगी। हे विधाता तुम बहुत ही क्रूरकर्मा हो।

आत्मासि त्वं मम सुगृहिणो दारभूतोति पूतो
व्यापृण्वानो जगति सकले शक्तिमित्वा त्वदीयाम्।
सोऽयं शून्यो ननुविरहितः साम्प्रतं नाम देव्या
कार्यैः सर्वैरहमिव मृतो देहवद् भामि भामे।।८१।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम मुझ आदर्श गृहस्थ की पत्नी रूप में अत्यन्त पवित्र आत्मा हो। तुम्हारी शक्ति को प्राप्त करके ही मैं सम्पूर्ण जगत में व्यापार रत रहता हूँ। हे प्रिये! वही यह मैं (राम) आत्मा रूप तुमसे अलग होकर सभी कार्यों से शून्य इस समय मृत शरीर की भाँति प्रतीत हो रहा हूँ।

शीतांशुर्मां प्रदहति भवँश्चण्ड चण्डांशु बिम्बः
सर्पश्वासो मलयनिलयो मारुतो मां निनोति।
भृज्यन्तीव श्रित शुचि गुणा शारदी रात्रिरेषा
सर्वं सीते तव विरहिणो भासते मे प्रतीपम्।।८२।।

गुञ्जन–हे सीते! चन्द्रमा, प्रचण्ड सूर्यमण्डल बनता हुआ मुझे जला रहा है और मलय का शीतल समीर, सर्प का श्वास होकर मुझे डस रहा है। पवित्र गुणों वाली शरदकाल की रात्रि, मुझे भून सी रही हैं। वस्तुतः हे सीते! तुम्हारे वियोग में मुझे सब कुछ प्रतिकूल ही लग रहा है।

त्वं मे शक्तिर्जगदगजनिस्थानभङ्गैकलीले
त्वत्सत्तातश्चितिमधिगतो व्यापृतोऽन्तस्त्रिलोक्याम्।
सीते सीदाम्यथ विरहितश्चादिशक्तया भवत्या
शक्तयाहीनः कथमु घटतां कोऽपि कस्मिँश्चिदर्थे।।८३।।

गुञ्जन–हे जड़ जङ्गम की जन्म स्थिति और प्रलयलीला वाली सीते! तुम्ही मेरी शक्ति हो और तुम्हारी सत्ता से ही चेतना प्राप्त करके मैं तीनों लोकों में अन्तस से व्यापार युक्त रहता हूँ। वही मैं इस समय आप जैसी आदि शक्ति से रहित होकर दुःखी हो रहा हूँ। भला शक्ति से हीन होकर कोई भी व्यक्ति किसी कार्य में कैसे प्रवृत्त हो सकता है?

नूनं नूलस्तरुकिसलयो वह्निवन्मां दिधक्षु-
र्वर्षावार्दोज्झित जलमलं तप्ततैलायते मे।
राकाचन्द्रस्तरुणतरणिः कालरात्रिस्सुरात्रिः
सर्वं सीते तव विरहिणो वैपरीत्येन भाति।।८४।।

गुञ्जन–हे सीते! निश्चित ही नवीन वृक्षपल्लव, अग्नि की भाँति मुझे जलाने की इच्छा कर रहा है। वर्षाकालीन बादल से छोड़ा हुआ जल मुझे खौलते हुए तेल जैसा लग रहा है। पूर्णिमा का चंद्र मध्याह्न का सूर्य बन गया है। सुन्दर उजेली रात्रि कालरात्रि बन गई है। वस्तुतः तुम्हारे विरह में सब कुछ मेरे लिए उल्टा ही उल्टा हो गया है।

कर्णे शौकं खनति कुटिलः कोकिलः कोऽपि कीलम्
काकीभूतः पुनरपि बकन्हन्ति हंसस्तु हर्षम्।
नृत्यन्निन्दन्निव सदयितो रौति मह्यां मयूरो
मां धिक् कुर्वन् रसति दहनं दग्धचञ्चुश्चकोरः।।८५।।

गुञ्जन–हे सीते! यह कुटिल पुंस्कोकिल कौआ बनकर मेरे कान में शोक की कील चुभा रहा है। हंस बगुला बनकर मेरा हर्ष समाप्त कर रहा है। अपनी मयूरिणी के साथ पृथ्वी पर नाचता हुआ मयूर मेरी निन्दा करता हुआ जैसा बोल रहा है। मुझे धिक्कारता हुआ जली हुई चोंच वाला चकोर अग्नि को ही खा रहा है। तात्पर्य यह है कि चकोर कह रहा है कि यदि मैं चन्द्रमा के वियोग में अग्नि को खा सकता हूँ तो तुम सीता जी के वियोग में कैसे जी रहे हो?

दृष्ट्वारण्यं समृगमिथुनं विग्ननृणां शरण्यम्
रामो रामां मृगदृशमहो नाप्नुवनन्नुन्न सौख्यः।
कौसल्यायायास्तरुणतनयस्त्वद्य तापिच्छनीलो
नीला सख्या इह दुहितरं त्वां समन्वेषयामि।।८६।।

गुञ्जन–उद्विग्न मनुष्यों को शरण देने में समर्थ! वन को हरिण जोड़ों के साथ देखकर भी मृगनयनी सीता को न पाकर सुख से हीन हुआ कौसल्या का युवक पुत्र, तमाल के समान नीलवर्ण वाला मैं राम नीला की सखी पृथ्वी की पुत्री सीता जी को आज वन वन में ढूँढ़ रहा हूँ।

कुञ्जे कुञ्जे तरुषु तरुषु स्वावटे स्वावटे च
शैले शैले सरसि सरसि भ्राम्यमाणौ भ्रमेण।
नद्यां नद्यां दिशि दिशि दृशः पातयन्तौ विषण्णौ
भूयोऽरण्येष्विव सुभिषजौस्वोषधिं त्वां विचिन्वः।।८७।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस प्रकार अरण्य में कुशल वैद्य औषधि ढूढ़ते हैं उसी प्रकार हम दोनों रामलक्ष्मण अत्यन्त आर्त होकर कुञ्ज कुञ्ज में वृक्ष-वृक्ष में गुफा–गुफा में पर्वत–पर्वत में प्रत्येक तालाब तथा प्रत्येक नदी में, प्रत्येक दिशा में दृष्टि डालते हुए तुम्हें बार–बार ढूढ़ रहे हैं।

पृष्ट्वा पृष्ट्वा हरि हरिणकान्पक्षिणो वै षडङ्घ्री-
न्दृष्ट्वा दृष्ट्वा वनतरुलतास्ताश्च तापिच्छमालाः।
सृष्ट्वा सृष्ट्वा चिरविरहजं तीव्रतापोत्थदाहम्
स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा मनसि निहितां त्वां कथञ्चिद्धरामि।।८८।।

गुञ्जन–हे सीते! तोते हरिण आदि पक्षियों तथा भ्रमरों से पूछ–पूछकर पर्वत, वन लताओं तथा उन तमालश्रेणियों को देख–देखकर चिरकालीन विरह से उत्पन्न दुःसहताप की रचना कर–करके अपने मन में छिपी हुई तुमको बार–बार स्पर्श करके किसी प्रकार प्राणों को धारण कर रहा हूँ।

त्वद् विश्लेषोद्धत विरहजो जातवेदा विषण्णं
यावद् दग्धुं क्रमत इषुभिस्ताडितं मां स्मरेण।
तूलाकारं झटिति करुणोच्छ्वास संवर्धितौजा-
स्तावन्नेत्रे शमयत इमं स्वार्थवृत्तिर्हि लोकः।।८९।।

गुञ्जन–करुणा के उच्छ्वासों से बढ़े हुए तेज वाला, तुम्हारे वियोग से उत्पन्न विरह से जन्मा हुआ अग्नि, तुम्हारे स्मरणात्मक काम के बाणों से ताडित, रूई के समान शरीर वाले मुझको जब तक जलाने का उपक्रम करता है, तब तक मेरे दोनों नेत्र शीघ्र ही उसे बुझा देते हैं। क्योंकि यह लोक स्वार्थवृत्ति वाला है।

संमज्जन्तं विरहवनधौ मग्नवैवेकपोतम्
सर्पिर्दीपं स्मरण पवनेमेव निर्वाप्यमाणम्।
दृष्ट्वै कान्ते मरणशरणं दूरसाहाय्यमित्रम्
चित्तं सीते यदि न दयसे निर्दयाः किन्नु योषाः।।९०।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम्हारे विरह सागर में डूबते हुए जिसका विवेकरूप जहाज डूब गया हो, ऐसे तुम्हारे स्मरण की वायु से बुझ रहे घी के दीपक की भाँति मरण को ही शरण स्वीकार करने वाले जिसका तुम जैसा सहायक मित्र दूर हो ऐसे मुझ राम को देखकर भी तुम दया नहीं कर रही हो! क्या नारी निर्दय होती हैं।

राज्यं यातं धनमपगतं बान्धवादूरितामत्
सौख्यं लुप्तं विपिनमवितोजन्मभूमेर्वियुक्तः।
त्वं चैकासीर्मम नलिनदृग्वर्तिकावत्सखी मे
सापीदानीं नहि निकटगा हा हतोऽहं विधात्रा।।९१।।

गुञ्जन–हे मेरी विपत्ति काल में सखी सीते! मेरा राज्य छूटा, धन गया बन्धु बान्धव मुझसे दूर हुए, सौख्य लुप्त हुआ, मैं राज्य छोड़कर वन में आया। मैं जन्मभूमि से वियुक्त हुआ, इन सब अभावों के होते हुए भी तुम्हीं एक मेरे कमल नयन की वर्तिका के समान साथ थीं। वह भी तुम इस समय निकट नहीं हो। हाय, मैं विधाता के द्वारा मार डाला गया।

साकेतेऽप्यत्यजदथ चमामर्थितं राज्यलक्ष्मी-
र्मार्गे भूयः किलसम जहात्सर्वतः सौख्यलक्ष्मीः।
त्वं चारण्येप्यहह समभूर्दूरगागेहलक्ष्मी-
र्नूनं स्त्रीभिस्तिसृभिरनघे वञ्चितोऽहं विपद्ये।।९२।।

गुञ्जन–हे सीते! हाय अयोध्या में अपने ही द्वारा चाहे गए मुझको राज्यलक्ष्मी ने छोड़ा, फिर मार्ग में चारों ओर से सौख्यलक्ष्मी ने मेरा त्याग

किया। फिर वन में तुम गृहलक्ष्मी भी मुझसे दूर हो गई। निश्चित ही तीन नारियों द्वारा ठगा गया मैं अत्यन्त विपद्ग्रस्त हो रहा हूँ।

हारं नारोपयमहमहो देवि कण्ठे विभाव्या-
स्मत्संश्लेषेन्तरमतिशयं त्वत् परिष्वंग चुञ्चुः।
हा हा धात्रा किमिहविहितश्चावयोर्मध्यवर्ती
पापिष्ठोऽयं लवणसलिलः सागराणां प्रसूतिः।।९३।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम्हारे आलिंगन में निपुण मैंने अपने कण्ठ में हार इसलिए नहीं पहना था कि यह हम दोनों के मिलने में अत्यन्त व्यवधान उपस्थित करेगा। किन्तु अरे विधाता इस समय हम दोनों के बीच व्यवधान बन रहा है हमारे ही कुल के वंशधर साठ सहस्त्र सगरपुत्रों की संतान यह पापी खारे जलवाला समुद्र।

या मां भद्रे जनकनगरोद्यानकुञ्जे सशेषं
कुर्वाणंत्वं न समकलयः पुष्पचायं सचायम्।
रामस्त्वन्यः किमिह विहितो नामदेव्या विदूरे
किं वा नारी सुलभमृदुतां स्माजहास्याधिलंकम्।।९४।।

गुञ्जन–हे कल्याणि! जो तुम जनकनगर की वाटिका में लक्ष्मण जी के सहित पुष्प का चयन करते हुए भी मुझे नहीं देख सकीं थीं। अर्थात् अपने हृदय में छिपा ली थीं। वही यह मैं राम तुम्हारे द्वारा इतना दूर क्यों कर दिया गया। क्या तुमने लंका में जाकर नारी सुलभ कोमलता छोड़ दी है?

सीते शीतामलकररुचे रोचिषा रोचिताशे
मन्दस्मेराननजितविधो दामिनीदन्तपंक्ते।
सौन्दर्याम्भोनिधिलहरिकें मञ्जुमाधुर्यसीमे
कर्ह्येष्यामि त्वदधरसुधा सीधुपानैकभाग्यम्।।९५।।

गुञ्जन–हे सीते! हे चन्द्र के समान कान्ति वाली, हे अपने प्रकाश से

दिशाओं को प्रकाशित करने वाली, हे सौंदर्य सागर की लहरी, हे कोमल माधुर्य की सीमा, हे मन्दमुस्कान से युक्त मुख से चन्द्रमा को जीतने वाली, हे दाडिम के समान दन्तावली वाली जनकनन्दिनी सीते! अब मैं कब तुम्हारे अधरामृत आसव के पान का एकमात्र सौभाग्य प्राप्त करूँगा।

पत्रेऽपत्रे मरमररवे मन्दवाते प्रभाते
पूर्वाह्ले वा विकसति नवे नालिनेऽलीनभृंङ्गे।
मध्याह्ले त्वं तपति तरणौ सान्ध्यकाले निशायां
सीते नैकं क्षणमपि मया क्वापि विस्मर्यसे भोः।।९६।।

गुञ्जन–हे सीते! चाहे पत्तों में, या पत्रहीन वृक्ष में उसके मर मर शब्द में अथवा मन्दवायु वाले प्रभातकाल में अथवा पूर्वाह्न में अथवा नवीन भ्रमरों से युक्त नवीन कमल के खिलते समय सन्ध्या या रात्रि में कोई भी एक क्षण ऐसा नहीं जाता जहाँ मैं तुमको भूल सकूँ।

या मां द्रष्टुं ननु निजपितुर्वाटिकायां सहालि-
र्वारं वारं खगमृगतरुव्याजतः स्माभियासि।
सैवेदानीं हरिण विहगैः शाखिभिश्शप्यमानम्
पश्यन्ती त्वं किमु न दयसे स्त्री निसर्गाद् दयालुः।।९७।।

गुञ्जन–हे सीते! जो तुम अपने पिताजी की वाटिका में खग मृग और वृक्षों का बहाना लेकर मुझे बार–बार देखने आया करती थीं वही तुम इस समय हरिण, पक्षी और वृक्षों द्वारा अपमानित किए जाते हुए मुझे देखती हुई भी क्यों नहीं दया कर रही हो। जबकि नारी तो स्वभाव से दयालु होती हैं।

निस्तेजस्को रविरिह यथा छायया त्यज्यमानः
कौमुद्यासौ ननु विरहितः शीतरश्मिर्यथा कः।
अर्चिश्शून्यो न लसति यथा जातवेदा विधूमो
देव्या हीनोऽहमहह तथा भामि भामे न भामे।।९८।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस प्रकार छाया से हीन सूर्यनारायण तेजहीन हो जाते हैं। जिस प्रकार कौमुदी से रहित चन्द्रमा सुखहीन हो जाते हैं। और जिस प्रकार धूमरहित अग्नि भी ज्वाला के बिना सुन्दर नहीं लगता। उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे बिना न तो सुन्दर लग रहा हूँ और न ही मुझमें कोई आभा रह गयी है।

हे मच्चित्ताम्बरविहरणे प्रातरुष्णांशुलेखे
हे मच्चक्षुष्चटुलचषक प्रेमपीयूषपात्रि।
हे मच्छ्रोत्रामृत लहरिके सौष्ठवोद्भासि शब्दे
क्वासि क्वासि त्वमथ कथय त्वां कथं लोकयेयम्।।९९।।

गुञ्जन–हे मेरे चित्ताकाश में विहार करने वाली, प्रातःकालीन सूर्य की रेखा, हे मेरे चपल नेत्र पात्र की प्रेमपीयूषपात्रि, हे मेरे कानों के लिए अमृत की लहरी, और सौष्ठव से उद्भासित शब्दों वाली सीते तुम कहाँ हो? तुम कहां हो? तुम्हें मैं कहाँ देख सकूँ। बोलो।

मन्दं मन्दं शशिकरनवोन्मेषहासं हसन्त्या
मुक्ता दाम्ना हरिचरणजायुग्मकान्तिं हरन्त्याः।
किञ्चिद्किञ्चिद्कमल मुकुलोन्मुक्त केलि व्रजन्त्याः
श्रीसीतायाः मधुरमधरं क्वापि कामं पिबेयम्।।१००।।

गुञ्जन–नवोदित चन्द्रमा की किरण के हास के समान मन्द–मन्द हँसती हुई, अपने मुक्ताहार से दो गंगाओं की कान्ति को चुराती हुई, थोड़ी–थोड़ा कमल कलिका के समान उन्मुक्त केलि करके चलती हुई श्रीसीता के मधुर अधरामृत का मैं कब पान कर सकूँगा।

स्वर्गे लोके ललितललनालालिता लोक्यसेचेन्
नीता यद्रांग्नभसि महती संवृतासन्महोभिः।
यद्वा याता तपसि तपसे तप्यमाना तपस्या–
मानेष्ये त्वां विशिखनिकरैरन्तरायान्निरस्यन्।।१०१।।

गुञ्जन–हे सीते! यदि श्रेष्ठ ललनाओं द्वारा सेवित होती हुई तुम स्वर्ग में दिखीं अथवा श्रेष्ठ होने के कारण तुम संकल्प के वेग में श्रेष्ठ तेजों से घिरी हुई महर्लोक में ले जाई गईं होगी अथवा तपस्या के लिए महान् तप करती हुई तुम तपलोक में दृष्टिगोचर हुईं तो भी स्वर्लोक, महर्लोक और तपलोक से भी मैं बाणों द्वारा विघ्नों का निरसन करके तुम्हें ले आऊँगा।

यद्वासत्ये सति सदसतां दुर्विभाव्या विभाया
दीव्यन्ती वा तरलतरलैर्देविता देवनद्याः।
आहर्तुंवा सुरवनमिता स्वर्णकिञ्जल्ककञ्जा-
व्यानेष्ये त्वां तदपि रभसा यत्नसाध्यं हि साध्यम्।।१०२।।

गुञ्जन–हे सीते! सूर्य चंद्र और अग्नि की विभा से (प्रकाश) से भी दुर्विभाव्य (परे) तुम असज्जन लोगों के लिए दुर्गम यदि सत्य लोक में भी सद्रूप में स्थित होगी अथवा आकाश गंगा की अचञ्चलत रंगों से खेलती हुई वहाँ छिप गई होगी। अथवा सुवर्ण पराग से युक्त कमलों को लेने के लिए तुम नन्दन वन में गयी होगी तो भी मैं तुम्हें उत्साह के वेग से ले आऊँगा। क्योंकि व्यक्ति का साध्य यत्न से ही साध्य होता है।

यद्वा नीता वियति विलसद् भानुभानौ सुभानो
राकानाथ प्रसृमरकरैः साधुसंक्रीडसे चेत्।
यद्वा गुप्ता प्रणयकुपिता नाकि नक्षत्रलोके
त्वानेष्ये त्वां सुमुखि बलतो मा कृथाः साध्वि शंकाम्।।१०३।।

गुञ्जन–हे साध्वि सीते! यदि तुम सूर्य के किरणों से सुशोभित अन्तरिक्ष में ले जाई गई होगी अथवा चन्द्रमा की कोमल किरणों के साथ प्रेम से खेल रही होगी या प्रणय में कुपित (रूठने) होने के कारण देवताओं तथा नक्षत्रों के लोक में छिप गई होगी तो भी मैं तुम्हें बलपूर्वक ले आऊँगा। तुम मुझमें अनुत्साह की शंका मत करो।

भूम्या भौमि त्वमथ पिहिता कुद्धया सागसे मे
स्वर्णैर्णानां ननु मृगयवे त्वत्प्रमत्ताय सीते।
आहर्ता त्वां हरिरिवसुधां मातरं छन्दयित्वा
श्वश्रूः कुप्येत् कथमथ सुताप्राणभर्त्रे भवाय।।१०४।।

गुञ्जन–हे भूमिनन्दिनि! यदि कदाचित् अपराध किए हुए तुमसे प्रमत्त कनक मृग के आखेट में व्यस्त मुझ राम पर रुष्ट हुई पृथ्वी ने तुम्हें छिपा लिया हो तो भी पृथ्वी माता को मनाकर मैं तुम्हें उसी प्रकार लाऊँगा जैसे गरुड़ अमृत कलश लाए थे। भला कल्याणकारी बेटी के प्राण वल्लभ दामाद पर सास क्यों कुपित हो सकती है?

पाताले वा सुरपति पवेस्त्रातु मात्मानमद्धा
दैत्येये चेत् विहितवसतिंवासुकेर्वासुधेयी।
ल्लोके लोक्या सुतल भवना वापि भो भोग वत्या–
मानेष्ये त्वां श्रुतिमिव हृतां देवि दैत्यैर्हयास्यः।।१०५।।

गुञ्जन–हे पृथ्वीनंदिनी सीते! यदि इन्द्र के बज्र से अपने को बचाने के लिए पाताल में गए हुए महाराज बलि के पास तुम निवास कर रही होगी अथवा वासुकिलोक में होगी या सुतल लोक में भवन बनाकर विश्राम कर रही होगी या भोगवती नदी की धाराओं में छिप गई होंगी तो भी मैं तुम्हें अनार्य दैत्यों द्वारा चुराई हुई श्रुति को हयग्रीव की भाँति ले आऊँगा।

सप्तद्वीपा ननु वसुमती यावती दृष्टिदृश्या
तावत्यास्त्वां प्रसभमनघे यत्नतश्चानयेयम्।
घोरारण्ये ननु गिरिवर गुहा स्वाहिता वा निकुञ्जे
द्रष्टास्मि त्वामचिरमुचितामोषधिं ना गवीव।।१०६।।

गुञ्जन–हे सीते! जहाँ तक यह सातों द्वीपों वाली पृथ्वी दृष्टिगोचर हो रही है। वहाँ से भी मैं तुमको बलपूर्वक यत्न से ला सकता हूँ। चाहे घोर जंगल में अथवा पर्वत की गुफाओं में या झाड़ियों में तुम छिपी हुई होगी,

वहाँ भी मैं तुम्हें उसी प्रकार शीघ्र पहचान लूँगा। जैसे चतुर मनुष्य पृथ्वी में छिपी हुई औषधि को पहचान लेता है।

मा भैषीस्त्वं प्रकृतिमृदुले क्रूरनक्तञ्चरेभ्यो
मा मा प्राणान् जहि जनकजे भर्तृजीवातु भूतान्।
आगच्छामि प्रलयदहनोद्दामनाराचधन्यम्
धन्वं धुन्वन्हरिरिव हरन् हारहर्षं हरीष्टः।।१०७।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम स्वभाव से कोमल होती हुई भी क्रूर राक्षसों से मत डरना। हे जनकनन्दिनी! अपने प्राणपति मुझ राम के औषधि रूप अपने प्राण को मत छोड़ना। भगवान् शंकर के भी पूजनीय महाविष्णु साकेत बिहारी राम से अभिन्न मैं राम प्रलयकालीन अग्नि से उद्दण्ड बाणों की धन्यता का अनुभव करने वाले शार्ङ्ग धनुष को हिलाता हुआ शिव के सेवक रावण के हर्ष को समाप्त करने के लिए शीघ्र आ रहा हूँ।

यस्या भर्ता भुवनविदितो धन्विधूर्यार्चिताङ्घ्री
रक्षोऽम्भोरुड्ढिमकरशरादेवराश्चापि यस्याः।
यस्यास्तेजस्तरुणतपनस्तप्यमानस्त्रिलोक्याम्
तस्या भीः किं हरिवरवधूः कुक्कुरात् किं बिभेति।।१०८।।

गुञ्जन–अरे! श्रेष्ठ धनुर्धरों द्वारा जिसके चरण की पूजा की गई हो ऐसा त्रिभुवन प्रसिद्ध मैं (राम) जिसका स्वामी, राक्षस रूप कमलवन को नष्ट करने के लिए हेमन्त जैसे बाण वाले महाप्रातापी हैं, जिसके तीन-तीन देवर (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) जिसका तेज स्वयं सूर्य के समान तीनों लोकों में तप रहा है उसे कैसा भय? क्या सिंहिनी कुत्ते से डरती है?

मा शंकीष्ठा मयि निजकृते प्रीतिमल्पां सुमुग्धे
नाहं भद्रे निमिषमपि भो रागतस्ते विरज्ये।
सामर्थ्येऽपि क्षपयितुमरीन् कालमत्र प्रतीक्षे
शोचत्यब्धौ विपदि सहसा ना सदा शीघ्रकारी।।१०९।।

गुञ्जन–हे भोले स्वभाववाली सीते! अपने लिए मुझमें प्रेम की अल्पता की शंका कभी मत करना। हे कल्याणि! मैं एक क्षण भी तुम्हारे राग से विरक्त नहीं हो सकता। पूर्ण सामर्थ्य के होने पर भी शत्रुओं का संहार करने के लिए यहाँ समय की ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। क्योंकि सहसा शीघ्र कार्य करने वाला मनुष्य सदैव विपत्ति के सागर में डूबा हुआ शोक करता ही रहता है।

मद्बाणाग्नौ शलभसुलभं शीघ्रमापद्यभावम्
रक्षो लोको लुलितविभवो भूतिमैत्रीं गमिष्यन्।
नाराचानां विमदमरुतां लक्ष्मणप्रेषिततानाम्
रातारो मे सपदि शरणास्त्वामिवेन्द्राय सौम्याम्।।११०।।

गुञ्जन–मेरे बाणरूप अग्नि में शीघ्र ही शलभ बनकर जलता हुआ, शंकर भगवान् की विभूति की मित्रता को प्राप्त होने वाला राक्षस समूह अपने विभव से हीन हो जाएगा। वायु को भी मदरहित करने वाले लक्ष्मण द्वारा फैंके गए बाणों को अपना रक्षक मानते हुए राक्षस, इन्द्र को अर्पित की जाने वाली सुधा की भाँति तुमको मुझे समर्पित कर देंगे।

यावद्वृत्तं तव न सुभगे ज्ञायते केनचिद् वै
तावत् कर्तुं किल न सुशकः संघटः सैनिकानाम्।
जानानोऽपि त्वदवनविधिं लोकमर्यादयाहं
बद्धो बिभ्रन् नरतनुमहो गूढसत्वो विभामि।।१११।।

गुञ्जन–हे सुभगे! जब तक किसी माध्यम से तुम्हारा समाचार नहीं मिल जाता तब तक बानरी सेना का संघटन मेरे लिए सुखसाध्य नहीं होगा। तुम्हारी प्राप्ति की विधि जानता हुआ भी मानव शरीर धारण करने के कारण लोकमर्यादा से बंधा हुआ मैं अपने ऐश्वर्य को छिपाकर ही दृष्टिगोचर हो रहा हूँ।

त्वय्यासक्तोऽप्यहमनलसो देवि किंकृत्यमूढो
गूढोत्साहः सखि सशरदा वर्षया भग्नहर्षः।

छन्नाकाशे स्तनति जलदे नृत्यति व्यालशत्रौ
सीदज्जत्रुर्विरह विकलस्त्वद् विहीनो बिभेमि।।११२।।

गुञ्जन–हे देवि! तुम में आसक्त और आलस्य रहित होता हुआ भी मैं, शरद ऋतु की सखी वर्षा के कारण किं कर्तव्यविमूढ छिपे हुए उत्साह वाला और भग्न हर्ष अर्थात् प्रसन्नता से रहित हो चुका हूँ। आकाश को ढंकने वाले बादल के गरजते समय सर्प के शत्रु मयूर के नाचते रहने पर मेरा अस्थिपंजर भी पीड़ित हो रहा है विरह से व्याकुल मैं तुमसे दूर रहकर डर रहा हूँ।

अन्तर्धाय प्रकटिततनुर्व्योम्नि सौदामिनीयम्
स्मेरास्यायास्तव किल दतां सौभगं स्मारयन्ती।
झिल्लीरावास्तव चरणयोर्नूपुरैस्पर्धमाना
वर्षाकालो विरहिणमहो ग्रीष्मवन्मां दिधक्षुः।।११३।।

गुञ्जन–हे सीते! आकाश में छिपकर प्रकट होती हुई यह बिजली मुस्कुराते मुख वाली तुम्हारी दन्तावली का स्मरण कराती रहती है। ये झिल्लियों के स्वर तुम्हारे चरणों में पहने हुए नूपुरों से स्पर्धा करते हैं। अहो! यह वर्षाकाल मुझ विरही को ग्रीष्म की भाँति जलाना चाह रहा है।

मन्दं मन्दं चलति मलयो मारुतश्वासितस्ते
नीलं नीलं लसति गगनं कुन्तलं ते यथैव।
पर्णात् पर्णात् पतति पयसो बिन्दुरश्रं यथा ते
वर्षाकाले सकलमपि मे त्वत्स्मृतींष्टं विभाति।।११४।।

गुञ्जन–हे सीते! यह मलय समीर धीरे धीरे तुम्हारे श्वास के ही समान सुगंधित चल रहा है। यह नीला–नीला गगन तुम्हारे नीले बालों के समान ही सुन्दर लग रहा हैं। पत्तों–पत्तों से छन–छनकर गिरता हुआ जल बिंदु मानों तुम्हारा आंसू ही हैं। वर्षा काल में सबकुछ मुझे तुम्हारे स्मरण में अनुकूल ही प्रतीत हो रहा हैं।

पी पी रामं रटति रमणी चातकस्यानुवेलं
स्वान्तेऽशान्ते त्वदधरसुधा तर्षमावर्धयन्ती।
मेघच्छन्ने दि्वस इषुभिस्ताडयन्मीनकेतु-
र्मा मव्यग्रोरुजति नितरां धन्विनं धैर्यसेतुम्।।११५।।

गुञ्जन-ये देखो मेरे शान्त अन्तःकरण में तुम्हारी अधरसुधा की प्यास तीव्र करती हुई यह चातकी मुझ राम को पीपी (पियो पियो) ध्वनि निरन्तर सुनाती रहती हैं। तुम्हारा स्मरणात्मक काम बादल से घिरे हुए दिन में धैर्य के सेतु मुझ धनुर्धर को भी तुम्हारे संस्मरणों के बाणों से अत्यन्त घायल करता रहता है।

वर्षावार्भि प्रगुणपयसा प्लाव्यमाना सवेगं
धारासारै सपदि सरितः सागरं श्लेष्टुमुत्काः।
एकैव त्वं विषमविजने काननेऽकैकसिन्धुम्
क्रन्दन्तं मां भुजतरलिका नो परीरीप्ससे किम्।।११६।।

गुञ्जन-हे सीते! वर्षाकालीन जलों से प्लावित होती हुई नदियाँ अपने धारा प्रवाहों के साथ अधिक जल वाली होने के कारण वेगपूर्वक सागर से मिलने के लिए उत्सुक हो रही हैं। किन्तु तुम अकेली होकर भी इस भयंकर निर्जन वन में रहने वाले दुःख के सागर, रोते हुए मुझ राम को अपनी भुजारूप तरंगों से आलिंगन करने की इच्छा क्यों नहीं कर रही हो?

एषश्चन्द्रो वियति पिहितो वारिदै पूर्णिमायाम्
छन्नज्योतिः किमपि किमपि द्योतते प्रौष्ठपद्याम्।
स्नातायास्ते चिकुरनिकरैराननं छाद्यमानम्
मन्दं मन्दं स्मितरदलसज्योस्नयेवेक्ष्यमाणम्।।११७।।

गुञ्जन-हे सीते! यह चंद्रमा भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन बादलों से ढका हुआ अपनी छिपी हुई ज्योति के कारण कुछ कुछ प्रकाशित हो रहा है जिस प्रकार स्नान करके आई हुई तुम्हारे घुँघराले बालों से ढका हुआ मन्द-

मन्द मुस्कुराने के व्याज से दाँतों की कान्ति से जगमगाता हुआ तुम्हारा मुखमण्डल दिखता है।

एतद्व्योमन्युदजनयने विज्यमाहेन्द्रचापं
नानारागैलसदनुपमं सद् बलाकं विभाति।
मत्सामीप्ये विविधकुसुमैर्मञ्जु सीमन्तमीड्यं
त्वद्वक्त्राम्भोरुहमिव शुभे मौक्तिकालक्तकान्तम्।।११८।।

गुञ्जन–हे कमलनयनी सीते! अनेक रंगों से चित्र विचित्र बकपंक्तियों से मण्डित बिना डोरी का यह इन्द्रधनुष आकाश में उसी प्रकार सुन्दर लग रहा है जैसे मेरे समीप अनेक पुष्पों से सुसज्जित तुम्हारे मुखकमल की शोभा से युक्त मोतियों की माला और आलक्त की कान्ति से मण्डित तुम्हारा सुन्दर केश का जूड़ा सुशोभित होता है।

राकाकान्तं वनदपिहितं नाप्नुवन्भाद्रपद्याम्
चीत्काराणां करुणमयुतैः पूरितः पूर्णिमायाम्।
क्षुत्तृट्क्लान्तः प्रबलमनलं चन्द्रबुद्धिश्चकोरः
खादन्नास्तेऽहमिव विरही विस्फुलिङ्गं शुगग्नेः।।११९।।

गुञ्जन–बादल से ढक जाने के कारण भाद्रपद पूर्णिमा के चन्द्र का दर्शन न प्राप्तकर करोड़ों चीत्कारों से पूर्ण यह चकोर भूखप्यास से व्याकुल होकर प्रबल अग्नि को ही खा रहा है। जैसे तुम्हारा विरही मैं राम आज शोकाग्नि के अंगार खा रहा हूँ।

वर्षा संन्ध्या समयसलिलासारसंक्लिन्नपक्षा
नीडेष्वेतेविहगपतयः पक्षगूढाः प्रियाणाम्।
कूजं कूजं कलकलरवं रम्यरात्र्यां रमन्ते
रामस्त्वेको विरमति सुखात् दूरितः स्वाञ्चलात्ते।।१२०।।

गुञ्जन–हे सीते! वर्षा काल की सन्ध्या समय के जल के प्रवाह से गीले हुए पंखों वाले ये सुन्दर पक्षीगण घोंसलों में अपनी प्रियाओं के पंखों

में छिपे हुए सुन्दर वाणी में बोल-बोलकर सम्पूर्णरात आनंद में रमते रहते हैं। इस समय केवल राम ही तुम्हारी अंचल छाया से दूर होकर सुख से विरत हो रहा है।

वर्षाकाले गतवति लसद् व्योमचन्द्रोडुसूर्ये
व्यभ्रे शुभ्रे सुखदसरदोत्सारिते ध्वान्तकष्टे।
पक्वे शस्ये सरसि विकसत पद्मरोलम्बपुञ्जे
कर्तोद्योगं सपदि भवती प्रापणे लब्धलक्ष्य:।।१२१।।

गुञ्जन-हे सीते! वर्षा काल के चले जाने पर आकाश के निरभ्र स्वच्छ और सूर्य चंद्र तारागणों से सुशोभित हो जाने पर सुन्दर शरद द्वारा मेघजनित अन्धकार के नष्ट कर दिए जाने पर फसल के पक जाने पर तालाबों में खिले हुए कमल पर भौरों के मडरा उठने पर सैन्य संगठन का लक्ष्य प्राप्त करके मैं (राम) आपकी प्राप्ति का अवश्य उद्योग करूँगा।

स्वात्यां पीताम्बुधरसलिले सौम्यसारंगरङ्गे
शाम्यत्तर्षे मुदितदयितादत्तहर्षप्रकर्षे।
गुञ्जद् भृङ्गे शरदि शशिनोत्तालतुङ्गत्तरंगे
सिन्धौ बन्धुस्तपनजनुषः शीघ्रमायामि सुभ्रूः।।१२२।।

गुञ्जन-हे सीते! स्वाति नक्षत्र के आने पर चातर्क के बादल का जल पी लेने पर उसकी पिपासा के शान्त हो जाने पर और चातकी द्वारा उसे प्रसन्न कर दिए जाने पर भ्रमर के गुंजायमान हो जाने पर और चंद्रद्वारा शरद काल में समुद्र के तरंगायित कर दिए जाने पर मैं सुग्रीव का मित्र राम तुम्हारे पास शीघ्र आ रहा हूँ।

भास्वद् भानौ नलिनिदयिते चक्रवाके सुवाके
द्वन्द्वीभूयप्रकटितरतौ साधु संक्रीडमाने।
लब्धोद्योगे कृषकनिकरे सैरिके सीरकेतोः
पुत्री प्राप्तौ सपदि भंवितास्याप्त नूलप्रयत्न:।।१२३।।

गुञ्जन–हे सीते! कमलिनी के प्राण वल्लभ सूर्य नारायण की किरणों के प्रखर हो उठने पर सुंदर बोलने वाले चक्रवाक दम्पति के इकट्ठे होकर प्रेम प्राकट्य के साथ पूर्ण रूप से प्रेम क्रीड़ा में निरत हो जाने पर और किसानों में तथा हल चलाने वालों के अपने-अपने कार्य में लग जाने पर मैं (राम) तुम जनकराज की पुत्री की प्राप्ति के लिए शीघ्र नए प्रयत्न प्रारंभ करूँगा।

त्वदृङ्मित्रे ममतनुरुचौ खञ्जने कन्दकान्तौ
प्रीत्या याते विशद शरदं साध्वि सत्कर्तुकामे।
प्राप्ते काले सुजनसुकृते मञ्जुमूर्तौ यथैते
प्राप्ता प्राचीमिव रविरहं राक्षसध्वान्तहारी।।१२४।।

गुञ्जन–हे सीते! परिणाम काल में उपस्थित मूर्तिमान् सुजनों के पुण्य की भाँति तुम्हारे नेत्र के मित्र तथा मेरे शरीर के समान शोभावाले, बादल के समान सुन्दर, खञ्जन पक्षी के स्वच्छ शरद को सम्मानित करने की इच्छा से प्रीतिपूर्वक उपस्थित हो जाने पर पूर्व दिशा में सूर्य की भाँति राक्षस रूप अन्धकार का हर्ता मैं (राम) तुम्हारे पास उपस्थित हो जाऊँगा।

गङ्गाद्यासु प्रतिहतमलास्वाप्तहंसोदकासु
स्वैरं दर्यां निनदति हरौ हर्षिते हारिणे ये।
राकाधीशे क्षपितशमले बद्धदृष्टौ चकोरे
त्वत् प्राप्तयर्थं सुघटितचमू राम एष्यामि शीघ्रम्।।१२५।।

गुञ्जन–गंगा आदि नदियों के निर्मल और हंसोदका अर्थात् हंस द्वारा पेय, सुंदर जल वाली हो जाने पर, गुफा में स्वच्छन्द रूप से सिंह के गरज उठने पर, हरिण शावक के प्रसन्न हो जाने और निर्मल शरद पूर्णिमा के चन्द्र पर चकोर के बद्ध दृष्टि हो जाने के समय तुम्हारी प्राप्ति के लिए वानरी सेना का संघटन करके मैं राम शीघ्र आ रहा हूँ।

पद्मामोदाकलितमधुपस्वच्छखेलज्जलेषु
स्फाटिक्यं भो जनितविमलस्फीत मुक्तामयेषु।
व्यभ्राकाशे शरदुडुपति प्रांशु राजन् निशासु
प्राप्तास्मि त्वां हरिरिवसुधां भग्नलंकेशदर्पः।।१२६।।

गुञ्जन–हे सीते! स्फटिक मणि के समान जल में उत्पन्न स्वच्छ मोतीमय हुए कमलों की सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमरों के कारण निर्मल बहते हुए जलों से युक्त जलाशयों के हो जाने पर आकाश के बादल से रहित हो जाने पर शरद चंद्र की सुन्दर किरणों से रात्रियों के जगमगा उठने पर, अमृत को प्राप्त किए हुए इन्द्र की भाँति मैं भी रावण का अहंकार समाप्त करके तुम्हें प्राप्त कर लूँगा।

संजाग्रत्यां शरदि सुषमा माधुरी चोरितान्तर
गूढध्वान्ते शशिनि विभया भात्युदन्ते दिगन्ते।
प्रातर्भास्वद् भवकरकरोत्फुल्लपद्मेतडागे
हन्तास्म्यर्कः किल शरकैस्त्वद्धरध्वान्तमारात्।।१२७।।

गुञ्जन–शरद ऋतु के विराजमान रहने पर सुषमा की माधुरी से नष्ट किए हुए अन्तस् में छिपे अन्धकार के नष्ट होने से चन्द्रमा के निष्कलंक हो जाने पर तथा दिव्य प्रकाश से इतिहास के भी निर्मल हो जाने पर एवं दिगन्त के भी सुशोभित हो जाने पर प्रातःकाल उदित हुए सूर्यनारायण की किरणों द्वारा विकसित कमलों से सरोवरों के पूर्ण हो जाने पर मैं (राम) तुम्हारे अपहर्ता रावणरूप अन्धकार को सूर्य के समान अपनी बाण किरणों से शीघ्र नष्ट कर दूँगा।

दोषा दोषाकरकरसुधा प्रोल्लसत्कैरवेषु
द्राक् पत्रान्तदुरितसुषमा कौमुदी केषु सत्सु।
शस्यैर्लूनैः किल परिवृते भूतले लब्धयोगः
प्रह्वैर्युक्तः कपिवरभटैरेमि रक्षः कृतान्तः।।१२८।।

गुञ्जन–चन्द्रमा की सुधामयी किरणों से खिले हुए कुई से युक्त रात्रियों के हो जाने पर एवं शीघ्र ही पत्तों के बीच से स्फुरित परमशोभामय चन्द्रिका से युक्त वातावरण के हो जाने पर, पृथ्वी के कटी हुई फसलों से घिर जाने पर, सुन्दर विजय मुहूर्त योग को प्राप्त करके, विनीत वानर भटों के साथ राक्षसों का काल मैं राम आ रहा हूँ।

भिक्षां याते दिशि दिशि परिव्राजके ब्रह्मचारि-
ण्युच्चैर्वेदं पठति विजये प्रस्थिते भूमिपाले।
उद्योगार्थं व्रजति वणिजि व्यापृते कर्मणि स्वे
साकं मर्कैर्दिगिभशिरसं दण्डयन् प्रैमि लंकाम्।।१२९।।

गुञ्जन–भिक्षा लेने के लिए संन्यासियों के भिन्न–भिन्न दिशाओं में चले जाने पर, ब्रह्मचारियों के उच्च स्वर से वेदाध्ययन प्रारंभ कर देने पर, विजय यात्रा के लिए राजाओं के प्रस्थान कर देने पर, वैश्यों के उद्योगार्थ भ्रमण करने तथा अपने–अपने कर्म में लग जाने पर मैं भी वानरों के साथ दशमुख रावण को दण्ड देने के लिए लंका के लिए शीघ्र प्रस्थान कर रहा हूँ।

आयातायां शरदि गगने तारका सुप्रसन्ने
शान्ते झञ्झा झडितपवने धावितायाञ्च धूलौ।
कर्तुं पूजां निशिचरपतेश्चण्डिकायाशिरोभि-
र्लंकामेष्यामथ जलनिधौ बद्धसेतुः ससैन्यः।।१३०।।

गुञ्जन–हे सीते! शरद ऋतु के उपस्थित होने पर आकाश में तारागणों के प्रसन्न हो जाने पर झंडा से उद्धत वायु के शान्त हो जाने पर, धूलि के धुल जाने पर, राक्षसराज के शिरों से चण्डिका देवी की पूजा करने के लिए मैं राम समुद्र पर सेतु बाँधकर वानरी सेना के साथ लंका पर आक्रमण करूँगा।

जानामि त्वां क्षणमपि मया विप्रयुक्तां कथञ्चित्
प्राणान् धर्तुं ननु नहि सतीं पारयन्तीं परेष्टाम्।

दूरीभूतामिव सुमणिना भोगिनी मर्तुकामां
किं वा कुर्यां तदपि बलवान् क्रूर एवात्र कालः।।१३१।।

गुञ्जन–मैं यह जानता हूँ कि जैसे मणि से दूर हुई सर्पिणी एक भी क्षण नहीं रह पाती उसी प्रकार मुझ परमात्मा की भी इष्ट, सतीशिरोमणि तुम मुझसे वियुक्त होकर एक भी क्षण अपने प्राणों को नहीं धारण कर सकतीं पर करूँ क्या? यहाँ क्रूर काल ही बलवान् है। अर्थात् हम दोनों को समय की मर्यादा में रहकर सब कुछ सहन.करना पड़ेगा।

मत्सीं विग्नामिव विलुलितां वारितो नाप्नुवन्तीम्
स्वं भैषज्यं मृतिमतितरां श्रेयसीं मन्यमानाम्।
जाने सीतामरिपुरगतां मद्वियोगासहिष्णुम्
गूढैश्वर्यो दिनमनुसरन् दुर्विपाकस्य भुञ्जे।।१३२।।

गुञ्जन-जिस प्रकार जल से बिछुड़ी हुई उद्विग्न मछली अपनी औषधि रूप जल को न प्राप्त करके मृत्यु को ही अतिश्रेष्ठ मान लेती है। उसी प्रकार शत्रु के नगर में गई हुई तुम सीता मेरे वियोग को नहीं सहन कर पा रही होगी। यह जानता हूँ पर क्या करूँ मैं भी समय के अनुसार ऐश्वर्य को छिपाकर दुष्परिणाम को ही भोग रहा हूँ।

सीते सीते सुभग सुषमे मैथिली वैजयन्ति-
स्वस्वश्रूणां गतमलमनश्चातकस्वाति वर्षे।
हर्षोत्कर्ष प्रसविनि महामोदकैशोरकान्ति-
श्लिष्टे क्लिष्यस्यहह विजने कुक्कुरीभिर्मृगीव।।१३३।।

गुञ्जन–हे सीते! हे हल रेखा की लक्ष्मी! पृथ्वी की शोभा, हे मैथिलि भूमि की कीर्ति वैजयन्ती, हे अपनी सासुओं के निर्मल मन रूप चातकों के लिए स्वाति नक्षत्र की वर्षा, हे हर्ष के उत्कर्ष की जन्मभूमि, हे महान् मोद एवं कैशोरभाव की कान्ति से युक्त जनकंनन्दिनी अहो आज तुम अशोक वन के एकान्त में कुतियों से घिरी हुई हरिणी की भाँति दुखी हो रही हो।

एकः सीताविरहजलधिर्गर्जतिक्रूरकर्मा
भूयोभीमो लवणवनधिर्योजनानां शतानाम्।
द्वावप्येतावनघ उदधी केन मार्गेण तीर्त्वा
त्वद् वक्त्राम्भोरुह रसमहो नेत्रपात्रैः पिबेयम्।।१३४।।

गुञ्जन–हे निष्पाप सीते! एक ओर तो क्रूरकर्मा तुम्हारा विरह–समुद्र गरज रहा है। तो दूसरी ओर सौ योजनों में व्याप्त यह नमक का सागर। अरे इन दो दो महासागरों को किस मार्ग से पार करके मैं अपने नेत्र पात्रों से तुम्हारे मुख कमल के मकरन्द का पान करूँ।

चित्रीभूतं कपिवरवपुः प्रेक्ष्य सौमित्रि क्लृप्तं
सीते भीता स्म भवसि भयान्मातुरुत्सङ्ग सङ्गा।
सात्वं सम्प्रत्यति विकटदृग् वक्त्र नाशा निशाटी–
दृष्ट्वा प्राणान्किमिह धरसे निर्घृणो हा विधाता।।१३५।।

गुञ्जन–हे सीते! जो तुम लक्ष्मण द्वारा चित्रित किए हुए वानर का शरीर देखकर भयभीत हुई अपनी सासू माँ की गोद में छिप जाती थीं वही तुम इस समय अत्यन्त भयंकर आँखों तथा टेढ़ी नासिकाओं वाली राक्षसियों को देखकर अपने प्राणों को कैसे धारण कर रही हो। हाय विधाता तू बहुत निष्करुण है।

या वै श्रुत्वा श्रुतिपटभिदं भीषणं सिंहनादं
सीतारण्ये मम हृदिगता वेपते स्मातिभीता।
सैवेदानीं दशमुख हृतातर्जनं राक्षसीनाम्
किंवा श्रोतुं प्रभवति विधे निर्जने नीरजाक्षी।।१३६।।

गुञ्जन–हे विधे! जो हमारी सीता, कान के पर्दे फाड़ने वाले भयंकर सिंहनाद सुनकर मेरे हृदय से लिपटकर भय से काँप उठती थी। वही इस समय रावण के नगर में भयंकर राक्षसियों की तर्जना कैसे सुन सकती होंगी उस निर्जन में कमलनेत्र सीता की क्या परिस्थिति होगी?

यायोध्यायां जननि सविधे वाग्भिरत्युज्वलाभि-
र्नैच्छत् वस्तुं क्षणमपि तदा साधु सीता नु नीता।
दूरीभूता मृगमृगयुतः साम्प्रतं सा मृगाक्षी
क्षामा श्यामा श्वसिति किमहो कोटिकूटे त्रिकूटे।।१३७।।

गुञ्जन–अहो! वनवास काल में माता जी के सामने अत्यन्त उज्ज्वल वाणी से मेरे द्वारा अनुनय करने पर भी जो सीता एक क्षण भी अयोध्या में रहना नहीं चाहती थीं। इस समय वही मुझ मृग के मृगयु अर्थात् हरिण के आखेटक राम से दूर हुई मृगनयनी सीता, दुर्बल षोडश वर्ष की लगने वाली जानकी करोड़ों पाप कूटों वाले त्रिकूट पर्वत पर कैसे जी रही होगी?

चारित्र्यं स्वं निशिचरपतेस्त्रायमाणानवद्यं
शोभां धत्ते हवि रिवशुभां ध्वांक्षतो धारणेयी।
यद्वा सोमं ग्रहण समये राहुतो रोहिणीश
ज्योत्स्नेवासौ वियति वितमा भूमिजा भाति भव्या।।१३८।।

गुञ्जन–अहो! कौए से हवि की रक्षा करती हुई की भाँति सीता जी रावण से अपने निर्मल चरित्र की रक्षा करती हुई शुभशोभा को धारण कर रही हैं। अथवा ग्रहण के समय राहु से अमृत की रक्षा करती हुई आकाश में अन्धकार रहित चन्द्रमा की ज्योत्सना की भाँति भव्य भूमि नन्दिनी दीप्त हो रही हैं।

या वै पूर्वं कनकभवने चारुशीलामुखाभि
र्गायन्तीभिर्मधुर मधुरं बोध्यते स्म प्रभाते।
सैषा सम्प्रत्यति करटवाक्क्रूररक्षोवधूभि-
र्धूम्राक्षीभिर्मरणशरणाभीषिता बुध्यते हा।।१३९।।

गुञ्जन–अहो! जो मेरी सीता पहले कनकभवन में प्रभात काल में अत्यन्त मधुर प्रभाती गाती हुई चारुशीला आदि सखियों द्वारा जगाई जाती

थीं वही सीता इस समय कौए की भी वाणी को तिरस्कृत करने वाली धूम्रनेत्रों वाली क्रूर राक्षसियों द्वारा डराई धमकाई जाती हुई जगती हैं।

क्रूरब्रह्मन् गरलसरसि प्राक्षिपो मानसीयां
हंसीं हा हा हरसि हरिभूः सोमवल्लीं विषोदम्।
नेतुं कांक्षस्यथ सुरगवीं नारकाणां तरूणाम्
घोरारण्यं न खलु चतुरश्यातुरास्यं दधानः।।१४०।।

गुञ्जन–अरे क्रूर ब्रह्मा! तुमने मानस की राजहंसिनी को विष के तालाब में फेंक दिया। अरे हरिभू विष्णुपुत्र हाय–हाय तुम अमृतलता को विष के जल में रोपित कर रहे हो। अरे तुम कामधेनु को नरक के वृक्षों के घोर वन में ले जाना चाह रहे हो। चतुर्मुख धारण करते हुए भी वस्तुतः तुम चतुर नहीं हो।

मा भैषीस्त्वं विगतसुकृताद्भग्नचारित्र्यशीला-
ल्लंका भर्तुर्भुवनजननस्थाननाशादि शक्ते।
छायां स्प्रष्टुं प्रभवति न वै विश्रवो वंश वह्नि-
र्दूराद् देव्याः कुमतिरिव ना नास्तिको ब्रह्मविद्याम्।।१४१।।

गुञ्जन–हे सीते! पुण्यरहित तथा जिसके चरित्र और शील नष्ट हो चुके हैं ऐसे लंकापति रावण से तुम मत डरो। क्योंकि तुममें सम्पूर्ण भुवनों के जन्म, स्थिति और नाश की शक्ति है। जिस प्रकार नास्तिक दुर्बुद्धि मनुष्य ब्रह्मविद्या को स्पर्श नहीं कर पाता उसी प्रकार महर्षि विश्रवा के वंश रूप, बाँस के वन में जन्मा हुआ अग्नि रूप रावण तुम्हारी छाया को दूर से भी स्पर्श नहीं कर सकता।

मात्याक्षीस्त्वं जनकसुकृतप्राप्तदेहं धराजे
इक्ष्वाकूणां कुलकुलमणिं रामसर्वस्वभूतम्।
दोष्णो शक्तेर्निकषमिव मे यत्नतस्त्रातपूर्वम्
त्रय्याज्ञानं तिसृभिरिवमन्मातृभिः सद्दशाभिः।।१४२।।

गुञ्जन–हे पृथ्वीनन्दिनी! जनक जी के सुकृत से प्राप्त अपना वह शरीर तुम मत छोड़ना जो इक्ष्वाकुवंशियों के लिए श्रेष्ठ कुल वधूरूप रत्न है। और जो मुझ राम का सर्वस्व है। जो मेरी भुजाओं की शक्ति की कसौटी जैसा था और जिसे मेरीं माताओं ने वनवास के पहले उसी प्रकार यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा जैसे श्रवण मनन निदिध्यासन रूप तीनों सुन्दर दशाएँ वेदत्रयी के महावाक्यज्ञान को सुरक्षित रखती हैं।

माकार्षीस्त्वं विरहदहने भस्मशेषं शरीरम्
मत्सर्वस्वं धरणि रमणी सन्मणिं शीलशोभम्।
यत्कौसल्या नलिननयने पुत्तली साम्यमेत्य
त्रातं पूर्वं सुकृतममलं संभृतं मैथिलानाम्।।१४३।।

गुञ्जन–हे सीते! जो मेरा सर्वस्व तथा पृथ्वी रूप कुलांगना का सुन्दर रत्न है जो शील की शोभा से सम्पन्न है तथा जो कौसल्या माँ के कमल नेत्र की पुतली बनकर उन्हीं माता श्री द्वारा वनवास के पूर्व मैथिलों के निर्मल पुण्य के रूप में पाला गया, ऐसे अपने दिव्य शरीर को तुम विरहाग्नि में भस्म मत करना।

मा हार्षीस्त्वं विवुधललना लोभनीयं सुधैर्यम्
शौर्येश्वर्यं सुभटतिलकोदवेजकं विग्नवीर्यम्।
येनाकारि त्रिपुरमथनं कार्मुकं क्रूरकर्म
क्रीडाब्याजाद्धतबलमदं पक्षिराजा यथाहिः।।१४४।।

गुञ्जन--हे सीते! तुम शौर्यरूप ऐश्वर्य से युक्त श्रेष्ठ सुभटों को उद्वेलित करने वाले एवं पराक्रम को भी भयभीत करने वाले, देवबन्धुओं को भी लुभाने वाले अपने लोकोत्तर धैर्य को मत छोड़ो। तुम्हारे जिस धैर्य द्वारा त्रिपुरासुर का नाशक क्रूरकर्म करने वाला शिवधनुष बालक्रीडा के बहाने से गरुड़ द्वारा सर्प की भाँति बल और मद से रहित कर दिया गया था।

माधाक्षीस्त्वं दशमुखकुलं क्रोधकालानलोद्य-
ज्ज्वालामालाकुलितमहसा विश्वसंहारकेण।
पौलस्त्यासृग् रसिकरसना मामका देवि बाणा
जाग्रत्तर्षाः कुवलयदृशा नो निराशाः क्रियन्ताम्।।१४५।।

गुञ्जन–हे देवि! अपने क्रोध रूप कालाग्नि से प्रकट ज्वालमाला से व्याप्त तेज वाले, विश्वसंहारकर्ता स्वभाव से रावणकुल को भस्म मत कर देना। रावण के रक्त की रसिक जिह्वा वाले तीव्र पिपासा से युक्त मेरे बाण, कमलनयनी तुम सीता के द्वारा निराश न किए जाएं।

मा द्राक्षीस्त्वं मयि सुवदने स्वां प्रति प्रीतिशून्यं
लब्धोपेक्षं वितरमनसं हार्दहीनं कुभावम्।
चातुर्मास्य प्रणिहितमना नैव जानन् प्रवृत्तिं
भग्नोद्योगोऽहमकपिबलो मानवः कालवश्यः।।१४६।।

गुञ्जन–हे सुमुखि! मुझमें अपने प्रति प्रीति शून्य, उपेक्षापूर्ण वैराग्ययुक्त मन वाला, हृदय की भावना से हीन कुभाव के दर्शन मत करना क्योंकि मैं चातुर्मास्य में एकाग्र होने के कारण तुम्हारे संबंध में कुछ भी न जानने के उद्योग से रहित और वानरी सेना के अभाव से युक्त था। मनुष्य तो काल के ही वश में रहता है।

मा स्राक्षीस्त्वं स्रजमविरलां कञ्जदृग्भ्यां द्रगिष्टे-
सूष्माश्रूणां विमदितमहामञ्जुमुक्ता शराणाम्।
मत्कोदण्डोच्छलितविशिखैर्वृक्ण मूर्ध्नां रिपूणाम्
माला शीघ्रं नयनसरसां स्रक्ष्यते स्त्रीभिरुच्चैः।।१४७।।

गुञ्जन–हे मेरे नेत्रों की इष्ट देवी! सुन्दर मोतियों की लड़ियों को भी मदहीन बनाने वाले अपनी गरम आँसुओं की घनी माला मत बनाओ अब तो अतिशीघ्र ही मेरे धनुष से उछलते हुए नुकीले बाणों द्वारा कटे शिरों वाले

शत्रुओं की विधवा पत्नियों द्वारा ही अपने नयनाश्रुओं की माला बनाई जाएगी।

मा हासीस्त्वं हरिणनयने जीविताशां कदाचि-
ज्जीवञ्जीवो जगतिशतशो भद्रमूलानि पश्येत्।
क्षिप्रं पङ्केरुहकररुहैर्देवि ते वक्त्रचन्द्रम्
स्पर्शं स्पर्शं ननु परिमृजन्मण्डयिष्येऽश्रविन्दून्।।१४८।।

गुञ्जन–हे मृगनयनी! तुम कभी भी अपने जीवन की आशा मत छोड़ना, क्योंकि जीता हुआ ही जीव संसार में सैकड़ों कल्याणों को देख सकता है। मैं शीघ्र ही अपने कर कमलों की अंगुलियों से तुम्हारे अश्रु बिन्दुओं को पोंछता हुआ तुम्हारे मुख चंद्र को बार–बार स्पर्श करके अलंकृत करूँगा।

विशेष–यहाँ कमल से चन्द्रमा का संयोग ही शृंगार है।

मा रासीस्त्वं कलित कलुषं दूषणं दूषणारौ
त्वद् वृत्यर्थं निहित हृदये साधने जागरूके।
रोदं रोदं रुदित नयनाम्भोरुहे त्यक्तनिद्रे
कोके कोकीरहित इव भो नक्तमुद्विग्न चित्ते।।१४९।।

गुञ्जन–हे सीते! रात्रि में चकवी से रहित चक्रवाक की भाँति उद्विग्न चित्त वाले रो रोकर के अश्रूपूर्ण नेत्र तथा निद्रा से हीन तुम्हारे ही प्राप्ति के लिए एकाग्रमन एवं साधन प्राप्ति में जागरूक मुझ दूषणराक्षस के शत्रु राम में दुर्भावनापूर्ण किसी दोष को आरोपित मत करना।

मायासीस्त्वं नृपतितनये जीवितेषान्निराशां
मत्तोऽमत्तात्कपिपतिवशोद्योग सैन्य प्रयाणात्।
संवृश्च्याहं रविकरसमैर्मार्गणैः पंक्तिमौले-
मूर्ध्नो मोघीकृतखलबलस्त्वानयेयं मुहूर्तात्।।१५०।।

गुञ्जन–हे राजपुत्री! जिसका प्रयत्न एवं सेना का प्रयाण सुग्रीव के ही वश में है ऐसे अपने प्राणपति अप्रमादी मुझ राम से निराश मत होना। मैं यथाशीघ्र सूर्य के समान तेजस्वी अपने बाणों से दशमुख रावण के शिरों को काटकर और राक्षसबल को विफल करके तुम्हें ले आने वाला हूँ।

यस्मादहनः कपटयतिना चोग्तिाया भवत्या
विश्लिष्टोऽहं मधुरमणितो विप्रयुक्तः फणीव।
तस्मादहनो जगदिदमहो काननं मे विभाति
नो तत् तत्वात् यदिह क सुखं चाननं नो त्वदीयम्।।१५१।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस दिन से कपटी संन्यासी के वेश में आए हुए रावण द्वारा चुराई हुई आप से, सुन्दर मणि से बिछुड़े हुए सर्प की भाँति मैं दूर हुआ, उसी दिन से यह संसार मुझे वन के समान प्रतीत हो रहा है। तत्वतः वह भी सत्य नहीं है, क्योंकि यहाँ क अर्थात् सुख का कारणभूत आपका आनन अर्थात् मुख ही नहीं है। तो फिर कानन कैसा?

विशेष– कं सुखस्वरूपं आननं मुखं यस्मिन् तत् काननम्।

स्निग्धापाङ्गं झषयुगलषत्तारकं कज्जलश्री
स्मेराम्भोजोपममभिमिलत्कुण्डलं कुन्तलाढ्यम्।
बन्धूकत्विड् विहसदधरं किञ्चिदुद्यत्कपोलं
सीता वक्त्रं विजित विधुकं कं क्व चापश्यतो मे।।१५२।।

गुञ्जन–हे सीते! भला तुम्ही बताओ। स्नेह भरे मधुर अपांग अर्थात् नेत्र के कोणों वाले दो मछलियों के समान सुन्दर पुतलियों वाले विकसित कमल के समान सुन्दर कुण्डलों के स्पर्श से अभीष्ट, लटकते घुंघराले बालों से सुशोभित काजल की शोभा से सम्पन्न बन्धूक अर्थात् दुपहरिया फूल के समान सुशोभित मुस्कान भरे अधरों वाले, उस कुछ उभरे हुए कपोलों वाले चन्द्रमा को जीतने वाले ऐसे सीतामुख को न देखते हुए मुझ राम के लिए सुख कहाँ।

नाऽहो भुञ्जे नहि निशि शये नो प्रभाते प्रबुद्धे
नाहं जृम्भे नच पुनरहं निः श्वसिम्याप्तशान्तिः।
नैनोन्मीले नलिननयने नैव नेत्रे निमीले
शून्योऽहं स्वं त्वदधरसुधापानहीनो हिनस्मि।।१५३।।

गुञ्जन–हे सीते! आपकी अधर सुधा के पान से रहित होकर मैं न तो दिन में भोजन करता हूँ न ही रात्रि में शयन करता हूँ और न ही प्रभात काल में जागता हूँ। न ही जमुहाई लेता हूँ और न ही शान्तिपूर्वक सुख का श्वास लेता हूँ। अपने कमल नयनों को न ही खोलता हूँ। और न ही नेत्रों को बन्द करता हूँ। मैं शून्य हो चका हूँ। अब तो अपने को केवल मार रहा हूँ।

कुञ्जेऽपित्वं त्वमसि विपिने त्वं गिरौ त्वञ्चदर्या-
माकाशे त्वं त्वमसिधरणौ त्वं जले त्वं स्थले च।
त्वं मत्पार्श्वे त्वमसि हृदये त्वञ्च पृष्ठे त्वमग्रे
सर्वं सीतामयमिदमहो कीदृशोऽद्वैतवादः।।१५४।।

गुञ्जन–हे सीते तुम कुंज में भी हो और वन में भी, तुम पर्वत में भी हो तुम गुफा में भी, तुम आकाश में भी तुम पृथ्वी में भी, तुम जल में भी हो तुम स्थल में भी, तुम मेरे पास भी हो तुम हृदय में भी हो, तुम पीछे भी हो तुम आगे भी। मेरे लिए सब कुछ सीतामय है। अहो! यह मेरे लिए कैसा अद्वैतवाद है। अद्वैतवादियों को जगद् ब्रह्ममय दिखता है पर मुझ राम को यह सीतामय भास रहा है।

स्वप्नेऽपि त्वं त्वमसि शयने जागरे त्वं जगत्यां-
त्वं त्वं वायौ त्वमसि दहने त्वं रसे रस्यरूपे।
त्वं खे नित्यं त्वमसि मनसि त्वं मतौ चात्मनि त्वं
चित्तेऽपि त्वं त्वमसि प्रकृतौ को ह्ययं ब्रह्मवादः।।१५५।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम मेरे स्वप्न में भी हो तुम मेरी सुषुप्ति में हो तुम

मेरी जाग्रत अवस्था में हो, तुम पृथ्वी में हो, तुम वायु में हो, तुम अग्नि मे हो और हे रस्य स्वादिनीरूप वाली तुम रस अर्थात् जल में हो तुम आकाश में नित्य रहती हो, तुम मन में हो। तुम बुद्धि में हो तुम अहंकार में हो तुम चित्त में हो किं बहुना तुम प्रकृति में हो। यह कौन सा ब्रह्मवाद है। जहाँ मुझ ब्रह्म की भी दृष्टि में तुम भास रही हो।

मन्दं मन्दं मलयनिलये वाति वाते विभाते
निःश्वासस्ते नसि ननु मया साधु जेघ्रीयमाणः।
प्रातर्भास्वत् किरणकलितं पल्लवं ताम्रमाम्रम्
सीते प्रीतस्त्वदधरधिया पातुमुच्चैः प्रधावे।।१५६।।

गुञ्जन–हे सीते! प्रातःकाल मलय से आने वाली मन्द मन्द वायु के चलने पर उसमें तुम्हारा निश्वास ही मैं बार–बार अपनी नासिका में पूर्णरूपेण सूंघता रहता हूँ। प्रातःकाल सूर्य की किरणों के मिलने से लाल–लाल आम्र के पल्लव को भी तुम्हारा अधर मानकर उसे पीने के लिए जोर से दौड़ पड़ता है।

प्रातः सीतेऽरुणिमनिरवेरन्घ्रिहस्ताधराणां
मध्याह्नेऽर्केऽप्यतिशयित सौदामिनी ज्योतिषस्ते।
प्रोद्यद्राका रजनिपिमुखं भावयन् पश्चिमायाम्
ध्यायन् सन्ध्या त्रितयमनघस्त्वन्मयं ह्याचरामि।।१५७।।

गुञ्जन–हे सीते! और कुछ न करता हुआ भी वेद धर्म की रक्षा हेतु त्रिकाल सन्ध्या मात्र करता हूँ वह भी आपके ध्यान की। जैसे प्रातःकाल सूर्यनारायण की अरुणिमा में तुम्हारे चरणहस्त और अधर का ध्यान करता हुआ, मध्याह्न के सूर्य में बिजली से भी ऊपर उठे हुए तुम्हारे लोकोत्तर तेज का और सायं सन्ध्या में उदित होते हुए चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की भावना करता हुआ तीनों सन्ध्याओं को तुम्हारे ही रूप में ध्यान करते हुए निश्चय और आदर के साथ सम्पन्न करता हूँ।

विशेष–अतिशयिता सौदामिनी यया तस्याः ज्योतिषः।

पद्मे! पद्मे सरसि शरदा हास्यमाने समाने
पादे सिंहे कटितटमहं ह्यूरुयुग्मं कदल्याम्।
विल्वे वक्षोरुहमहमुरःसत्तडागेसुकीरे
नासां चन्द्रे वदनमनघे त्वां विचिन्वे प्रकृत्याम्।।१५८।।

गुञ्जन–हे निष्पाप! गृहलक्ष्मी सीते! शरद ऋतु के द्वारा विकसित पूजा योग्य कमल में तुम्हारा चरण, सिंह में तुम्हारा कटितट, कदली में उरूयुगल, विल्व में वक्षोरुह, तालाब में हृदय, तोते में नासिका, चंद्रमा में मुख इस प्रकार तुम्हारे अंगों के उपमानों के माध्यम से मैं प्रकृति में तुम्हें ही ढूँढ़ता रहता हूँ।

कोक्यां प्रीतिं हरिणदयितायांदृशौ कीरपत्नयाम्
नासां वाचं श्रवणमधुरां मञ्जुलां कोकिलायाम्।
भृङ्ग्यां केशान् भुजगवनितायाञ्च सीमन्तवेशं
सर्वं देव्याः प्रकृतिनिहिते वस्तुनिव्याचिनोमि।।१५९।।

गुञ्जन–हे सीते! चकवी में आपकी प्रीति को, मृगी में आपके नेत्रों को, तोते की पत्नी में आपकी नासिका को, कोकिला में श्रवण सुखद मीठी तुम्हारी वाणी को, भ्रमरी में तुम्हारे केशों को, सर्पिणी में तुम्हारे सुन्दर जूड़े को किं बहुना प्रकृति में निहित वस्तुओं में मैं तुम्हारे भिन्न–भिन्न अंगों को ढूँढ रहा हूँ।

हा हा सीते जनकतनये हा किशोरि प्रिये मे
हा हा दद्भिर्विजितचपले हा महीमञ्जुपुत्रि!
हा कौसल्याप्रियतम वधूर्हा शुभे हा सुशीले
हा हा कस्मान्न भवसि पथि प्रार्थिता राघवाक्ष्णोः।।१६०।।

गुञ्जन–हा सीते! हा जनक की पुत्री! हा किशोरी! हा मेरी प्रिये! हा

दाँतों की शोभा से बिजली को जीतने वाली! हा भूमिनन्दिनी! हा कौशल्या की प्यारी पुत्रवधू! हा कल्याणमयी! हा सुन्दरशील वाली! हा हा! इतनी प्रार्थना करने पर भी तुम मुझ राघव के नेत्रपथ पर क्यों नहीं प्रकट हो रही हो?

कार्येदासीयस इतरथा गेहिनो गेहिनी मे
मन्त्रा नेहस्यमलमतिमन्मन्त्रिणी मन्त्रविज्ञा।
स्नेहोत्सर्गे त्वमथ जननी सम्मिता सम्मितस्वा
धर्मेपत्नी मयि जनकजे कं कमाकारमाप्था:।।१६१।।

गुञ्जन–हे जनकनन्दिनी सीते! तुम कार्य में दासी की भाँति आचरण करती हो और मेरे घर की व्यवस्था में गृहलक्ष्मी बन जाती हो। मन्त्रणा काल में गुप्त रहस्य जानने वाली सचिव बन जाती हो। स्नेह और त्याग के समय तुम मेरी माँ की भूमिका निभाती हो। धर्माचरण के समय मुझमें अपने स्व को सीमित करके मेरी पत्नी रहती हो। मेरे लिए तुमने कौन–कौन सा स्वरूप नहीं स्वीकारा।

आखेटान्मां किल परिवृतं स्वेदसंक्लेदितास्यम्
श्रान्त्या शुष्काधरकिसलयं बन्धनिर्मुक्तजूटम्।
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा कमलकरजैरञ्चलं बीजयन्ती
धत्से स्माद्धा श्रमविरहितं हाद्य कास्ति स्थितिर्मे।।१६२।।

गुञ्जन–हे सीते! जब मैं पहले मृगया विहार से लौटता और पसीने से मेरा मुख गीला हो जाता और परिश्रम के कारण मेरा अधर पल्लव सूखा हुआ रहता और मेरे जटाजूट का बन्धन खुला होता। इस प्रकार मुझे देखकर तुम अपने करकमल की उंगलियों से स्पर्श करके अञ्चल से बयार करती हुई श्रम रहित कर देती थीं। हाय! आज मेरी कैसी परिस्थिति है?

या मां व्यस्तं मुनिवर सभा स्वाह्निके स्वातिवेलं
सोढुं नास्म प्रभवसि रुषा सानुजं लम्भयन्ती।

सैवेदानीमशनरहितस्याशिनः पंचमं मे
हा हा किन्नो गृहिणि दयसे दैवमत्र प्रतीपम्।।१६३।।

गुञ्जन-हे सीते! जो तुम मुनियों की सभा में व्यस्त होने के कारण दैनिक कार्यों में मेरे द्वारा समय का अतिक्रमण कर दिए जाने पर भोजनादि में अतिकाल नहीं सहन कर पाती थीं और क्रोध से लक्ष्मण के सहित मुझको उपालम्भ देती थीं, कि आप को समय का ध्यान नहीं रहता। (लक्ष्मण! तुम अपने भ्राता श्री को समय पर फलाहर आदि के लिए क्यों नहीं ले आते। इत्यादि) वही तुम इस समय भूखे रहने वाले और पाँचवे दिन फलाहार का पाँचवाँ अंश लेकर समय बिताने वाले मुझ राम पर क्यों नहीं दया करती हो हे गृहणि! और कुछ नहीं इस समय विधाता ही मेरे प्रतिकूल है।

दूरं याते वनमवरजावल्लभेऽधीज्यचापे
प्रेम्णा हर्तुं तृणफलदलं कन्दमूलं कनिष्ठे।
विग्नाकालात्यय निगमतो देवरे वत्सलत्वा-
न्मां हिन्वाना किमु न दयसे साम्प्रतं लक्ष्मणस्य।।१६४।।

गुञ्जन-हे सीते! जो पहले तुम अपनी छोटी बहिन उर्मिला के पति तथा मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के धनुर्बाण लेकर तृण दल, फल और कन्दमूल फल लाने के लिए वन में दूर चले जाने पर दिए हुए समय के अतिक्रमण के कारण उद्विग्न होकर देवर लक्ष्मण पर वत्सला होने के कारण उनके पास मुझे भेज दिया करती थीं। इस समय उन्हीं लक्ष्मण पर तुम दया क्यों नहीं कर रही हो।

रक्षायां ते सुतमिव निजं लक्ष्मणं लब्धलक्ष्यो
व्यापार्याऽहं कनक कुरगं हन्तुकामः प्रयातः।
त्वञ्चाप्येनं मदनुसरणं चञ्चलत्वादकार्षी-
र्नूनं नारी भवति सविपत् प्राणनाथेऽप्रतीता।।१६५।।

गुञ्जन-हे सीते! अपने आखेट का लक्ष्य प्राप्त करके अपने पुत्र के

समान ही विश्वासपात्र लक्ष्मण को तुम्हारी रक्षा में नियुक्त करके मैं कनकहरिण को मारने की इच्छा से दूर चला गया और तुमने भी चञ्चल स्वभाव के कारण लक्ष्मण को मेरा अनुगामी बनाकर भेज दिया। वास्तव में अपने पति पर अविश्वास करने वाली नारी विपत्तिग्रस्त हो ही जाती है।

यद्यप्येषो कुरुतपरितस्त्वां स्वचापेन रेखा-
माचार्यो गामिव निगमगां प्रक्रियां शब्दतो वै।
तामुल्लंघ्योन्मथितमनसा रावणेनाहृतात्वं
शोचन्त्येवं नियतिमबला लङ्घितश्रौतमार्गा।।१६६।।

गुञ्जन-यद्यपि जिस प्रकार आचार्य, वाणी की रक्षा के लिए उसके चारों ओर नाम आख्यात उपसर्ग और निपात के माध्यम से वैदिक व्याकरण की मर्यादा कर देता है। उसी प्रकार लक्ष्मण ने तुम्हारे चारों ओर धनुष से रेखा खींच दी थी, परन्तु दुष्टता से दूषित मन वाले रावण की प्रेरणा से तुम उसे लाँघकर रावण द्वारा हरी गयीं। इसी प्रकार वेदमार्ग का उल्लंघन करके नारियाँ भाग्य को कोसती हुई दुःखी हो जाती हैं।

पित्रादेशादनुजदयिता सेवितोऽहं सुखेना-
वात्सं वर्षाण्यथ च दशभिश्चारु चत्वार्यरण्यम्।
मध्ये माद्यन्मनसि हरिणे लोभआविष्कृतस्ते
सीते सीदत्यवशमबला वल्लभे भूर्यपेक्षा।।१६७।।

गुञ्जन-हे सीते! पिता के आदेश से छोटे भाई लक्ष्मण और प्रियतमा तुम सीता के साथ मैं चौदह वर्षों के लिए सुखपूर्वक वन में निवास कर रहा था। किन्तु मध्य में ही मन को लुभाने वाले हरिण पर तुमने लोभ उत्पन्न कर लिया। सीते! जो अपने पति से आवश्यकता से अधिक अपेक्षा करती है वह नारी कष्ट भोगती ही है।

शून्ये शून्यां विजनविपिने प्राणभृद् देवराभ्यां
हीनां धारामिव सुहविषां मन्त्रशास्त्रस्वराभ्याम्।

रक्षोहार्षीदहह दयितां छद्मसंन्यासिवेषम्
नारीनालं स्वमवितुमसौ रक्ष्यपेक्षा हि योषा।।१६८।।

गुञ्जन–अहह! निर्जन वन में मुझ पति एवं देवर लक्ष्मण से रहित तुम सीता को कपट संन्यासी का वेश धारण करके राक्षस उसी प्रकार हर ले गया जैसे मन्त्र और स्वर से रहित हवि के स्वाहाकार को हरण कर लेता है। वस्तुतः नारी अकेले स्वयं की रक्षा नहीं कर पाती क्योंकि उसे तो रक्षक की अपेक्षा रहती ही है।

नालंघिष्यो यदि सुवदने लक्ष्मणेस्वासरेखाम्
नैवायास्यस्तदरिकुकरे रोहिणी वाथ राहोः।
सर्वं चैतदध्ध्यघटितमहो देविसञ्जाघटीति
स्वप्नाकारं क्षणमिव भवे चित्रकर्मा विधाता।।१६९।।

गुञ्जन–हे सीते! यदि तुम ने लक्ष्मण के धनुष की रेखा न लाँघी होती तो राहु के हाथ में रोहिणी की भाँति रावण के हाथ न लगतीं। इस संसार में सब कुछ एक क्षण में ही स्वप्न की भाँति अघटित सा घट जाता है। विधाता के कर्म बहुत आश्चर्यजनक होते हैं।

मा शंकिष्ठा हरिणनयने मां प्रति त्वं तथापि
त्वत् प्रेमेवामृतनवरसो जीवयन्माञ्चकास्ति।
आनेष्यामि क्षपणचणकैस्त्वां शरैराक्षसानाम
नष्टां वेदश्रुतिमिव हयग्रीव उद्ग्रीव रामः।।१७०।।

गुञ्जन–हे मृगनयनी सीते! फ़िर भी तुम मेरे प्रति शंका मत करो। तुम्हारा प्रेम ही नवीन अमृत रस की भाँति मुझे जिलाता हुआ सुशोभित हो रहा है। असुरों द्वारा नष्ट की हुई वेदश्रुति को हयग्रीव के ही समान उत्कृष्ट ग्रीवा वाला मैं राम राक्षसों को मारने में कुशल बाणों के माध्यम से तुम्हे ले आऊँगा।

पश्चातापज्वलन उदितो दुष्प्रमादेध्मजन्मा-
निष्टा शंका विपुलविलसज्ज्वालकः शोकसर्पिः।
तीव्रोच्छ्वासप्रबलमरुता मित्रकेणेधमानो
धैर्यालातं दहति खलु ते देवरं देवि नित्यम्।।१७१।।

गुञ्जन-हे देवि! दुष्प्रमाद रूप ईंधन से उत्पन्न हुआ, अनिष्ट की आशंका रूप अनेक उमड़ती हुई ज्वालाओं से युक्त, शोक रूप घी से पूर्ण, तीव्रउच्छ्वास रूप प्रबल वायु जैसे मित्र से धधकता हुआ यह विशाल पश्चात्ताप रूप अग्नि, धैर्य रूप सूखे तृण वाले तुम्हारे देवर को निरन्तर जला रहा है।

तं धीमन्तं समभिभवतो नो जिघत्सापिपासे
द्राङ्निद्रापि स्पृशति नहि तं त्वत्स्वसुश्चेवभीता।
पीत्वा कोष्णां सरसिजदृशोर्निर्गलद् बाष्पधाराम्
भ्राता नक्तं नयति नितरां त्वद्दिदृक्षैकचक्षुः।।१७२।।

गुञ्जन-हे सीते! उन धीमान् लक्ष्मण को भूख प्यास प्रभावित नहीं कर रही है और तुम्हारी बहन उर्मिला से डरी हुई सी निद्रा तो उनका स्पर्श भी नहीं करती। तुम्हारी दर्शन की इच्छा में ही अपने नेत्रों को लगाए हुए मेरे भ्राता लक्ष्मण अपने कमल नयनों से बहती हुई गरम अश्रुधारा को पीकर ही रातें बिता दिया करते हैं।

योऽसौ नित्यं सुखमधिवसंस्तावकस्नेहशालां
सर्वं लोकं तृणमिव जहज्जीवतिस्माप्तमोदः।
सैवेदानीं कुटिलविधिना त्वद्वियुक्तो मुमूर्ष-
र्वत्सो जीवेत् किमुत जननीमन्तरेणाल्पसत्वः।।१७३।।

गुञ्जन-हे सीते! जो लक्ष्मण निरन्तर तुम्हारी वात्सल्य स्नेह शाला में निवास करते हुए सम्पूर्ण संसार को तिनके के समान छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक

जी रहे थे वही इस समय क्रूर विधाता के कारण तुमसे बिछुड़कर मरणासन्न हो रहे हैं। भला नवजात शिशु अपनी माँ के बिना कैसे जी सकता है ?

मा मा मेति प्रलपति सदा बाष्पसंक्लिन्नकण्ठो
दूरीभूतो वन इव रुदन् वत्सको वत्सलायाः।
धेनोर्धुन्वन् धनुरतितरां खिद्यमानोऽनुजो मे
रात्रौ जाग्रज्जपति जटिलो जानकीजानिमार्तः।।१७४।।

गुञ्जन–हे सीते! अश्रुपूर्णकण्ठ लक्ष्मण माँ–माँ–माँ इस प्रकार निरन्तर प्रलाप करते रहते हैं। वत्सला गाय से वन में बिछुड़े हुए बछड़े की भाँति अत्यन्त खिन्न मेरे छोटे भाई लक्ष्मण अपना धनुष कँपाते हुए जटाधारण किए हुए रात्रि में, तुम सीता जिसकी पत्नी हो ऐसे मुझ राम को अर्थात् सीताराम सीताराम शब्द से जपते रहते हैं।

घोरारण्ये तव विरहिणे कोऽपि सद्भ्र्यङ् सखा मे
प्रत्तः प्रह्वो वनजजनिना बान्धवो बन्धुनिष्ठः।
सोऽपि व्रीडाविकलवदनो रक्षणे न क्षमस्ते
धर्तुं नालं स्वमिव शिशुको जातदूरो जनन्याः।।१७५।।

गुञ्जन–इस घोर वन में तुम्हारे विरही मुझ राम को बड़े भाई में निष्ठा रखने वाला सब प्रकार से सहायक बान्धव लक्ष्मण रूप कोई साथी सखा ब्रह्मा जी के द्वारा दिया गया था। वह भी तुम्हारी रक्षा में असमर्थ होने के कारण लज्जा से व्याकुल मुख वाला होकर जन्म के समय से ही माँ से दूर हुए शिशु की भाँति स्वयं को धारण करने में असमर्थ सा हो रहा है।

एकोऽहं त्वद्विरहविधुरो जीवितात्स्वान्निराशः
शोकाम्भोधौ विरहिततरिस्तर्तुकामो विमग्नः।
भूयस्सीते तवसुतमिमं वीक्ष्यमाणो विपन्नम्
नापद्येशं क्षणमपि सुखं हा विधे किं विदध्याम्।।१७६।।

गुञ्जन–हे सीते! एक तो मैं स्वयं तुम्हारे विरह से विकल होकर जीवन से निराश होकर शोक सागर में नाव को न पाकर पार होने की इच्छा करता हुआ भी डूब रहा हूँ दूसरी ओर इस तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण को अत्यन्त दुःखी देखता हुआ मैं क्षण भर के लिए भी शान्ति और सुख नहीं प्राप्त कर रहा हूँ। हे विधाता मैं क्या करूँ?

संस्तभ्यात्मानमहमबलो यावदिच्छामि तर्तुं
त्वच्छोकाब्धिं क्षणमपि शुभे लब्धधैर्यप्लवोऽहम्।
तावज्झंझा सदृगनुपमा लक्ष्मणीयाश्रुधारा
मोघीकृत्य प्रयतितमिमं मज्जयन्ती दृणाति।।१७७।।

गुञ्जन–हे शुभे! जब तक मैं निर्बल होता हुआ भी अपने मन को संभालकर एक क्षण भी धैर्य रूप नाव को प्राप्त करके तुम्हारे शोक सागर को पार करने की इच्छा करता हूँ तब तक झञ्झावात के समान लक्ष्मण की अश्रुधारा मेरे प्रयत्न को विफल करके मुझे डुबोती हुई धैर्य के जहाज को भी तोड़ डालती है।

यस्मादह्नोऽवनि सुतनये त्वं हृता रावणेना-
प्यह्नस्तस्मान्नहि पदमसौ सेवते दक्षिणं मे।
स्मारं स्मारं सति! तव कृतां सव्यपादस्य सेवां
रोदं रोदं नयनसलिलैः क्षालयत्यङ्घ्रियुग्मम्।।१७८।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस दिन से तुम रावण द्वारा हरी गयीं उसी दिन से लक्ष्मण मेरे दक्षिण चरण की सेवा नहीं कर रहे तुम्हारे द्वारा की गई वाम चरण की सेवा का स्मरण कर–करके लक्ष्मण रो रोकर अपने नेत्र के आंसुओं से मेरे दोनों चरणों को धोया करते हैं।

हा हा मातर्जगदगजनि प्रार्थिताभीष्ट देहे
हा कौसल्या सुखकरवधूर्हा सुमित्रा स्नुषे हा।

हा मद्देहावनितलभवद् भव्यवात्सल्यवर्षे
मामप्येष व्यथयतितमां वाचमेवं ब्रुवाणः।।१७९।।

गुञ्जन-"हा मेरी माँ! हा जड़ चेतनों की प्रार्थना पर अभीष्ट शरीर को प्राप्त की हुई जनकनन्दिनी, हा कौसल्या की प्यारी पुत्रवधू, हा सुमित्रा की बहूरानी, हा मेरे शरीर रूप पृथ्वी तल पर भव्य वात्सल्य की वर्षा करने वाली" इस प्रकार बोलते हुए लक्ष्मण मुझे भी बहुत व्यथित कर देते हैं।

एकां त्यक्त्वा क्षणभवरुषा भग्नकर्तव्यमार्गो
यातो देवीं गहनविपिने मूढबुद्धिः किमर्थम्।
एवं जल्पन् स्वमथ हृदयं ताडयन् मुष्ठिनासौ
प्राणान्धत्ते कथमपि मया वार्यमाणस्सुतस्ते।।१८०।।

गुञ्जन-अरे! क्षणिक क्रोध के कारण कर्तव्यमार्ग से च्युत मैं दुष्टबुद्धि वाला लक्ष्मण निर्जन वन में अकेले ही सीता जी को छोड़कर क्यों चला गया। इस प्रकार बोलते हुए अपनी छाती को घूंसे से पीटते हुए किसी प्रकार मेरे द्वारा रोके जाने पर तुम्हारा पुत्र लक्ष्मण अपने प्राणों को धारण कर रहा है।

घिङ् मां मोघाचरणमबलं धन्विधुर्यं सधैर्यं
शूरं मन्यं समरसमरश्लाघिनं राघवाङ्कम्।
दोष्णोश्छायां किल परिगतां स्वानुगां योनपत्नीम्
पातुं शत्रो रशकदभितः कौमुदीं स्वामिवेन्दुः।।१८१।।

गुञ्जन-अहो! झूठ आचरण वाले, मरे हुए लोगों के साथ युद्ध में आत्मप्रशंसा वाले, निर्बल धनुर्धरों में श्रेष्ठ कहलाने वाले, अपने को धैर्ययुक्त शूरवीर मानने वाले, राघव शब्द से प्रसिद्ध मुझ राम को धिक्कार है जो चन्द्रिका को राहु से चन्द्रमा की ही भाँति, अपनी भुजाओं की छाया को प्राप्त अपनी ही अनुगामिनी सीता को शत्रु से सुरक्षित नहीं कर सका।

किं मे कार्यं विपुलविभवैः कोसलैः किं सकोषैः
किं मे भूयः प्रियपरिजनैः सानुरागैश्च पौरैः।
किं मे मित्रैः सचिवनिकरैः किञ्च राज्येन किं मे
नात्मासि त्वं यदिह सुभगे सर्वमेवाऽत्र शून्यम्।।१८२।।

गुञ्जन–अरे! अनेक वैभवों वाले कोष सम्पन्न कोसल जनपद से मेरा क्या लेना देना, मैं क्या करूँगा परिजनों को लेकर, अनुराग युक्त पुरवासियों से मेरा क्या काम? मेरा मित्रों से क्या प्रयोजन? मंत्रिमण्डल से मेरा क्या लाभ? मैं राज्य लेकर भी क्या करूँगा यदि मेरी आत्मारूप सुंदरी तुम सीता ही मेरे पास न हो। मेरे लिए यहाँ सब कुछ सूना है।

शीतांशुर्वै वमति गरलं स्वर्णदी पूतिगन्धा
वैरायन्ते सकलसुहृदो भाययत्येष भानुः।
चिन्तां चिन्तामणिरुपदधत्पारिजातोऽकजातो
विश्वं विश्वं विषमयमहो त्वद्वियोगे प्रतीपम्।।१८३।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम्हारे वियोग में सब कुछ उल्टा हो रहा है। शीत किरणों वाला चन्द्रमा विष वमन कर रहा है। आकाशगंगा से दुर्गन्ध निकल रही है। सभी मित्र शत्रु बनते जा रहे हैं। सूर्यनारायण डरा से रहे हैं। चिन्तामणि चिन्ता उत्पन्न कर रही है। परिजात कल्पवृक्ष दुःख को जन्म दे रहा है। सम्पूर्ण विश्व ही विषमय हो गया है।

सन्तीदानीं यदपि बहुधाऽपाततः साधका मे
सौख्यस्यार्था जगति सुलभाश्चित्ततुष्टिप्रयत्ना।
राज्यं प्राज्यं प्रकृतिरबलाः सार्वभौमञ्च भोज्यं
सीताभावे सकलमपि मे दुःखदुःखाय नूनम्।।१८४।।

गुञ्जन–यद्यपि सरसरी दृष्टि से मेरे सुख के साधक बहुत से पदार्थ हैं और संसार में मेरे चित्त के संतोष के लिए बहुत से प्रयास भी सुलभ हैं। राज्य धन, प्रजा, नारियाँ, सार्वभौम साम्राज्य तथा भोज्य ये सभी मेरे पास

होने पर भी सीता के अभाव में ये सब कुछ मेरे लिए अत्यन्त दुःख मात्र ही हैं।

मय्यायाते श्रमकणभरोद्भासि भाले कपाले
स्पर्शं स्पर्शं सरसिजशयं साध्वि मार्क्षिष्म सद्यः।
तानेवाऽहं गृहिणि विरहे साम्प्रतं स्वेदविन्दून्
पीत्वा पीत्वा निशि निशिशये मारयित्वा पिपासाम्।।१८५।।

गुञ्जन–हे साध्वि! जब मैं मस्तक पर श्रमकणों को धारण करके थका मांदा आखेट से कुटिया में आता तब मेरे शिर पर कमल कर को स्पर्श कर–करके तुम मेरा पसीना पोंछ लिया करती थीं। वही मैं इस समय तुम्हारे विरह में प्रत्येक रात में उन श्रमबिंदुओं को पी पीकर अपनी प्यास को मारकर लेट जाता हूँ।

मातेव त्वं यमथविपिने कन्दमूलं फलं वा
लालं लालं चतुरहनि भो भोजयन्तीस्म भासि।
सैवेदानीं तव विरहितो वीरपत्नि प्रभुञ्जे
भक्त्या भक्तं कथमपि रुदन् पञ्चमं पञ्चमेऽह्नि।।१८६।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस मुझ राम को वन में तुम माता की भाँति दुलार–दुलारकर दिन में चार बार कन्दमूल फल खिलाती हुई सुशोभित होती थीं। हे वीरपत्नि! वही मैं राम इस समय तुमसे बिछुड़कर तुम्हारी भक्ति के कारण रोता हुआ इसी प्रकार पाँचवे दिन फलाहार का पाँचवां अंश खा लेता हूँ।

त्वत्सानिध्ये सरसमरसं पक्वमेवाप्यपक्वम्
स्वादुङ्कारं सकलमनघे ह्यादमप्रातिकूल्ये।
हा हा सम्प्रत्यमृतसदृशं लक्ष्मणेनाहृतं तत्
भुञ्जे दूरस्त्वदहममनाः कालकूटायमानम्।।१८७।।

गुञ्जन–हे सीते! आपके सानिध्य में सरस या नीरस, पका या अनपका

सब कुछ स्वादयुक्त करके मैं अप्रतिकूलभाव से पा लेता था। हाय हाय! तुमसे दूर हुआ मैं इस समय लक्ष्मण के द्वारा लाए हुए अमृतसदृश फल को भी बिना मन के पाँचवे दिन विष की भाँति पा लेता हूँ।

यद्यप्येते कुशलकपयो वायुपुत्रप्रधाना
गापं गापं तवगुणगणान्लक्ष्मणेनानुवेलम्।
नानाख्यानै रमयितुमलं राममार्यायतन्ते
आत्माभावे सुखमथकथं शून्यचेष्टे शरीरे।।१८८।

गुञ्जन-हे सीते! यद्यपि हनुमान आदि कुशल वानरभट अनेक आख्यानों के क्रम में समय-समय पर लक्ष्मण द्वारा तुम्हारे गुणगणों को बारंबार गवाकर आर्यस्वभाव के कारण मुझ राम को प्रसन्न करने के लिए यत्न करते रहते हैं फिर भी आत्मा के अभाव में शून्य चेष्टा वाले शरीर में सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है?

चातुर्यं ते प्रकृतिचतुरे वेदवैदेहि वेद्यं
मज्जीवातुं कटकयुगलं कुण्डले कर्णशोभे।
केयूरे त्वं कपिषु रिपुणा प्राहिणोर्नीयमाना
तैरेवाहं श्वसिमि दयिते यामिकैरक्ष्यमाणः।।१८९।।

गुञ्जन-हे वैदेहि! हे स्वभाव से चतुर सीते! मैं तुम्हारे जानने योग्य चातुरी को जान गया हूँ जो कि तुमने शत्रु द्वारा लंका ले जाते समय बानरों के बीच मेरे जीवन की औषधि स्वरूप दो कंकण और कानों को सुशोभित करने वाले दो कुण्डल और दो केयूर फेंक दिए थे। उन्हीं प्रहरियों से सुरक्षित होकर मैं इस समय जी भी रहा हूँ।

सुग्रीवो मामकृत ऋणिनं तानि ते दर्शयित्वा
यत्नात्त्राता न्युदजवदने भूषणानि प्रियायाः।
श्लेषं श्लेषं रहसि च हृदा जीवितालम्बितानि
प्राणान्धर्तुं प्रभवति जनो न्यासविष्टप्रतिष्ठम्।।१९०।।

गुञ्जन-हे सीते! यत्न से रखे हुए मेरी प्रिया अर्थात् तुम्हारे उन आभूषणों को दिखाकर सुग्रीव ने मुझे अपना ऋणी बना लिया। एकान्त में उन जीवन के आलम्बन रूप आभूषणों को हृदय से लगा लगाकर यह जन किसी प्रकार प्राणों को धारण करने में समर्थ हो रहा है। क्योंकि न्यास में ही इष्ट की प्रतिष्ठा रहती है।

दृष्ट्वा मर्कान् कलितकपटान् मां प्रपन्नान्विधित्सु-
र्ज्ञात्वा भूयः कपटमनिशं मद् विरोधिस्वभावम्।
क्षिप्त्वा प्रेमाकृतिपटमहो तं निरस्यः कपिभ्यः
सत्सिद्धान्तं प्रकटितवती त्वं पटक्षेपकेल्या।।१९१।।

गुञ्जन-अहो! सीते! वानरों को कपट युक्त देखकर उन्हें मेरे शरणागत बनाने की इच्छुक तुमने यह जानकर कि कपट निरन्तर मेरे विरोधी स्वभाव का है अर्थात् मुझ परमात्मा राम को कपट कभी नहीं भाता अतएव प्रेम स्वरूप वाले पट को ही फेंककर शरणागत विरोधी कपट को दूर कर दिया। हे वैदेहि! तुमने पटक्षेप रूप क्रीड़ा से श्रीवैष्णव सम्मत सिद्धान्त को ही प्रकट किया है।

केयूरेते विलसितभुजे कंकणे सुप्रकोष्ठे
एते व्रीड्यन्मकरमिथुने कुण्डले कर्णभूषे।
नाहं जाने त्वदवयवतो यद्यियासून्यमूनि
त्रातुं मन्ये विरहिगृहिणं प्रेषितानि त्वयैव।।१९२।।

गुञ्जन-हे सीते! तुम्हारे भुजाओं को सुशोभित करने वाले ये केयूर और तुम्हारी कलाइयों को अलंकृत करने वाले कंकण और कानों को अलंकृत करने वाले दो मछलियों को लज्जित करने वाले ये केयूर इस प्रकार छहों आभूषण क्या तुम्हारे श्रीअंगों को छोड़कर जाना चाहते थे। ऐसा मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। मैं मानता हूँ कि तुमने ही अपने विरही पति को जीवित रखने के लिए ही इन्हें स्वयं भेज दिया।

हत्वा रक्षोनिकरमिषुभिर्योगिनीस्तर्पयित्वा
कोष्णैरक्तैर्निहतपतिका राक्षसी रोदयित्वा।
लंङ्कां लङ्कां विगतकुणपां भग्नशंकां विधास्य-
न्नेभिः क्षिप्रं विजयविलसच्छ्रीमुखीं मण्डयिष्ये।।१९३।।

गुञ्जन–हे सीते! चिन्ता मत करो। बाणों से राक्षस समूह को मारकर उनके गरम रक्त से योगिनियों को सन्तुष्ट करके विधवा राक्षसियों को रुलाकर, लंका को राक्षसों से रहित दरिद्र और शंका रहित सम्पन्न करते हुए, इन्हीं कुण्डल कंकण और केयूरों से शीघ्र ही विजय से प्रसन्न मुखमण्डल वाली तुम (सीता) को मैं अलंकृत करूँगा।

मा मा रोदी रघुवरकुमुत्कौमुदी कावनागा
मा मा ज्ञासीः स्वमथ विपदा योजितं दूरबन्धुम्।
मन्नाराचैर्निहतशिरसः पंक्तिमौलेर्गृहिण्यः
क्षिप्रं रोत्स्यन्त्यविरलपयोधारया धर्षितास्याः।।१९४।।

गुञ्जन–हे रघुवर अर्थात् मुझ रामरूपचंद्र की चंद्रिका सीते! इस भूमण्डल में एक मात्र निर्दोष होती हुई भी अब तुम मत रोओ। हे सीते! स्वयं को पति से दूर और विपत्ति से युक्त मत समझो। अब तो शीघ्र ही मेरे बाणों से कटे शिरों वाले रावण की विधवाएँ ही अविरल अश्रुधारा से अपने मुखमण्डलों को मलिन बनाती हुई रोएँगी।

नासौ . कालः कुमुदविशदस्मेरवक्त्रे विदूरो
यस्मिन् रक्षो विपिनवसते कूपवासैः कृषायाः।
आगत्याहं सहकपिगणो भग्नपौलस्त्यदर्पः
पाता प्रीत्या त्वदधरसुधां संहरिष्यञ्जटां ते।।१९५।।

गुञ्जन–हे कुमद के विकासक चन्द्र के समान मुखमण्डलवाली सीते! अब वह समय दूर नहीं जिस समय रावण के अशोक वन में रहने वाली

कूपोषण से दुबली पतली तुम्हारे अर्थात् सीता की जटाओं को संवारने के लिए वानरों के साथ आकर लंकापति रावण के अहंकार को दूर करके मैं तुम्हारी सुमधुर अधर सुधा का पान करूँगा।

शंका कार्या न खलु कदने शात्रबाणां भवत्या
रक्षोऽरण्यज्वलनविशिखो दीप्यते देवरस्ते।
क्रोधज्वाला विललितदृशा शोषयिष्यन्समुद्रं
कर्ता विश्वं विगतकुणपं लक्ष्मणोऽयं क्षणार्धात्।।१९६।।

गुञ्जन-हे सीते! शत्रुओं के संहार के संबंध में आपको शंका नहीं करनी चाहिए। क्योंकि आपके देवर लक्ष्मण राक्षसरूप वन के लिए अग्नि के समान बाणों से युक्त हो कर दीप्त हो रहे हैं। अपनी क्रोध की ज्वाला से तिलमलाई हुई दृष्टि से सागर को सुखाते हुए तुम्हारे लक्ष्मण कुमार आधे क्षण में ही सम्पूर्ण विश्व को राक्षसरहित करने में समर्थ हैं।

त्यक्त्वा यातो यदथ भवती वाग्धतो मामनागा
सोस्माच्छोचत्यनिशमनघोमागधेयोऽश्रुकण्ठः ।
त्वत् पीडायाः प्रतिकृतिमसौ कर्तुकामः करालः
कालः कश्चित् समभवदहो दुर्निवारस्त्रिदेव्या।।१९७।।

गुञ्जन-निर्दोष होते हुए भी आपकी वाणी से आहत होकर जो लक्ष्मण मेरे पास चले आए थे। इसीलिए निष्पाप सुमित्रानंदन अश्रुपूर्ण होकर दिन रात सोचते रहते हैं आपकी पीड़ा का प्रतिकार के इच्छुक कुमार लक्ष्मण इस समय तीनों देवों के द्वारा भी दुर्निवार एक अपूर्व काल कराल बन गए हैं।

योऽहं राजच्छ्रमजललसद् गण्डभालो भवत्या
दृष्टः क्लान्तः कमलनयने त्वत्पितुर्वाटिकायाम्।
सोऽहं योत्स्ये कथमरिभटैश्चेति शंकां जहीथाः
कालो व्यक्तिं कुलिशकुसुमोद्दामधर्मैर्युनक्ति।।१९८।।

गुञ्जन–हे सीते! जो मैं राम आपके पिताश्री की वाटिका में श्रमबिंदुओं से शोभित कपोल तथा मस्तकवाला थका–थका आपको दिखा था। वही मैं (राम) राक्षसभटों से कैसे युद्ध करूँगा? यह शंका भी छोड़ दीजिए। क्योंकि समय ही व्यक्ति को वज्र और पुष्प जैसे परस्पर विरुद्ध स्वभावों से जोड़ देता है। अर्थात् कभी व्यक्ति वज्र के समान कठोर हो जाता है तो कभी पुष्प के समान कोमल। किसी को भी समय एक रस में नहीं रहने देता।

मा मा शोकं सुमुखि! कुरुतात् त्वत् प्रयाणप्रकरणे
शीघ्रं सैन्यं किल घटयिता स्मृक्षकीशेश्वराणाम्।
बध्वा सेतुं लवणजलधौ भूरुहैः शैलश्रृंगै-
र्लङ्कामीक्षे मरणशरणां क्रुद्धकालो यथाऽहम्।।१९९।।

गुञ्जन–हे सुमुखि! अब शोक मत करो मत करो, तुम्हारे पास प्रयाण के प्रकरण में ही वानरों एवं भालुओं की सेना का संगठन करने वाला हूँ। वृक्षों और पर्वतों के शिखरों से सारे समुद्र में सेतु बाँधकर क्रुद्ध काल के ही समान मैं मरण की शरण में गयी हुई लंका को शीघ्र ही निहारुँगा।

सुग्रीवो मे सुहृदनलसो जागरूकस्त्वदर्थम्
शोधार्थी ते दिशि दिशि कपीन्प्रेषयत्युग्रवीर्यान् ।
प्राप्स्यामस्त्वां श्रुतिमिव हयग्रीव धर्माण उच्चै-
र्बाहुर्दक्षः स्फुरति निगदन् मंगलं माङ्गलिक्यः।।२००।।

गुञ्जन–मेरे आलस्य रहित मित्र सुग्रीव तुम्हारे लिए जागरूक रहकर तुम्हारी खोज में उग्रपराक्रमी वानरों को भेज रहे हैं। हम हयग्रीव के समान ही खोई हुई श्रुतिरूपा तुमको शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे। यह देखो मंगल प्रयोजन वाला मेरा दक्षिण बाहु मंगल की सूचना देते हुए फड़क रहा है।

मद्बाणानां प्रलयजलदौपम्यभाजां शितानां
रक्षो भूमौ खरतररुषा वर्षतां भीषणानाम्।

अग्रे तिष्ठेत् किमुतहरिजितकुम्भकर्णः कथं वा
पौलस्त्यः किं क्षणमथ भवेन्नारिचौरो दुरात्मा।।२०१।।

गुञ्जन–हे सीते! प्रलयकालीन बादलों के समान क्रोध पूर्वक राक्षस की भूमि लंका में बरस रहे भयंकर मेरे बाणों के आगे क्या इन्द्र का विजेता मेघनाद स्थिर रह सकेगा? क्या किसी भी प्रकार कुम्भकर्ण टिक सकेगा? किं वा दुष्ट आत्मा वाला, नारी को चुराने वाला रावण क्या एक क्षण भी रुक सकेगा।

वर्षोत्कर्षे गतवति शरच्चन्द्रशुभ्रे निरभ्रे
व्योम्नि क्रीडन्मलयजमिलन्मारुते मारुतिर्मे।
शीघ्रं यास्यत्यजचरणि तैजत्समुद्रः समुद्रः
संदेशं ते पुनरुपहरन् रक्ष उद्यानकेतुः।।२०२।।

गुञ्जन–हे सीते! वर्षा काल के चले जाने पर आकाश के शरच्चंद्र के कारण शुभ्र तथा बादलों से रहित एवं खेलते हुए मलय समीर से मिलित वायु से युक्त हो जाने पर अपने गरुड़ जैसे वेग से समुद्र को कम्पित करते हुए मेरी मुद्रिका के सहित राक्षसों के उद्यान के लिए धूमकेतुस्वरूप, मेरे हनुमान् तुम्हें संदेश देने के लिए शीघ्र जाएंगे।

यावन्नायात्यधिकविषयो मां सुकण्ठः ससैन्यो
दैन्यं देव्याः किलपरिमृजन्मेघलेखां खभूर्वा।
तावत्स्थातास्यहह विवशा रावणेनाति मात्रम्
क्लिष्टा सीदस्यवनितनये राहुणा रोहिणीव।।२०३।।

गुञ्जन–जब तक विषयों से विवश सैन्यसहित सुग्रीव मेघलेखा को नष्ट करने वाले वायु की भाँति तुम्हारे दैन्य को दूर करने के लिए मेरे पास नहीं आ रहे हैं तभी तक रावण के द्वारा अत्यन्त सताई हुई राहु के द्वारा क्लेशित रोहिणी की भाँति तुम विवश होकर अशोक वाटिका में रह सकोगी।

यावन्नायान्त्यमरमहसा मण्डितावानरेन्द्रा
लंकां क्रान्त्वा पुरमिव तनुं प्राणशून्याञ्च याम्याः।
तावत्सीते दशमुखमुखात् कर्णशंकूपमास्त्वम्
वाचः सोढुं प्रभव भगवान्काल एवात्र मानम्।।२०४।।

गुञ्जन-हे सीते! जब तक देवताओं के तेज से सुशोभित वानरगण प्राण से शून्य शरीर को क्रान्त करने के लिए यमदूतों के समान लंका में नहीं आ रहे हैं तब तक तुम रावण के मुख से निकली हुई कानों में कील के समान चुभने वाली वाणी सहन करो। इस परिस्थिति में भगवान् काल ही प्रमाण हैं।

मा मा प्राणांस्त्यज जनकजे कोसलापुण्यलब्धान्
स्निग्धान् राम प्रणयनिलयान् विप्रयुक्ता मया त्वम्।
प्रातःकल्पां व्यसनरजनीं क्रूरकष्टप्रदात्रीम्
नीत्वा भूयस्समनुभवितास्यञ्जनासूनुसूर्यम्।।२०५।।

गुञ्जन-हे सीते! कोसल पुरी के पुण्य से प्राप्त हुए, अत्यन्त स्नेही मुझ राम के प्रेमास्पद, अपने प्राणों को मेरे वियोग में मत छोड़ो मत छोड़ो। अब तो अतिशीघ्र क्रूर कष्ट देने वाली विपत्ति रात्रि को समाप्त करके हनुमान् रूप सूर्यनारायण का पूर्ण अनुभव करोगी। क्योंकि यह रात्रि अब प्रभातकल्पा हो गई है। अर्थात् सवेरे वाली रात्रि हो गई है।

न्यस्यन्नैशं निशिचरतमस्तोममारान्निरस्यन्
नैराश्यं सत्सरसिजनुषां मोदयन्नक्षिभृङ्गान्।
चेतः कोकान्कुशलकृतिनो ह्लादयन् भक्तिपद्मां
युञ्जन्हर्षैरुदयति सपद्यञ्जनादित्यभानुः।।२०६।।

गुञ्जन-हे सीते! अब तो अतिशीघ्र ही रात्रिकालीन राक्षसगण रूप अन्धकार को नष्ट करते हुए और सज्जन रूप कमलों की निराशा को नष्ट

करते हुए, नेत्र भ्रमरों को प्रसन्न करते हुए, कुशल कर्मठ व्यक्ति के चित्तरूप चक्रवाक को आह्लादित करते हुए, भक्तिरूप कमलिनी को हर्ष से युक्त करते हुए, अञ्जनारूप अदिति के पुत्र हनुमान् रूप सूर्यनारायण उदित हो रहे हैं।

रक्षश्चक्रं विरहसलिलैर्योजयन्सच्चकोरान्
रामानन्दानुपमसुरसं पाययन् पालितार्यः।
तिष्ठन्देवामलमृगमनस्येष पूर्णो यशोभि-
र्भिन्दन्शोकं झटिति विलसत्यञ्जनासिंधुचन्द्रः।।२०७।।

गुञ्जन-राक्षसरूप चक्रवाकों को विरह के जल अर्थात् आँसुओं से युक्त करते हुए सज्जनरूप चकोरों को मुझ राम के प्रेमानंद रूप निर्मल रस का पान कराते हुए, देवताओं के निर्मल मनोमृग पर विराजमान, यश से पूर्ण, शोक को नष्ट करते हुए, अञ्जना की कोखरूप क्षीरसागर के चन्द्रमा हनुमान जी अतिशीघ्र सुशोभित होने जा रहे हैं।

मन्यूज्झंझा समुदितजवो यातुधानेध्मदाही
श्रीरामेति प्रकटमहिम स्वाहया तर्प्यमाणः।
तेजोज्वालाशतशतलसच्चण्डतापः प्रतापी
शीघ्रं लंकां दहति दहनो ह्यञ्जनारण्युपात्तः।।२०८।।

गुञ्जन-क्रोध की उत्कृष्ट झंझा से उत्पन्न हुए वेगवाले राक्षस रूप ईंधन को जलाने वाले प्रकट महिमा युक्त श्रीरामनाम गर्जन रूप स्वाहा से तृप्त, तेज की सैंकड़ों ज्वालाओं से सुशोभित भयंकर प्रताप से सम्पन्न, परमप्रतापी अञ्जनारूप अरणी से उत्पन्न श्रीहनुमानरूप अग्निदेव लंका को अतिशीघ्र भस्म कर डालेंगे।

रक्षोयोषाजठरजपयोजातहेमन्त रात्रि-
रुद्यद्बालारुण रविसहस्राभवक्त्रैकजन्मा।

श्रीशर्वाणी द्रुहिणगृहिणी भर्तृधैर्यप्रहन्त्री
शीघ्रं श्राव्या जगदघहरी हुंकृतिर्वायुसूनोः।।२०९।।

गुञ्जन–हे सीते! राक्षसपत्नियों के गर्भस्थ बालकरूप कमलों के लिए हेमन्तरात के समान, उदीयमान सहस्त्रों बालसूर्यों की आभा वाले मुख से उत्पन्न लक्ष्मी पार्वती एवं ब्रह्माणी के पतियों ब्रह्मा विष्णु और शंकर के धैर्य को नष्ट करदेनेवाली, संसार के पाप का हरण करनेवाली हनुमान की हाँक अतिशीघ्र तुम्हारे द्वारा सुनी जाएगी।

प्रेजच्छेषा व्यथितकमठा वृक्णवाराहधैर्या
शौर्योद्दाम प्रकटनिकषीभूतवेगाघहन्त्री।
पौलस्त्याहंकृतिजलनिधिस्वौर्वसत्वा चलार्का
श्रोतव्या ते झटिति शुभगे हुंकृतिश्चाञ्जनेयी।।२१०।।

गुञ्जन–हे सुंदरी सीते! शेष को कंपानेवाली व भगवान् कमठ को व्यथित कर देनेवाली भगवान् वाराह के धैर्य को नष्ट कर देनेवाली, शौर्य और ऐश्वर्य की प्रत्यक्ष कसौटी के समान वेगवाली, पापों को नष्ट करने वाली, रावण के अहंकाररूप सागर के लिए वाडव के समान सूर्यनारायण को भी विचलित कर देनेवाली ऐसी हनुमान जी की हाँक तुम शीघ्र सुन सकोगी।

शोभा व्रीडयत्कनककुधरो लीलया लङ्घिताब्धि-
र्लंकातंकप्रजननविधौ मूर्तिमान् धूमकेतुः।
दोर्दण्डोद्यच्छतपविरवोद्विह्वलत्कालकालो
द्रष्टव्यस्ते तरुणतनयः शोकहारी हनूमान्।।२११।।

गुञ्जन–हे सीते! जिसकी शोभा से स्वर्णपर्वत सुमेरु लज्जित हो रहा है। जो लंका में उग्र आतंक उत्पन्न करने की विधि में मूर्तिमान् धूमकेतु अग्नि अथवा पुच्छल तारा ही है। अपने भुजदण्ड से उत्पन्न कोटि-कोटि वज्र जैसे स्वर से जिसने काल के काल शंकर को भी विह्वल कर दिया है ऐसे खेल-

खेल में सागर को लांघने वाले तुम्हारे शोक को हरने वाले अपने नवीन पुत्र हनुमान् को आँखभर निहार लेना।

मत्तोऽमत्तोबलजलनिधिर्लब्धमुद्रः समुद्रः
सादृगुण्यानां निधिरिव सतां मूर्तिमान् संयमोऽसौ।
लंघित्वाब्धिं वरुणनिलयं धर्षिताशेषरक्षा
हर्ता शोकं सति तव हरिर्भक्ततापानिवाहम्।।२१२।।

गुञ्जन-हे सती! बल के सागर, श्रेष्ठ गुणों के समुद्र सन्तों के खजाने जैसे मूर्तिमान् संयम प्रमादरहित मुझसे अभिज्ञानमुद्रिका प्राप्त किए हुए श्रीहनुमान, वरुण के निवास सागर को लांघकर सभी राक्षसों को तर्जित कर तुम्हारा शोक उसी प्रकार हर लेंगे, जैसे मैं भक्तों के तापों को हर लेता हूँ।

दृष्ट्वा बालारुणरविशतोद्दामदंष्ट्राकराल-
ज्वालामालाकुलितवदनं कोटिकालैककालम्।
लंका रंकीकरणचणकं कान्दिशिक्यः क्षपाट्यः
संपत्स्यन्ते पवनतनयं सिंहमित्येव शून्यः।।२१३।।

गुञ्जन-हे सीते! सैकड़ों बालसूर्यों के समान लाल विशाल जबड़ों वाले, अग्निज्वाला समूह से युक्त मुखवाले, करोड़ों कालों के काल स्वरूप, लंका के दरिद्रीकरण में निपुण हनुमान जी को देखकर राक्षसियाँ उसी प्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग जाऐंगी जैसे सिंह को देखते ही कुतियाँ भाग जाती हैं।

हुंकारेण प्रमथितमहाकाल धैर्यावलेपं
देहोच्छ्रायक्षपित सुरभृच्छैलगरवङ्गवीशम्।
त्वच्छोकाग्निप्रहुत सुभटं दग्धलंकं विशंकं
शेक्ष्यस्यश्रैः गिरिवरमलं मेघलेखेव सूनुम्।।२१४।।

गुञ्जन–अपने हुंकार से महाकाल के धैर्य और अहंकार को नष्ट करने वाले, शरीर के उत्कर्ष से देव निवास सुमेरु पर्वत के गर्व को नष्ट करने वाले, लंका को जलाए हुए निर्भीक अपने पुत्र को तुम उसी प्रकार आँसुओं से नहला दोगी जिस प्रकार बादल की रेखा पर्वत को जल से नहला देती है।

त्वां क्लिश्नाति प्रगुणधनया स्वर्णपुर्या ययासौ
लेखाधीशक्षपणनिपुणो नीचनीचाधिराजः।
सैवक्षिप्रं मम हनुमता भस्मभूता भवित्री
लंकारंका विगतविभवा फाल्गुने होलिकेव।।२१५।।

गुञ्जन–हे सीते! नीच राक्षसों का राजा रावण विपुल धन वाली जिस सोने की पुरी से तुम्हें कष्ट दे रहा है वहीं लंका पुरी धनरहित और दरिद्र सी हुई शीघ्र फाल्गुन में होलिका की भाँति मेरे हनुमान द्वारा जलाकर राख कर दी जाएगी।

येनासभ्यो जनकतनयां लोभयन्लूनलाभः
क्षुभ्नाति त्वां मरणशरणो वासवे बद्धवैरः।
साम्राज्येन त्विदमनिलजक्रोधवैश्वानरेण
प्लुष्टं द्रक्ष्यस्यवनि तनुजे शुष्कशष्पं यथा त्वम्।।२१६।।

गुञ्जन–हे भूमिनन्दिनि! नष्ट लाभ वाला, इन्द्र से वैरबाँधा हुआ यह असभ्य रावण जिस साम्राज्य से तुम्हें लुभाता हुआ क्षुब्ध कर रहा है। उसी साम्राज्य को तुम सूखी हुई घास के समान हनुमान के क्रोधाग्नि द्वारा जला हुआ देखोगी।

यस्मिन् सीते विजनविपिनेऽशोक नाम्नि प्रलूना-
वासन्तीव व्रततिररिणा शोचसि त्वं वसन्ती।
शीघ्रं तद्वैप्रकुपित हृदोद्धृत्य वातात्मजेन
ध्वंसं ध्वंसं भवभयमिवोत्क्षेप्स्यते शोकसिन्धौ।।२१७।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस अशोक नामक निर्जन वन में रहती हुई तुम कुल्लाड़ी से काटी हुई वासन्ती लता के समान शोक कर रही हो वही अशोक वन अतिशीघ्र ही कुपित मन वाले वायुपुत्र हनुमान् द्वारा उखाड़कर बार–बार ध्वस्त करके भवभय के ही समान शोक सागर में फैंक दिया जाएगा।

या राक्षस्यो विकटवदनास्त्वां विषण्णांविरूपा–
स्तर्जं तर्जं वचनकुलिशैर्मर्मतोदं तुदन्ति।
तासां केशग्रहणविफलत्सर्वचेष्टा क्रियाणाम्
हर्ता प्राणान् हरिरिव हरिर्हर्षहन्ता हनूमान्।।२१८।।

गुञ्जन–हे सीते! जो भयंकर मुखवाली कुरूप राक्षसियाँ मेरे वियोग में दुःखी तुमकी वचनरूप वज्रों से मर्माहत करके सता रही हैं। उन्हीं के केश ग्रहण करके सम्पूर्ण चेष्टा और क्रियाओं को विफल करते हुए उनके हर्ष का हरण करके वानरेन्द्र हनुमान्, यमराज की भाँति उनके प्राणों का भी हरण कर लेंगे।

किं स्याच्छक्तिर्विपुलजलधि क्रामणेऽष्टाङ्गुलस्य
मर्कस्यारिप्रशमनविधौ चेति शंका न कार्या।
स्वल्पाकारोऽप्यतिमृदुकरोऽनूरुसूतो हि सूर्यो
व्योमक्रामन् विधमतितमः सिद्धसत्त्वा हि सन्तः।।२१९।।

गुञ्जन–भला आठ अंगुल वाले छोटे बानर का विशाल समुद्र के लांघने तथा रावण जैसे दुर्दान्त शत्रु के दमन में क्या सामर्थ्य हो सकता है? तुम्हें इस प्रकार की शंका भी नहीं करनी चाहिए। देखो तो! प्रातःकाल के सूर्य, छोटे आकार वाले, अत्यन्त कोमल किरणों वाले और जंघा से रहित सारथी वाले होकर भी विशाल आकाश का भ्रमण करते हुए संसार के अंधकार को नष्ट कर देते हैं। क्योंकि सन्तों का संकल्प ही सिद्ध होता है।

नैव ब्रह्मा नहि मधुरिपुर्नैव रुद्रो न चेन्द्रो
नार्को नेन्दुर्नहि किल यमो नैव कालो न सर्पाः।
नैव प्रेता नहि निशिचरा गुह्यका नैव यक्षाः
स्थातुं शक्ता युधि हनुमतः किं वराको वराकः।।२२०।।

गुञ्जन–हे सीते! हनुमान जी के समक्ष युद्ध में न ही ब्रह्मा, न ही विष्णु न ही शिव, न इन्द्र, न सूर्य, न चंद्रमा, न यमराज न काल न सर्प, न ही प्रेतगण न राक्षस न गुह्यक न यक्ष टिक सकते हैं तो फिर मनुष्यों को दुःख देने वाले रावण की क्या बात?

चञ्चत्पुच्छोन्मथित बलभिच्चाप सौन्दर्यदर्पं
बालोत्प्लुत्यार्पित रवि शुनासीरवैधुन्तुदाकम्।
तं कं कञ्चित् समररसिकं काञ्चनाद्रिस्वरूपं
कालालातज्वलन सदृशं संयुगे कः सहेत।।२२१।।

गुञ्जन–अपनी चंचल पूँछ से इन्द्रधनुष के सौंदर्य और दर्प को नष्ट करने वाले, बाल्यकालीन उच्छलन से सूर्य, इन्द्र, और राहु को भयभीत कर देने वाले, कालाग्नि के समान तेजस्वी उन अपूर्व स्वर्णपर्वत के समान सुन्दर समररसिक सुखस्वरूप हनुमान जी को कौन सह सकता है?

मागागाधि प्रभव विभवच्छात्र भार्येऽकमार्ये
आयानेमे विरहमनसः संविलम्बं विभाव्य।
विज्ञाते ते ननु हनुमतः साध्व्युदन्ते दुरन्ते
दुर्जेयैस्तैः कपिभिरनघैः शीघ्रमायामि लंकाम्।।२२२।।

गुञ्जन–हे आर्ये! गाधिनन्दन विश्वामित्र को विभव देने वाले छात्र मुझ राम की धर्मपत्नी सीते, विरही मन वाले मुझ राम के आने में विलम्ब समझकर अक अर्थात् दुःख को मत प्राप्त करो। हनुमान जी से तुम्हारा करुण इतिहास जानकर दुर्जेय निष्पाप बानरभटों के साथ मैं शीघ्र ही लंका आ रहा हूँ।

धैर्यं धर्तुं प्रभवभविके साध्वि सर्वंसहाजे
त्वत्पीडाविद् विरहरजनी मा चिरान्नाशमेति।
सामीर्यर्कोद्गमनकिरणध्वस्त नैराश्यताम्यां
साम्या वस्थामिवसुकृतिनः पश्यवैभातवेलाम्।।२२३।।

गुञ्जन–हे सर्वसहा पृथ्वी की पुत्री कल्याणकारिणी सती सीते! तुम धैर्य धारण करने में समर्थ हो। तुम्हें पीडा देने वाली विरह की रात अब शीघ्र ही नष्ट हो रही है। सुकृती की साम्यावस्था की भाँति हनुमान् रूप सूर्य की उदयकालीन किरणों से जिसका नैराश्य रूप अन्धकार नष्ट हो चुका है। ऐसी सुहावनी प्रभात बेला निहारो।

त्वत्संतापा द्विजन वसुधा देवशापात्स्वपापात्
पश्चात्तापान्मम समुदिते नाग्निनात्युल्बणेन।
दग्ध्वा लंकां पुरटरचितां जातरूपा च लाभो
भास्वद् वंशोज्जयननयनस्त्वां समेताञ्जनेयः।।२२४।।

गुञ्जन–हे सीते! तुम्हारे संताप से ब्राह्मणों, पृथ्वी एवं देवताओं के शाप से तथा अपने पाप से एवं मेरे पश्चात्ताप से उत्पन्न अत्यन्त घोर अग्नि द्वारा स्वर्णमयी लंका जलाकर स्वर्णपर्वत के समान आभा वाले सूर्यवंश को उत्कृष्ट विजय दिलाने वाले हनुमान शीघ्र ही तुम्हारे दर्शन करने आ रहे हैं।

त्वामायातं प्रशमितशुचं मुद्रिकादानतो मे
संमज्जन्त्या विरहजलधौ पूतपोतायमानम्।
मा भेतव्यं किल कपिपतिं वीक्ष्य भामे भवत्या
सिंही सैंहात् किमथ बिभियात्स्वप्रसूतात् सुताद् भोः।।२२५।।

गुञ्जन–हे सीते! मेरी मुद्रिका के प्रदान से तुम्हारे शोक को शान्त किए हुए एवं विरहसागर में डूबती हुई तुम सीता के लिए पवित्र जलयान बने हुए, ऐसे अपने पास आये हुए हनुमान को देखकर तुम डर मत जाना। क्या कोई सिंहिनी अपने से उत्पन्न सिंहशावक से डरती है?

यावन्नायान्त्यपि कपिवराः कामरूपा दिशाभ्यो
नाना कारागिरितरुधरा भानुपुत्रप्रदिष्टाः।
तावद् विद्या दशमुखपुरि स्वस्थितिं भूमिपुत्रि
प्रत्यूषे किं प्रभवति रवौ जागरूके तमिस्रा।।२२६।।

गुञ्जन–हे सीते! जब तक सूर्यपुत्र सुग्रीव की आज्ञा से भिन्न-भिन्न दिशाओं से अनेक आकार वाले स्वेच्छा रूपधारी वानर नहीं आ जा रहे हैं। तभी तक रावण के नगर में तुम अपनी स्थिति समझो। क्या प्रातः सूर्य के उदय होने पर वहाँ अन्धकार रहता है?

बद्धोदन्वत्यगणित तरुप्रांशुशैलेश्च सेतुं
ज्योतिर्लिङ्गं गिरिशमचलं सेतुबन्धे विधाय।
संसाराब्धौ स्व इव भजने प्रत्ययं सम्प्रतीतस्-
त्वामानेष्याम्यति सपदि गां दान्तदैत्यो यथाऽहम्।।२२७।।

गुञ्जन–हे सीते! संसार सागर में अपने भजन पर विश्वास की भाँति अनेक वृक्षों और विशाल पर्वतों से समुद्र पर सेतु बाँधकर और वहीं पर अचल ज्योतिर्लिंग के रूप में रामेश्वरम् की स्थापना करके विश्वासपूर्वक हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को वाराह भगवान की भाँति मैं तुम्हें अतिशीघ्र ले आऊँगा।

नो विश्लेष्यादिवसमणितस्तस्य कान्तिर्यथैव
ज्योत्स्ना चन्द्रं क्षणमपि यथा जातु नैवोज्जहाति।
नाग्नेरर्चिः कथमपि यथा शक्यते विप्रयोक्तुम्
तद्वत्सीते त्वमसि नहि मत् विप्रयोज्या कथञ्चित्।।२२८।।

गुञ्जन–हे सीते! जिस प्रकार सूर्य से उनकी कान्ति कभी अलग नहीं की जा सकती जैसे चन्द्रिका चन्द्रमा को कभी नहीं छोड़ती, जैसे अग्नि की ज्वाला कभी नहीं विलुप्त होती उसी प्रकार प्रकार तुम भी मुझसे किसी भी प्रकार अलग नहीं की जा सकतीं।

नित्याभिन्ना त्वमसि हि मया राघवेणावनेयि
ख्याता वेदे विमलपयसे वाथ वीचिर्विषण्णे।
लीलैवैषा जगति विहिता विप्रलम्भं रसेशं
लोकेऽलोके हरणमिषतो लम्भयन्तीव वक्तुम्।।२२९।।

गुञ्जन–हे भूमि कन्ये! जिस प्रकार जल से तरंग नित्य अभिन्न होती है उसी प्रकार तुम मुझ राघव से नित्य अभिन्न हो। यह बात वेद में प्रसिद्ध है। वस्तुतः इस अज्ञानपूर्ण लोक में विप्रलम्भ को ही शृंगार रस कहने के लिए ही हरण के वहाने वियोग का आलम्बन करने वाली यह लीला संसार में प्रस्तुत की गई है।

नाऽहं त्वत्तः क्षणमपि भवे चैव भूतः पृथक्त्वे
मत्तस्त्वञ्च क्षणमपि पृथङ् नैवभूता कदाचित्।
त्वय्येवाहं भवति च मयि प्राप्तसंवासधामा
हा हा धातः घटत इह नौ कीदृगध्यासवादः।।२३०।।

गुञ्जन–हे सीते! इस संसार में मैं एक क्षण भी तुमसे पृथक् नहीं रह पाया और तुम भी एक क्षण भी मुझसे पृथक् नहीं रहीं। तुममें मैं हूँ और तुम भी मुझमें निवास प्राप्त कर विराजमान हो। अरे विधाता! ये हम दोनों के बीच में कैसा अध्यासवाद घटित हो रहा है।

सीतानन्यो विरहविकलोप्येष तिष्ठामि रामो
रामानन्या भवसि सुभगे दूरनीतापि सीता।
सीतारामो रमणरसिका सर्वथैवास्यभिन्ना
रामस्सीता रमणिरसिको लौकिकश्चात्र भेदः।।२३१।।

गुञ्जन–हे सीते! विरह विकल होकर भी मैं यह राम तुम सीता से अन्य न होकर स्थित हूँ और दूर ले जाई गई भी तुम मुझ राम से अनन्य हो। रमण की रसिक तुम सीता ही राम हो जो सर्वथा अभिन्न हो और तुम रमणी

का रसिक मैं राम ही सीता हूँ। सीताराम का यह भेद तो लौकिक है। वास्तविक नहीं। वस्तुतः सीता ही राम हैं और राम ही सीता हैं। इसीलिए परमार्थ में सीताराम कहा जाता है।

विशेष–सीता एव रामः सीतारामः। भेद के सत्य न होने पर यहाँ द्वन्द्व घटित सीतारामौ नहीं कहा जा सकता।

एकं ब्रह्माहमथ विमलं भामि भामेऽद्वितीयम्
द्वैधा दृश्ये रसिकरुचये भक्तभावानुसारम्।
पुंस्त्वं बिभ्रद्दशरथगृहे चाध्ययोध्यं कुमारो
नारीरूपं जनकनगरे कौ च सीताकुमारी।।२३२।।

गुञ्जन–हे भामिनी! निर्मल एक अद्वितीय ब्रह्म मैं (राम) रसिकों की रुचि के लिए भक्त की भावना का अनुसरण करके दो प्रकार से दिखता हूँ। श्रीअयोध्या में महाराज दशरथ जी की गृहिणी कौसल्या जी के समीप पुरुष शरीर धारण करके राम रूप में कुमार बन जाता हूँ और वही जनकनगर में नारी का रूप धारण करके पृथ्वी से सीताकुमारी के रूप में प्रगट होता हूँ।

भेदाभेदाविह विलसतश्चावयोर्भावभाव्यौ
जानानोनौ विमलमतिमांश्चैकबुध्या भजेत।
रामाख्यो योऽवधपुरगतः सच्चिदानन्दरूपो
सेऽयं सीता जनकनगरे संविदानन्दरूपा।।२३३।।

गुञ्जन–वस्तुतः हम दोनों का यह भेद और अभेद भावों की विलक्षणता से ही जानने योग्य सुशोभित होता है। इस प्रकार हम दोनों को उपासना में भिन्न और बुद्धि में अभिन्न जानता हुआ विमल बुद्धि से युक्त व्यक्ति उपासना में संबंधनिबन्धन ऐक्य मानकर और बुद्धि में स्वरूपनिबन्धन ऐक्य समझकर भजन करे। जो मैं राम अवधनगर में सच्चिदानंद रूप हूँ वही जनकपुर में सीता बनकर संविदानन्द रूप दिखता हूँ।

दम्पत्योर्नौ विलसतितमां रूपतश्चात्रभेदो
भावोभामेभुवनभवनौविद्युदब्दोपमानौ ।
सीतारामाविति समुदितौ द्वन्द्वरीत्या नृलोके
सीतारामो व्यधिकरणतस्तत्पुमान्वा समानः।।२३४।।

गुञ्जन--हे भामिनी! हम दम्पति का यहाँ रूप की दृष्टि से भेद सुशोभित हो रहा है इसलिए हम दोनों चौदहों भुवनों को भवन बनाकर उन्हीं में बिजली और बादल की भाँति दीप्त हो रहे हैं। इसी रूपगत भेद की दृष्टि से द्वन्द्व समास के आधार पर मनुष्यलोक में हम 'सीतारामौ' शब्द से कहे जाते हैं। सीता च रामश्च सीतारामौ। और अभेद की दृष्टि से हमें सीतारामः कहा जाता है। यहाँ व्यधिकरण तत्पुरुष तथा सामानाधिकरण कर्मधारय तत्पुरुष ये दोनों समास कहे जाते हैं।

विशेष–तत्पुरुष समास दो प्रकार का होता है। व्यधिकरण तथा समानाधिकरण। व्यधिकरण तत्पुरुष में पूर्वपद तथा उत्तरपद की विभक्तियाँ विरुद्ध हुआ करती हैं इसीलिए चतुर्थी तत्पुरुष पञ्चमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष तथा सप्तमी तत्पुरुष भेद से छः प्रकार का होता है और समानाधिकरण तत्पुरुष एक ही प्रकार का होता है इसे भगवान् पाणिनि ने कर्मधारय तत्पुरुष की संज्ञा दी है। तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः।–पाणिनिसूत्र–१/२/४२

'सीतारामः' शब्द में तत्पुरुष की दोनों समास विधाओं का आश्रय लिया जाता है।– व्यधिकरण–(१) सीतां आश्रितो रामः सीतारामः (२) सीतया रामः सीतारामः (३) सीतायै रामः सीतारामः (४) सीतायाः (सकाशात्) रामः सीतारामः (५) सीतायाः रामः सीतारामः (६) सीतायां रामः सीतारामः। समानाधिकरण तत्पुरुष–सीता एव रामः सीतारामः।

यत्सौन्दर्योपहितममलं ब्रह्मसंवित्स्वरूपम्
तल्लीलाढ्यं सुगुणनिलयं नित्यबीजं जगत्याः।

यन्माधुर्योपहितमतुलं व्यापकं ब्रह्म भूय-
स्तद् रामाख्यं सगुणमगुणं सच्चिदानन्दमेकम्।।२३५।।

गुञ्जन-हे सीते! जो सौंदर्योपहित निर्मल संवित्स्वरूप ब्रह्म है। वही है सीता,जो दिव्य गुणों का स्थान और जगत् का नित्य बीज भी है। इसी प्रकार जो माधुर्योपहित तुलनारहित व्यापक ब्रह्म है। वही सच्चिदानंद रूप व्यक्त गुण होने से सगुण गुणों के तिरोहित रहने से अगुण राम नामक परब्रह्म है।

लीलासिध्यै प्रकटितमहो गौरमव्याकृतं यत्
तत्कार्याख्यं त्वमसि विशदं ब्रह्म वात्सल्यधाम।
यद्वै व्योम्नि प्रथितपरमेकारणं ब्रह्मनित्यम्
तद् रामाख्यं विरजमनयोरैक्यमाहुर्विशिष्टम्।।२३६।।

गुञ्जन-हे सीते! लीलासिद्धि के लिए जो गौर तेज से युक्त तुम्हारे रूप में अव्याकृत ब्रह्म प्रकट हुआ। वही है कार्यब्रह्म। इसी प्रकार जो परम व्योम अर्थात् साकेतलोक में कारणब्रह्म के नाम से ख्यात है वही विरज ब्रह्म हूँ मैं राम। अतः कार्यब्रह्म सीता और कारणब्रह्म राम के ऐक्य को सुधीजन विशिष्टाद्वैत कहते हैं।

द्वे अप्यावां प्रकृतिपुरुषाभ्यां विशिष्टे वदन्ति
द्वे अप्येते किलचिदचिती प्राहुरस्मत्प्रकारे।
तद्वैशिष्ट्यात्सुतनुतनुमद्योगतो वै विशिष्टा-
द्वैतं प्राहुर्विमलमतयो ब्रह्मणोर्दर्शने नौ।।२३७।।

गुञ्जन-हम दोनों कार्यकारणब्रह्मरूप सीताराम को दार्शनिक जन प्रकृति और पुरूष से विशिष्ट कहते हैं। इसी प्रकार इन दोनों चित् और अचित् जीव और माया को हम दोनों कार्य कारण ब्रह्म के प्रकार अर्थात् विशेषण कहते हैं। इसीलिए शरीरशरीरीभाव सम्बन्ध से वेदान्त दर्शन में हम दोनों के ऐक्य को विशिष्टाद्वैत कहा जाता है।

विशेष-चिदचिद्भ्यां विशिष्टं सीतानामकम् कार्यब्रह्म। पुनश्च चिदचिद्भ्यां

विशिष्टं रामाख्यं कारणं ब्रह्म। द्वयोः विशिष्टयोः कार्यकारणब्रह्मणोरद्वैतं विशिष्टाद्वैतम्।

ये त्वामाहुः कुटिलमतयो जीवकोटिं प्रविष्टां
ते वै क्रूरा निरयनिरयं कल्पकोट्यै व्रजन्ति।
ये त्वां मत्तो ननु नहि पृथग्जानते ते हि रामा-
नन्दं प्राप्ताः विरजवपुषो मत्समीपं प्रयान्ति।।२३८।।

गुञ्जन-हे सीते! जो कुटिल मतिवाले लोग तुम श्रीतत्व को जीवकोटि में प्रविष्ट करते हैं वे क्रूर लोग करोड़ों कल्पों तक घनघोर नरक में शीघ्र जाएंगे। जो लोग तुम्हें अर्थात् सीतातत्व को मुझसे कभी पृथक् नहीं जानते अर्थात् परब्रह्म ही मानते हैं वे निर्मल शरीर वाले साधक रामानन्द राम के आनंद अथ च रामानन्द सिद्धान्त का अनुगमन करते हुए मेरा सामीप्य प्राप्त कर लेंगे।

नाहं त्वत्तःक्षणमपि पृथक्वापि वारीव वीचे-
र्मत्तस्त्वं न त्वमसि तरलं वारितो यद्वदार्ये।
अन्योऽन्यस्मात्पृथगिव च नौ या व्यधात् सा तु लीला
गेयः सीताहरणमिषतो भृङ्गदूते वियोगः।।२३९।।

गुञ्जन-हे आर्ये! जिस प्रकार जल तरंग से पृथक् नहीं है उसी प्रकार एक क्षण के लिए भी मैं तुमसे पृथक् नहीं हूँ उसी प्रकार जैसे तरंग जल से पृथक् नहीं है। वैसे ही तुम भी मुझसे अन्य नहीं हो। हम दोनों को जिसने एक दूसरे से पृथक् किया वह एक भक्तभावानुसारिणी लीला थी। इसलिए सीताहरण के व्याज से भृंगदूत नामक इस खण्डकाव्य में वियोगात्मक विप्रलम्भ भी सीताराममय होने के कारण भक्तों के लिए गाने योग्य बन गया है।

मायासीतामकृत भवती मुक्तये पंक्तिमौले-
राविष्यैनां मयि विरहिणीमभ्यनैषीः प्रिये यत्।

तेन प्रेमा त्वयि प्रकटितो हिन्वता मे मनोऽलिं
गोप्यं जानन्त्विति हि सुधियो भृंगदूतस्य सारम्।।२४०।।

गुञ्जन–हे सीते रावण की मुक्ति के लिए आपने माया की सीता बनाई और उन्हीं में आविष्ट होकर मेरे समक्ष विरहिणी का अभिनय किया। हे प्रिये! इसीलिए मेरे द्वारा भी अपना मन रूप भृंग तुम्हारे पास भेजकर तुममें ही यह प्रेम प्रकट किया गया। "भृंगदूतं खण्डकाव्यम्" के इस गोपनीय रहस्य को सुधीजन जानें।

साहाय्यार्थं मम निजपते राविरासीर्महीतो
मूढोल्लोको तव च महिमा ज्ञानतस्त्वां न सेहे।
घोरारण्ये ननु सह मया प्रेषिता मत्समात्रा
दत्तो वासो हुतभुजिमया लक्ष्य चक्षुर्हि लोकः।।२४१।।

गुञ्जन–हे सीते! मुझ अपने पति की सहायता के लिए ही तुम पृथ्वी से प्रकट हुईं परन्तु यह मूर्ख संसार तुम्हारी महिमा के अज्ञान के कारण तुम्हें नहीं सह पाया। तुम मेरी सौतेली माँ कैकेयी के द्वारा मेरे साथ ही घोर वन में भेजी गयीं। फिर मैंने भी तुम्हें दस महीने के लिए अग्नि में ही निवास दे डाला। यह लोक तो अपने लक्ष्य को ही दृष्टि में रखता है। उसे दूसरे की सुविधा असुविधा से क्या लेना देना?

धिक् संसारं विगतकरुणं निष्कृपं सत्कृपाणम्
खट्वारूढं कलुषितमतिं स्वार्थचक्षुष्कमज्ञम्।
यत्रागत्य प्रणत जनताक्लेशनाशैकदीक्षा
सीते सीदस्यहह विजले राजहंसीव हन्त।।२४२।।

गुञ्जन–अहो! करुणा से दूर कृपा से रहित, सज्जनों के लिए कृपाण रूप खट्वारूढ अर्थात् अत्यन्त दुष्ट, पाप बुद्धि स्वार्थ को ही दृष्टि में रखने वाले अज्ञानमय इस संसार को धिक्कार है जहाँ आकर प्रणत जनता के कष्ट

का नाश ही दीक्षा मानने वाली हे सीते! तुम ऊसर में राजहंसी की भाँति क्लेश पा रही हो। आश्चर्य और शोक है।

यत्ते पादाम्बुरुहयुगलं स्वर्गदेव्यः स्म नित्यम्
सीमन्तोद्यद् विवुधसुमनो रागतो रञ्जयन्ति।
किन्नो क्लिष्टं तदिह विपिने कत्तृणैः कण्टकैः कौ
हा हा सीते किमिह कुरुषे कारुणीं कामतन्त्राम्।।२४३।।

गुञ्जन–हे सीते! आपके जिन युगल चरणों को स्वर्ग की देवियाँ निरन्तर अपने जूड़ों में लगे हुए नन्दन पुष्पों के रस से रञ्जित करती थीं क्या वे ही तुम्हारे श्रीचरण युगल दण्डक वन की पृथ्वी के नुकीले तृण और कण्टकों से क्लिष्ट नहीं हुए होंगे। हाय! हाय! सीते! इस प्रकार तुम अपनी स्वतंत्र करुणा भावनाको क्या कर रही हो? अर्थात् इसका कैसा प्रयोग कर रही हो?

माभूर्भद्रे किमपि विमना मद्विनेतुः क्षपाटान्
मा मा कार्षीः कृशमतिवपुर्विप्रलम्भे मदीये।
शीघ्रं हत्वा दशमुखमहंतत्तनूरक्तरक्त-
पाणिभ्यां ते चिकुरनिकरं रञ्जयिष्यामि भूत्यै।।२४४।।

गुञ्जन–हे कल्याणि! राक्षसों को दण्ड देने वाले मुझ राम की ओर से तुम अन्यमनस्क मत होना और मेरे वियोग में अपने शरीर को दुर्बल मत करना। मैं शीघ्र ही रावण को मारकर उसके शरीर के रक्त से रक्त हस्तों द्वारा तुम्हारे घुंघराले बालों को मंगल के लिए नीले से लाल बना दूँगा।

एवं गुह्यं कथयितुमले मन्मनो मञ्जुमूर्ते
संदेशं मे विवुधजयिना चोरितायै प्रियायै।
गच्छ क्षिप्रं जलधिपरिखां मित्रलंकामरंकाम्
सीतां कुर्याः प्रणयिवचनैः स्वस्ति पन्थाः शिवस्ते।।२४५।।

गुञ्जन–हे मेरे मन रूप सुन्दर मूर्ति वाले मित्र भ्रमर! इस प्रकार अत्यन्त गोपनीय मेरे द्वारा भृंगदूत के (७१ से २४४ पर्यन्त) एक सौ चौहत्तर मन्दाक्रान्ताओं में कहे हुए संदेश को देव विजयी रावण द्वारा चुराई हुई प्राणप्रिया सीता जी के लिए, पूर्णरूपेण कहने हेतु शीघ्र ही समुद्र की खाई वाली लंका को जाना और मुझ प्रेमी के वचनों से सीता जी को अरंका अर्थात् सुन्दर आश्वासनों से धनाढ्य कर दो जिससे वे मेरे आगमनपर्यन्त जीवित रह सकें। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो।

सन्देशैर्मे जनकतनयां जीवयेर्जीवितेशां
गुह्यैरेभिः प्रियनिगदितैर्जीव जीवातुभूतैः।
श्रुत्वा तस्याः सकलकुशलं भृंगतो मत्प्रियाया-
स्त्वत्तः प्रीतस्तवसुवसतिं तन्मुखाब्जे करिष्ये।।२४६।।

गुञ्जन–हे मित्र! इन जीवों के लिए औषधि के समान मुझ प्रियतम राम द्वारा स्पष्ट श्लोकों में कहे हुए गोपनीय संदेशों से जिनका प्राणपति मैं जी रहा हूँ ऐसी जनकनन्दिनी श्रीसीता जी को तुम जिला देना। तुम (भृंग) से मेरी प्रिया उन सीताजी का समस्त कुशल समाचार सुनकर मैं उन्हीं सीता जी के मुखकमल में तुम्हारा सुन्दर निवास बना दूँगा अर्थात् फिर तो मेरे मनोभृंग! तुम सीता के ही मुखकमल पर मंडराते रहोगे।

श्रीरामोक्तं जगदघहरं गीतसीताभिरामम्
संदेशं तं मनसि कलयन्कामरूपी स भृंगः।
गत्वा पारे जलधिविकलां वीक्ष्य सीतां विनीतां
वामे कर्णेऽकथयदखिलं वाचिकं राघवस्य।।२४७।।

गुञ्जन–इस प्रकार भगवान् श्रीराम द्वारा कहे हुए सीता जी के गुणगान से सुंदर, सारे संसार के पापहर्ता उस संदेश को मन में धारण करके श्रीराम द्वारा सीता जी के लिए भेजे हुए, उस मनोभृंग ने समुद्र पार लंका में जाकर श्रीराम के सम्पूर्ण संदेश को उनके वाम कर्ण में गुंजन करते हुए कह दिया।

श्रुत्वा भर्तुः श्रवणसुखदं वाचिकं भृंगगीतम्
सीता प्रीता विरहजलधौपोतमित्येव सुभ्रूः।
सानन्दं तं नयनसलिलैश्शीतलैः स्नापयित्वा
रात्रौ चक्रे हृदयजलजे भृंगदूतं प्रियेष्टम्।।२४८।।

गुञ्जन-इस प्रकार भृंग के द्वारा गाए हुए श्रवणों के लिए सुखप्रद प्राणपति श्रीराम के संदेश को सुनकर विरहसागर में मानो जहाज प्राप्त करके सुन्दर भौहों वाली सीता जी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। आनन्दपूर्वक संदेश वाहक उस भ्रमर को अपने नेत्र के जलों से स्नान कराकर अपने प्रियतम को इष्ट अथवा सीता जी के प्रिय श्रीराम जिसे इष्ट हैं उस श्रीराम के मनोमय भृंग को सीता जी ने रात्रि में अपने हृदय कमल में ही विश्राम कराया।

प्रत्यूषेऽलिर्भुवन जननीं तां समामन्त्र्य सीतां
चख्यौ गत्वा दिवसमणये राघवाम्भोरुहाणाम्।
भौमीवार्तं हतदशमुखो रामचन्द्रोऽपि सीतां
लब्ध्वा रेजे रविरिव विभामाप्यराजाध्ययोध्यम्।।२४९।।

गुञ्जन-प्रातःकाल सम्पूर्ण लोकों की माता सीता जी से आज्ञा लेकर मनोभृंगनेश्रीराम के पास जाकर रघुवंश रूप कमलों के सूर्य श्रीरामजी से भूमिनन्दिनी सीताजी का सम्पूर्ण कुशल समाचार विस्तार से सुनाया। अनन्तर हनुमान आदि वानर भटों की सहायता से सपरिवार रावण का वध करके कान्ति को प्राप्त कर सूर्य की भाँति सीता जी को प्राप्त करके राजाधिराज भगवान् श्रीरामचन्द्र सदा सदा के लिए श्रीअयोध्या में राजसिंहासन पर विराजमान हो गए।

सीतारामप्रणयचरितं रामभक्त्येकसारं
मन्दाक्रान्ता विशददिविसद् भारती भव्यगीतम्।
सीताप्रीत्यै गिरिधरगिरा गुम्फितं रामभद्रा-
चार्यप्रोक्तं प्रभवतु सतां भूतये भृंगदूतम्।।२५०।।

गुञ्जन–इस प्रकार श्रीसीता जी की प्रसन्नता के लिए कवि 'गिरिधर' की वाणी में गुम्फित और उसी मुझ गिरिधर कवि उपाधिवाले श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा प्रणीत श्रीसीताराम जी के प्रणयचरित्रों से युक्त, श्रीरामभक्ति का सार सर्वस्व, मन्दाक्रान्ता वृत्त में, देववाणी संस्कृत के माध्यम से सुन्दर रूप से गाया गया यह भृंगदूतम् नाम का दूतखण्डकाव्य श्रीसीतारामभक्तविद्वज्जन, श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णव सन्त एवं अन्य सभी सनातनधर्मालम्बी श्रीरामभक्त बहिन एवं भाइयों की सांसारिक सात्विक विभूति एवं श्रीसीतारामशरणागति रूप आध्यात्मिक विभूति के लिए निरन्तर समर्थ एवं जागरूक बना रहे।

इस प्रकार श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य महाकवि स्वामी रामभद्राचार्य प्रणीत उत्तरभृंग पर उन्हीं के द्वारा की गई गुञ्जन नामक हिन्दी व्याख्या सम्पन्न हुई।

।।श्रीराघवः शन्तनोतु।।

।भृङ्गदूतं का उत्तरभाग पूर्ण हुआ।

भृङ्गदूतं सम्पूर्णम्।

मुद्रक :
श्रीराघव साहित्य सेवा प्रेस
156, छीपी टैंक, रामा होटल कम्पाउन्ड
मेरठ (उ०प्र०)